निराला के पत्र



राजकमल प्रकाशन

दिल्ली ६ पटना ६

विनोबा के पत्र

जानकीवल्लभ शास्त्री

प्रथम संस्करण १९७१

राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० फैजबाजार दिल्ली ६ द्वारा प्रकाशित
और शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस के १८ नवीन शाहदरा दिल्ली ३२ द्वारा मुद्रित
आवरण सुखदेव दुग्गल

अपनी 'कजली' की उस करुण-कातर दृष्टि को,
जो चिरविदा के पूर्व—
मेरी, निरर्थक प्रार्थनाओं से पथराई हुई, आँखों से फिर फिर टकराई थी।
'दुःख-संवेदनायैव रामे चैतन्यमर्पितम्।'

—जानकीवल्लभ शास्त्री

निराला निकेतन,
व्यथा-मलिन निशा का
प्रथम प्रहर
१९ २ ६९



निराला



महाकवि
निराला



आचार्य
जानकीवल्लभ शास्त्री

तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर ! —
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़ वह, जिसके तले, बैठी हुई, स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार बार प्रहार
सामने तरुमालिका अट्टालिका, प्राकार।
चढ़ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन, दिवा का
तमतमाता रूप;
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई — भू,
गर्द चिनगीं छा गई,
प्राय हुई दुपहर —
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा छिन्नतार,
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,

सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा,
मैं तोड़ती पत्थर।

गीत (बहार-निधन

फिर सँवार सितार लो!
बाँधकर फिर ठाट, अपने
अंक पर झंकार दो।

शब्द के कलिदल खुलें,
गति पवन भर काँप थरथर
मीड़-भ्रमरावलि ढुलें,
गीत परिमल बहे निर्मल
फिर बहार, बहार हो।

स्वप्न ज्यों सज जाय
यह तरी, यह सरित, यह तट,
यह गगन, समुदाय।
कमल-वलयित-सरल-दृगजल
हार का उपहार हो।

38 Naryalwalgali,
Lucknow
17. 4. 36

प्रिय जानकी वल्लभ जी

आपकी भेजी हुई रचनाएँ
[illegible] और प्रणावली मेरे पास रक्खी
हैं, पर मैं भेज नहीं सकता। क्यों
कांग्रेस [illegible] में मेरा आर्थिक अर्थ व्यय
हो गया है। आप आठ आने के टिकट
भेजिये या किसी [illegible], भेजने के लिए
लिखिये।

आपका, निराला

भूसामण्डी हाथीखाना, लखनऊ
२९ ३ ४१

प्रिय श्री जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र तथा सभा
पति पद से दिया भाषण मिला।
भावना भाषा मे पद्य है। आधुनिक
हिन्दी कविता भी बड़ी सुन्दर।
वेदान्त में जल्द आचार्य की परीक्षा
देंगे, बड़ी प्रसन्नता की बात है।
आपका श्रम फल दे चला है।
मैं अपने लोगों को विद्वान देखना
चाहता था, देख रहा हूं। हिन्दी
को अधिक-से-अधिक अलग
अलग विषय के विद्वान लेखक
चाहिये थे, मिलते आरहे हैं।
साहित्य सबको लेकर है, इसीलिये
सबकी श्रेष्ठता जरूरी।

मैं आपको 'प्रबन्ध-प्रतिमा', वाङ्मय,
के अनुवाद, वन्दना, कुछ गद्य
भेज सका। वन्दना में थोड़ा
थोड़ा २ अङ्कों में लिखकर
लेख बन्द कर दिया था।
मुमकिन, फिर लेख। आपके
कुल लेख मैंने नहीं पढ़े। आरती
और कमला मेरे पास नहीं,
और बन्द हो गईं।
यही। आकर लोगों की पत्रिका
तत्काल लेख जा सके। सारा
पूरा नहीं की चोट से
मुफ्त है, अदालतों के,
सब को तकलीफ होती है।
बहु को मृत्यु की बेटी कल
किया है। मैंने अत्याधुनिक धारा
और समाजवाद का इधर कुछ
अध्ययन किया है, कुछ लिख कर जाता
रहा हूँ। किसी तरह दिन
२, शते। आपका — निराला

आदरित राय बहादुर श्रीमान पण्डित श्रीनारायण
चतुर्वेदी एम० ए०।
दारागंज, इलाहाबाद
२ २ ४२

प्रियश्री आचार्य

कार्ड युत आपका पत्र मिला। हृदय उद्वेल हो गया। वाजपेयी जी से आपके समाचार सुन चुका था। इस समय भी वह यहीं हैं। सम्मेलन से उनका एक लेख संग्रह निकल रहा है, उसी उद्देश्य से आये हुए हैं।

आपके इस सफलता से पदोन्नीत होने का समाचार पढ़ा था। नवीन शिक्षामन्त्री से (इस रोज समाचार उसी रोज नवीन प्रगतिशीलों की बैठक थी)। आपके पूर्व पारिश्रम के साथ साहित्यिक कार्य-कलाप का भी परिचय दिया गया।

बीच में मलेरिया से मैं तीन महीने तक बीमार रहा और एक मन के करीब वजन घट गया। उन दिनों चित्रकूट के पास रहता था। अब स्वस्थ हूँ। आप पढ़िए और वजन इस समय भी कम है।

'बिल्लेसुर बकरिहा' और कुकुरमुत्ता प्रकाशित निकल चुकी हैं। 'अणिमा' एक दूसरे पद्य संग्रह जल्द निकलनेवाली है। इधर कुछ गीत लिखे हैं, देशदूत 'अभ्युदय' आदि में निकल रहे हैं।

आपका नाम भारत के बड़े बड़े आदमियों के कानों तक गौरव से पहुँचा दिया है जिनमें बिहार के भी प्रमुख राजनैतिक हैं। अब स्वर्ग के पिता से संस्कृत की आशा कम से कम अंग्रेजों की योग्यता भी प्राप्त कर लीजिए। [illegible]।

आपका — निराला

११२ मकबूलगंज, लखनऊ
२३ ३ ३७

प्रिय — भाग श्री जानकीवल्लभ!

— — प्राप्तं प्रियपत्रं तव। समधिगतश्च उद्देशः। प्रमादादेव, नागतोऽहं प्राप्तपत्रः। सत्यं यल्लिखितं त्वया, परन्तु, गतेऽपि प्रातिकूल्यं कार्ये कारणता कल्पिता चेत्, न विरोधोऽधुना कथ्यते। नैव दुःखमात्रमपि कस्यचित्। प्रकाशाकारमेव दर्शनस्यालोचनस्य च। सर्वे पुरो धावन्ति, मन्ये, सर्वत्रास्ति नवीनता; तथापि, जानामि, जनाः परिहसन्ति कमप्युद्बुध यदि सागरपारकामिनाम्। लिख यथा यदिच्छसि सानुरागं स्वात्मप्रबोधाय स्वच्छन्दतया।

गोरखपुरे कालेजेन स्थापिते हास्याके हिन्दीनव्यगद्यस्य समागमः। पठ 'भारते' मम लेखम्, प्रकाशितं।

स्वस्थोऽस्मि। चिरकालान्मन्येनागतमुपे साहित्यम्। इति शम्।

तव
सूर्यकान्तः

प्रकाशकों कितनी गतियाँ हुई। फिर विस्तृत लिखूँगा।

निराला
और उनके ये पत्र

निराला के पत्र

सकल गव दूर करि दिवो
तोमार गव छाडिवो ना !
सवारे डाकिया कहिवो, जे दिन
पावो तव पद रेणु-कणा ! !

मैं अपना और सब गव दूर कर दूगा परन्तु जो गव मुझे तुम्हारे लिए है उसे तो न छोड सकूगा। इतना ही नही, जिस दिन मुझे तुम्हारी चरण रेणु का एक कण भी मिल जाएगा, मैं उस उस दिन सिर-आँखो पर रखकर चुप्पी न साध जाऊँगा, सब लोगो को पुकार-पुकार कर जीवन की उस सर्वोत्तम उपलब्धि का भेद बताऊँगा।

+ + +

और जिस दिन (६ ६ १९३८ ई० को) लौकिक और अलौकिक के प्रवत वस्तु सतुबध स मनीषी महाकवि निराला के दशन हुए, मैं अपने भावाद्रेग को चिन्तन के स्पदन से न ढक सका, न ढग पर ला सका हर जगह डका जरूर बजाने लगा'

कि खुदा नहीं तो खुदी नहीं, जो खुदी नहीं तो खुदा नहीं !

आधुनिक हिन्दी कविता को अभी निराला से बडा कोई कवि नही मिला है। मुक्तिबोध के 'अँधेरे मे'' डा० नामवर सिंह को निराला-जैसी भाषा की 'सिजस्क्रियता' दिखती है। यही नही, 'अधकार की गहरी पटभूमि पर एक आलोक रेखा खीचकर काल्जयी काव्य-कृतित्व का जो प्रतिमान किसी समय निराला की 'राम की शक्ति पूजा' न उपस्थित किया था, डा० नामवर सिंह के अनुसार अँधेरे में' के द्वारा मुक्तिबोध न उसी तरह की दूसरी काव्य-कृति, जिसे नई कविता की परम उपलब्धि कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी प्रस्तुत की।' नागाजुन के पत्र व्यङ्ग्या मे आलोचका को निराला के ओज और तेज की झलक मिलती है। डा० रामविलास शर्मा के अक्खडपन और मो टूक कहने की प्रवृत्ति म लोगो को निराला का फक्कडपन दिखाई देता है। और आचाय

नन्ददुलारे वाजपेयी तथा विष्णुचन्द्र शर्मा ने तो हिमायत की हद कर दी कि उन्हें मेरी संगीत कविताओं में निराला के उन्नत गीतों का आभास मिलता है। तात्पर्य यह कि किसी की प्रशस्ति में निराला से आंशिक समता प्रदर्शित कर देने पर फिर जेहन लड़ाकर एक शब्द जोड़ने की भी जरूरत नहीं रह जाती। कुल मिलाकर, अभी निराला ही आधुनिक हिन्दी कविता के अप्रतिम प्रतिमान हैं।

अप्रतिम इसलिए कि डा० रामविलास के अक्खड़पन में निराला की फकीराना मस्ती—

'बना कर फकीरों का हम भेस ग़ालिब
तमाशाए अहले करम देखते हैं!'

नहीं है, नागार्जुन के सपाट व्यंग्य में राना और कानी—जैसी सहज मार्मिक व्यंजना नहीं है, मुक्तिबोध में भाषा और भावों की वैसी विविधता नहीं है, और पत्थर की चोट लगती हो तभी मरे—

'ज्योति प्रपात झरो हे तम संघात पर,
आत्मा की शुचिता कलुषित चित गात पर!
पाटल की सुधि बिंधी हुई है शूल से
ढका हुआ है क्षितिज माग की धूल से
बँधा हुआ है श्रेय शिखर मत मूल से
स्वर्ण भ्रमर गूँजे कज्जल जलजात पर—
ज्योति प्रपात झरो हे तम संघात पर!

अथवा

आग जलती जो अतल में हृदय-तल में
यह धुआँती ही नहीं क्या देखते हो?
घेर अन्तर्भूमि पारावार निश्चल,
लहर लहराती नहीं, क्या देखते हो?'

—ऐसे निष्कम्प गीतों से निराला की उन्नत और ललित गीत-कला की प्रत्यभिज्ञा सम्भव है। सान्निध्य और सादृश्य का अन्तर 'अन्तर महदन्तरम्' है। यह न हो तो हर साढ नन्दी कहलाए, हर दिगम्बर को शंकर की प्रतिष्ठा प्राप्त हो। सचाई के मुलम्मे तले अक्सर ने घुघरूँ में 'कम कर गाया गया ईमान'— मुक्ति हूँ मैं मृत्यु में आई हुई न डरो—बन जाए।

जो हो, एक मुझे अपनी नींद गान की छूट मिले, अपनी खाल में मस्त रहने दिया जाय तो मैं तो कहूँ, बेशक व (डा० रामविलास नागार्जुन

मुक्तिबोध आदि) इसी शृंखला की अगली कड़ियां हैं। फिर भी निराला के ही शब्दों में—

अब तक धुन की
नहीं उठी लौ,
उनके आसमान को
अब तक नहीं फटी पौ!'

अथवा 'मुक्तिबोध' की आवाज में—पहाड़ों पठारों, समुन्दरों में खोई हुई 'परम अभिव्यक्ति अनिवार आत्मसम्भवा' की खोज अभी जारी ही है।

निराला तन, मन और आत्मा—तीनों के भिन्न भिन्न स्तरों पर कभी एक साथ कभी बारी-बारी से जीते थे। जैसे 'धूत कहौ अवधूत कहौ' के बाल पर कम्बल बनाने वाले—

'अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने
षट कन्ध शाखा पञ्च बीस अनेक पर्न सुमन घने
फल युगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे
पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे।'

के 'तुलसी' के विरवे को उखाड़ कर सहोर के पेड़ लगाना चाहते हैं, जैसे—

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ?
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिय हरि भगति बिनु ?'

को हंसकर उड़ा देना चाहते हैं और जैसे—

'मङ्गल मुद सिद्धि सदनि,
पर्व शर्वरीश वदनि,
ताप तिमिर-तरुण-तरणि किरण-मालिका!'

—की टकसाली बात फेर कर इमली के चियें चलाना चाहते हैं कहना न होगा, ऐसे ही वे छायावाद रहस्यवाद के ऐसी पच्चर ठोकते हैं कि पजावे का पजावा खखड़ हो जाता है। निराला का विराट व्यक्तित्व दुपहर की छांह-सा छोटा पड़ जाता है। कुकुरमुत्ते का कलिया पका खाकर—

'होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,
कवि का प्रति छवि से जीवनहर, जीवनभर,
भारती इधर, हैं उधर सकल—
जड़ जीवन के संचित कौशल,
'जय, इधर ईश हैं उधर सबल माया कर।' —तुलसीदास'

—यदि चेतन जड से टक्कर ले सकता हो तो ले, मैं जानता हूँ, नहीं ले सकता, जड जड ठहरा आन-बान शानवाला, कान पकड कर निकाल देगा चेतन को धर्मक्षेत्र—कुरुक्षेत्र से!

यही कारण है कि The knowing subject is itself unknown

किन्तु यदि तीनो स्तरो के स्वर सम्भार को तीन सप्तकों की सी अन्विति मिले तो निराला ओडव षाडव जाति के नही, सम्पूर्ण राग के पूर्ण प्रतीक सिद्ध होगे। शक्ति, शील और सौन्दर्य का उनका स्वर झरना अमिय गरल शशि शीकर रविकर झरता हुआ 'श्यामली-सोनाली' को ही नही मुखर करता अपितु जीवन की सम विषम तलहटियो को समवेदना से परिप्लावित करता हुआ अखिल असीम में विलीन होने के आन्तरिक आग्रह से उल्लसित प्रतीत होता है जैसे तमतमाया हुआ सूरज चाहे जितना पानी सोख ले समुद्र लहराएगा बादल की एक-एक बूंद रिस जाय, वह आसमान में गरजेगा ही

मूँदीं जब जग ने आँखें,
खोलीं री इनने पाँखें,
उड़ने को नभ को ताकें—
उपवन की परियाँ आलीं!

— गीतिका

देश-काल के शर से बिंध कर
यह जागा कवि अशेष छवि-धर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएगी!'

— तुलसीदास

निराला ने पृथिवी स्थानीय (Terrestrial), अन्तरिक्ष स्थानीय (Aerial) तथा द्यु-स्थानीय (Celestial) जीवनानुभूतियो को अपने काव्य माल्य में समान कौशल से गुम्फित किया है जिन्हें मिट्टी में मिला कर प्रगतिशील रामीशों का खाद तो तयार की जा सकती है, किन्तु उससे प्राणो के सब रंग नही उगाए जा सकते। निराला की हिरण्मय कला में घास-पात की हरियाली वर्जित नही है।

प्रकाशित प्रपंच में स्वप्न सुषुप्ति को छोड़कर जागरण का महत्त्व नही उजाला जा सकता। निराला की व्याप्ति तीनों में है इन्ही अन्द्वन्द्व बंधनो में निराला का मुक्त रूप देखा जाना चाहिए अन्यथा—

'तुम प्रेम और मैं शान्ति!
ज्यों-त्यों मन के नीचे उतर भी जाय,

'तुम तुङ्ग-ताल घन अंधकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति !'

का पल्ले पग्ना मुश्किल है।

उन्हें धम-अधम, कृत-अकृत से जोड़कर छोटा तो बनाया जा सकता है, किन्तु तब उन्हें व्यापक और बड़ा बनाना दम्भ मात्र होगा। द्रव पदार्थ को जैसा साँचा मिलता है, वैसी ही आकृति उभर आती है, जितनी व्यापक परिधि होती है उतनी ही दूर में उसका प्रसार देखा जाता है। निराला की काव्य प्रतिमा गलाए हुए सोने के समान ही थी। कोई उसे सागर का विस्तार देता है कोई नाव का आकार।

व्यक्ति के रूप में वह जैसे बमबाड़े के विमान भी थे और बंगाल के 'भद्र लोक' भी, उसी प्रकार कवि के रूप में वह—

'और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता'

—कुकुरमुत्ता भी थे,

'जानता हूँ, नदी झरने,—
जो मुझे थे पार करने—
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख कोई नहीं भेला'

—स्थितिप्रज्ञ दार्शनिक भी। ऐसे उनके व्यक्ति और कवि के कितने ही रूप थे। किसी एक का केन्द्रीकरण छायाचन्द्र को अपने ही प्याले में प्रतिष्ठित समझने-जैसा है।

अवश्य दर्शन का उद्देश्य खण्डों में अखण्ड विभक्ता में समग्र, विरोधों में सामञ्जस्य विशिष्टों में सामान्य एवं बहुत्व में एकत्व की प्रतिष्ठा है, किन्तु खण्डों, विभक्तों विरोधों और विशिष्टों की उपेक्षा से यह समग्रता का बोध नहीं फूटता। अन्विति का अर्थ लीपापोता नहीं है।

निराला सौन्दर्य-स्रष्टा भी थे, आत्म द्रष्टा भी। वह संश्लिष्ट संवेदन शीलता के प्रतीक थे तो—

'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि'

—के निष्पाप परमहंसी प्रतिमान भी। उनके इन्द्रधनुषी काव्य-कलाप में बहुरंगी किरणों की विस्मित विमुग्धकारिणी छवि छटा है। परम्परा और

मौलिक प्रतिभा की ऐसी अभिव्यक्ति निराला के पूर्व केवल गोस्वामी तुलसीदास में ही पाई जाती है।

'जिस्म महदूद, रूह लामहदूद, फिर ये दूर व नजदीकी क्या है?'

दूर और पास का देश गत भेद आगे और पीछे का काल-गत भेद कार्य और कारण का नमित्तिक भेद निराला की प्रतिभा की व्यापक परिधि में अपनी अहमियत खो देते है। त्रिपुटी नही ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता तीनो यहाँ एकायन हो गए है।

उनकी अक्खड़ मक्कड़ किन्ही पंगु सम्भावनाओ की प्रतिच्छवि नही, उनकी दहक महक खीस या खिसियाहट की देन नही उनके नितान्त निस्संग जीवन में मौत की निस्संगता न थी उनकी गन्धवाहिनी मृत्यु जीवन के परिमित शून्य में गन्धकोश बिखेरने के अपराध में निर्वासित नही हुई थी।

उनका आमूल रचनात्मक विकास उस उनके अनाम तेज के अनुरूप नए नए साँचे तोड़ने और गढ़ने का अक्रम इतिहास है। ऊँचे से ऊँचे उड़ने के लिए जटिल-से-जटिल प्रयास—यही निराला की सतत साधना की अलध्य शक्तिमत्ता है।

मान्यिकी दृष्टि उनके कार्य-कलापो सम विषम प्रवृत्तियो, रूपो और सम्भावनाओं की विभिन्नता का आकलन कर उनके अधिभूत और अध्यात्म (Cosmic and Psychic) तत्वो को छाँटती नही है उनके अनिवार्य और All pervading—सर्वानुस्यूत प्रकाश और प्रभाव के कुछ छिटपुट कण बाटती ही है।

छिटपुट कणो को प्रकाश पुंज मानकर चुंधियाई आँखों विराट-दर्शन की प्रतिक्रियाएं प्रकट की जा सकती हैं उन्हें सीमान्त मान लेना अनुचित है क्योंकि—

'सितारों के आगे जहाँ और भी हैं!'

Since I can not prove a lover
I am determined to prove a villain'

—ऐसा विकृत दुराग्रह उत्तान आलोचना में ही उपलब्ध होता है। अपरा' के उद्गाता की परा शक्ति की विविधता सत्य सघोष है—

'परास्य शक्तिर्विविधव श्रूयते!'

आत्मा और अनात्मा का विभाजन विवरमूलक भी हो सकता है अविवरमूलक भी। जैसे प्रकाश और उसके आश्रय—सूर्य में वास्तविक भेद न होने पर भी व्यवहार में भेद माना जाता है एसे ही शक्ति की विविधता भी समझी जा

सकती है। या जड और चेतन दोना प्रकृतियो से निराला ऊपर उठे प्रतीत होते हैं। जीवन की जय-पराजय को जड मन और चेतन तन ने अनुलोम विलोम भाव से कुछ यो झेला कि वासना की सरिता शुभ और अशुभ मार्गों से, दो धाराओ म बहती चली गई

हार गया,
क्यों म उस पार गया !
जाना था नहीं, यह रहस्य क्या
यहाँ कहीं अपना भी वश्य क्या,
भोजन को भूमि कहाँ, शस्य क्या ?
कोई मुझको यहाँ उबार गया—
मार गया,
हार गया ! —'आराधना'

जिसने मारा, वह हारा। मरने वाला तो उबर गया। गोडसे मरा, गाँधी अमर हो गया।

'अपनी विभूति को राख यदि कर सके,
भव विभव तर सके, उसमे सँवर सके,
जीवन अरण्य मे निर्भय विचर सके,
हर सके शोक, इतरो को उतारिए !' —'आराधना

गीध-गणिका-अजामिल की भाँति अपने ही उद्धार के लिए प्रार्थना करने वाले भक्ता जैसे निराला नहीं हैं ? न वह चाहते हैं कि दूसरे वसे बनें। उन्हें तो तप और त्याग का मार्ग ही मालूम है। वह अधिक से अधिक यही कह सकते हैं कि यदि तुम स्थित प्रज्ञ हो तो दूसरो को भी उसका अता-पता बता दो।

प्रार्थना निराला की—

'बहुत तुम्हारे मारे मारे
फिरते हैं हारे बेचारे,
चेतन मधु-गन्ध के सहारे
उन्हें प्राण दो, मुझे हरो हे !'

और वहाँ सुनी गई ?

'ठग को जग जीवन दान करो,
तुम अभय प्रदान करो न करो !'

—इस युग में और कौन कह सका? सभी कितनों ने जोर मारा, मगर जिस आन्तरिक उपलब्धि के रूप में पाना था वह बाहरी अभिनता के हाथ न लगा। वैज्ञानिक विश्लेषण छन्द-बन्द बाधना रह गया, निराला की काव्यात्मा चुपचाप उनसे कतरा कर आगे निकल गई।

उस महत्तम एकान्तपरायण का द्वन्द्वात्मक अगाध बोध बाहर से घेरता है। घिरने पर सत्य शिव विशिष्ट शव हो जाता है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि अग्नि द्वारा संरक्षित यज्ञ देवताओं को तृप्ति प्रदान करता है। आहवनीय अग्नि पूर्व से, गार्हपत्य पश्चिम से, मार्जालीय दक्षिण में और आग्नीध्रीय उत्तर से संरक्षण न दें तो यज्ञ पूर्णता न प्राप्त करे।

निराला की कविता व्यक्ति समाज भक्ति और मुक्ति के चतुरस्र स्वरों से मुखर है। किसी एक ओर से घेरा डालने पर बहुत चतुराई छोड़ने के बाद भी बात नहीं बनती। निराला के अन्तर्विरोधों के अनुसन्धान में अपना ठिकाना करना हो तो हो निराला का ठिकाना लगता नहीं नजर आता। वह तो प्रशस्ति और शवपरीक्षा से परे हैं —

"सभी उहार उतार दिए थे
फिर से पर्दे श्वेत सिए थे
तीन-तीन के एक किए थे,
किसी एक अवयव मढ़ा था!" —'अर्चना'

आकाश वायु, तेज जल और पृथ्वी अपने साक्षात एवं परम्परित गुणों के कारण गत्यात्मक और चेतन प्रतीत होते हैं। प्रकृति के तीनों गुण सभी कार्यों के कारण हैं। तत्त्वों का पिण्ड ही तो यह ब्रह्माण्ड है। ये द्वीप-द्वीपान्तर वन-पर्वत सर-सरि-सागर सूर्य चन्द्र-तारे नक्षत्र-ग्रह-उपग्रह—इस विश्व-ब्रह्माण्ड के सभी दृश्य-अदृश्य स्थूल-सूक्ष्म पदार्थ—उक्त तत्त्वों के पिण्ड ही तो हैं। किन्तु इतने पर भी ये सारे पदार्थ जड़ हैं। चैतन्य का नामोनिशा तक नहीं है इनमें। ये इकट्ठे होकर भी स्वयं योजनापूर्वक कोई काम नहीं कर सकते।

आग और पानी के संयोग से भाप बन जाती है। भाप से इंजन की पल्लों में गति देखी जाती है किन्तु गति को चेतना मानना मतिभ्रम है। हवा लगने पर सूखे खड़खड़ाते पत्ते भी उड़ते रहते हैं। परबी के जोर से जड़मति को सुजान अवसरवादी चाटुकार की सिफारिशी खुशी का चमत्कार कहा जाता है। उड़ते पत्तों में चेतना और धुएँ-सी सर पर छाई पर-पल्लवियों में चेतना का

विराम ढूंढना गति अगति को चैतन्य मानने के भ्रम का ही परिणाम हो सकता है।

निराला के दुस्तर तिमिर मायावरण भेदकर प्रतिपद पराजित होने पर भी अप्रतिहत यत्न से रहकर लक्ष्य पर पहुँचने की बात, जड़ गति को—इंजन के दौड़ने सूखे पत्ता के उड़ने को—चैतन्य चालित माननेवाले के लिए रहस्यात्मक प्रलापमात्र है। अपने विस्तार—भूमा में अहंकार के—प्रकृति के विकार महत और महत के विकार अहङ्कार के,—मन के एक सूक्ष्म भेद 'कर्ता हमिति मन्यते'—अहंकार के डूब जाने या अपने रूप में स्थित होने (तदा द्रष्टुः स्वरूपे वस्थानम्)—कैवल्य अवस्था को प्राप्त होने के आनन्द का अनुभव 'वाग्जाल' मात्र प्रतीत होगा। जो 'विनय पत्रिका' नहीं समझता, यह अर्चना-'आराधना' के गीत भी नहीं समझ सकता। वाग्जाल तो वह समझता ही है, संस्कार के बिना तत्त्व नहीं समझ पाता।

निराला की—

'किससे मैं कहूँ व्यथा—
अपनी जित विजित कथा ?'

—यह गहरी वेदना 'निर्गुनिया रहस्यवाद' नहीं, जड़ तत्त्वों से जूझते हुए चेतन की, मानवीय संवेदनाओं भरे जीवन की हार-जीत की कहानी है। आदर्शों और शाश्वत मूल्यों की डाली लगा कर बाजारू सुख-सुविधाओं की दुकानें सजानेवालों से कवि अपने तिल तिल जलकर उजलते प्राणों की व्यथा कैसे कहे ?

वर्डसवर्थ ने यों ही नहीं लिखा होगा

We poets in our youth begin in gladness,
But thereof comes in the end despondency and madness

क्या यह आरम्भिक आनन्द निराशा और उन्माद में विपरिणत हो जाता है और ईलियट जैसे जागरूक कवि को कहना पड़ता है Be still, and wait without hope—यह सतत संघर्ष है।

अनुभूति को किसी अनुभूति प्राप्त करने वाले की अपेक्षा होती है या नहीं ? चिन्तन अनुभूति नहीं है। बुद्धि में वही आता है जो पहले इन्द्रियों में होता है। हम जो कुछ जानते हैं वह बाहर से ही तो आता है। स्मृति भी बाहर से प्राप्त ज्ञान की ही होती है। जो प्रत्यक्ष नहीं होता, स्मृति उसके सजीव चित्र खड़े कर देती है। इस प्रकार ज्ञान प्रवाह स्मृति चित्रों से उपबृंहित होता रहता है। कल्पना भी प्रत्यक्ष और स्मृति की भाँति ज्ञान का एक अभय

—इस युग में और कौन यह सका ? तभी निराला ने जोर मारा, मगर जिस आन्तरिक उपलब्धि के रूप में पाना था वह बाहरी अभिलाषा में हाथ न लगा वर्णानिक विश्लेषण छन्द-बन्द बाँधता रह गया निराला की आध्यात्मिकता चुपचाप चकरा कर आगे निकल गई।

उस महत्तम एकान्तपरायण की द्वन्द्वात्मक अगाध बाध बाहर में घेरता है। घिरने पर सत्य शिव विशिष्ट शव हो जाता है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि अग्नि द्वारा मर्दित यज्ञ देवताओं को तृप्ति प्रदान करता है। आहवनीय अग्नि पूर्व से गार्हपत्य पश्चिम से मार्जालीय दक्षिण से और आग्नीध्रीय उत्तर से संरक्षण न दें तो यज्ञ पूर्णता न प्राप्त करे।

निराला की प्रतिभा व्यक्ति समाज भक्ति और मुक्ति के चतुरस्र स्वरों से मुखर है। किसी एक ओर से घेरा डालने पर बहुत चतुराई छाँटने के बाद भी बात नहीं बनती। निराला के अन्तर्विरोधों के अनुसन्धान में अपना ठिकाना करना हो तो हो निराला का ठिकाना लगता नहीं नजर आता। वह तो प्रशस्ति और शवपरीक्षा से परे हैं —

> "सभी उहार उतार दिए थे
> फिर से पटटे श्वेत सिए थे
> तीन-तीन के एक किए थे,
> किसी एक अपवर्ग मढ़ा था।" —'अर्चना'

आकाश, वायु तेज, जल और पृथ्वी अपने साक्षात एवं परम्परित गुणों के कारण गत्यात्मक अतः चेतन प्रतीत होते हैं। प्रकृति के तीनों गुण सभी कार्यों के कारण हैं। तत्त्वों का पिण्ड ही तो यह ब्रह्माण्ड है। ये द्वीप-द्वीपान्तर, वन पर्वत सर सरि-सागर सूर्य चन्द्र-तारे नक्षत्र ग्रह उपग्रह—इस विश्व-ब्रह्माण्ड के सभी दृश्य-अदृश्य स्थूल-सूक्ष्म पदार्थ—उक्त तत्त्वों के पिण्ड ही तो हैं। किन्तु इतने पर भी ये सारे पदार्थ जड़ हैं। चैतन्य का नामोनिशा तक नहीं है इनमें। ये इकट्ठे होकर भी स्वयं योजनापूर्वक कोई काम नहीं कर सकते।

आग और पानी के संयोग से भाप बन जाती है। भाप से कितने ही यन्त्रों में गति देखी जाती है किन्तु गति को चेतना मानना महाभ्रम है। हवा लगने पर सूखे खनखनाते पत्ते भी उड़ने लगते हैं। परवी के जोर से जड़मति को सुजान अवसरवादी चाटुकार की बिखरी बिखरी खुशी को घनानन्द कहा जाता है। उड़ते पत्तों में चेतना और धुएँ-सी सर पर छाई पद-पदवियों में चेतना का

विकास ढूँढना गति अगति को चैतन्य मानने के भ्रम का ही परिणाम हो सकता है।

निराला के दुस्तर तिमिर मायावरण भेदकर प्रतिपद पराजित होने पर भी अप्रतिहत बन्ने रहकर लक्ष्य पर पहुँचने की बात, जड गति को—इजन के दौड़ने, सूखे पत्ता के उड़ने को—चनय चालित माननेवाले के लिए रहस्यात्मक प्रलापमात्र है। अपने विस्तार—भूमा मे अहकार के—प्रकृति के विकार महत और महत के विकार अहङ्कार के—मन के एक सूक्ष्म भेद 'कर्ताऽहमिति मन्यते' —अहकार के मूल ज्ञान का, अपने रूप में स्थित होने (तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्)—कैवल्य अवस्था को प्राप्त होने के आनन्द का अनुभव वाग्जाल मात्र प्रतीत होगा। जो 'विनय पत्रिका' नही समझता, वह 'अचना'-'आराधना' के गीत भी नही समझ सकता। वाग्जाल तो वह समझता ही है, सस्कार के बिना तत्व नहीं समझ पाता।

निराला की—

'किससे मैं कहूँ व्यथा—
अपनी जित विजित कथा ?'

—यह गहरी वेदना निर्गुनिया रहस्यवाद' नहीं, जड तत्वो से जूझते हुए चेतन की मानवीय संवेदनाओ भरे जीवन की हार-जीत की कहानी है।

आदर्शों और शाश्वत मूल्या की डाली लगा कर बाजारू सुख-सुविधाओ की दुकानें सजानेवाले से कवि अपने तिल तिल जलकर उजलते प्राणो की व्यथा कसे कहे ?

वड सवथ ने या ही नही लिखा होगा

We poets in our youth begin in gladness,
But thereof comes in the end despondency and madness

क्या वह आरम्भिक आनन्द निराशा और उन्माद मे विपरिणत हो जाना है और ईलियट जसे जागरूक कवि को कहना पडता है Be still and wait without hope—यह सतत मन्थेय है।

अनुभूति को किसी अनुभूति प्राप्त करने वाले की अपेक्षा होती है या नही ? चिन्तन अनुभूति नही है। बुद्धि मे वही आता है जो पहले इन्द्रिया मे होता है। हम जो कुछ जानते हैं वह बाहर से ही तो आता है। स्मृति भी बाहर से प्राप्त ज्ञान की ही होती है। जो प्रत्यक्ष नही होता, स्मृति उसके सजीव चित्र खडे कर देती है। इस प्रकार ज्ञान प्रवाह स्मृति चित्रो से उपबृंहित होता रहता है। कल्पना भी प्रत्यक्ष और स्मृति की भाति ज्ञान का एक अभय

स्रोत है यद्यपि वह सम्भावनाओं में क्षेत्र को अधिक उजागर करती है, वास्तविकता की भूमि को कम। या कहें, जो वास्तविकता में दुलभ है उसे ही वह सम्भावनाओं में सब सुलभ बनाती है।

ह्यूम के अनुसार प्रत्यक्ष स्मृति या कल्पना विशेष के बोधक हैं—विशेष वस्तु विशेष रूप विशेष भाव को प्रकाशित करने की शक्ति ही है उनमें सामान्य को प्रकाशित करने की नहीं। सामान्य की अनुभूति तो होती है किन्तु उसका वास्तविक अस्तित्व क्या कुछ हो सकता है? सत्ता अनुभूतियों की ही होती है अनुभावक की नहीं। चिन्तक अनुभावक नहीं होता।

हम जिसे आत्मा, ब्रह्म, विभु आदि अभिधानों से जानते हैं वह एक विराट अनुभूति ही तो है। प्रत्यक्ष स्मृति या कल्पना घूम फिर कर बाह्य की ही परिक्रमा में लीन हैं। आत्मा आभ्यन्तर अनुभूति है। प्रत्यक्षानुभूति न कह कर शङ्कराचार्य ने अपरोक्षानुभूति शब्द का प्रयोग किया है। यह परोक्ष नहीं है इसलिए प्रत्यक्ष है यही बात नहीं है। अपरोक्षानुभूति का प्रयोग 'नेति-नेति' जैसा इयत्ता का निषेधक है। परमहंस देव विवेकानन्द को बता सकते थे कि वह ईश्वर को विवेकानन्द (के रूप) से भी अधिक स्पष्टता से आमने सामने देख रहे हैं हम नहीं बता सकते। वैदेह जनक ने कुरु और पाञ्चाल से यज्ञ में आए हुए अनेकानेक वेत्ता ब्राह्मणों से कहा— विद्वद्वृन्द आप में जो कोई ब्रह्म निष्ठ हो वह सोने से मढ़े हुए सींगोंवाली मेरी एक हजार गौएँ ले जाएँ।

किसी को साहस न हुआ। याज्ञवल्क्य अपने शिष्य से बोले तू इन्हें ले जा।

तात्पर्य यह कि जिसे आत्मानुभूति होती है उसे अपरोक्ष अनुभूति ही होती है। निराला को हुई थी।

परिमल-काल की परम्परोत्तर प्रार्थना में भी भूमा का अपरोक्ष संस्पर्श है

'मेरे गगन मगन मन में
अयि किरणमयी, उतरो!'

मन गगन मगन होकर किरणमयी के अवतरण का प्रार्थी है। गगन व्यापकता में अद्वितीय है तो—

'तुम मेरे पास होते हो गोया
जब कोई दूसरा नहीं होता!'

का अनतर्निष्ठ एकान्त भी। अवश्य यह आत्मानुभूति अनुभावक से निरपेक्ष नहीं है। एकायन हो गई है—यह कहा जा सकता है।

मैं समझता हूँ, इससे सत्ता की महत्ता खण्डित नहीं होती। कारण, 'जानत तुम्हहिं तुम्हहि ह्वै जाई' की अनछुई ऊँचाई का राष्ट्रीयकरण सम्भव नहीं है। अनुभावक अनुभूति से पृथक नहीं होता। तन मन आत्मा से पृथक नहीं होते। ऐसे ही अनुभूति की सार्वभौमिकता अक्षुण्ण रहती है।

चिन्तन और अनुभूति का अन्तर समझने मे महादेवी के कुछ बहुत सावधानी से चुने हुए गीतों से निराला के किन्हीं अत्यन्त अनगढ गीतों की तुलना सहायक सिद्ध होगी। महादेवी का—

'माँगने पतझार से हिमबिन्दु तब मधुमास आया !'

—एक नितान्त काल्पनिक चित्र है जिसमे अनुभूति की आर्द्रता को छोड़कर और सब कुछ है। किन्तु निराला के—

'सुमन भर न लिए, सखि, वसन्त गया !'

मे और चाहे कुछ न हो, एक ऐसी तरल संवेदनीयता है जो अनुभूति के स्रोत से सद्य स्नात बाहर आई है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति का विस्तृत विवेचन यहाँ अनावश्यक है। इनकी अनुरूपता क्या, एकरूपता में आत्मा का अधिवास है। याज्ञवल्क्य की परम्परा मे निराला भी आत्मा का स्वरूप निरूपित कर गए हैं। काव्य का माध्यम प्रवचन को पी गया है, उपलब्धि की ज्योति सर्वत्र जगमगा रही है।

परमहंस देव, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि मे निर्मल बोध मात्र नहीं है। बौद्धिक कभी हार्दिक नहीं होता। साक्षी, चेतन, केवल की मुक्तावस्था की निष्क्रियता इनमे से किसी मे भी न थी—

गन्धवह है धूप मेरी
हो तुम्हारी प्रिय चितेरी,
आरती की सहज फेरी
रवि, न कम कर दे कहीं कर !'

—'अणिमा'

\+ \+ \+

'कैसी ज्योति छाँह से छलकी
दुर्बल ने हद कर दी बल की !'
—'गीतगुञ्ज'

— \+ \+

नयनों की नाव चढ़ा कोई,
यह खाली पाँव बढ़ा कोई,
मोती के माल कढ़ा कोई,
सागर से भँवर उतर आई !
ये भय या परिणय के फूटे,
आँखों से जो आँसू टूटे ?
पूछें किससे संशय छूटे
ये हर लाईं या हर आई ! —गीतगुञ्ज

अनुभूति का यह प्रत्यक्ष, निकटतम रूप एक से अलग एव होकर भी सश्लिष्ट प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति ने एक से एक को जोड़ दिया है। सम्बद्ध न होने पर भी यह असम्बद्ध नहीं है। हमारी अनुभूति सीमित न होती तो हम यह प्रार्थना न करते—

'देवीं वाचमजनयन्त देवा
स्तां विश्वरूपा पशवो वदन्ति
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ।'

प्राणों में रहने वाले देवताओं ने वैखरी वाणी का आविष्कार किया। हम उसे भिन्न भिन्न प्रकार से बोलते हैं। वह कामधेनु के समान श्रेय का अमृत पिला कर हमें पुष्ट, तुष्ट तथा आनन्दी बनाती है।

जो अज्ञेय है अनन्त है अलक्ष्य है अजन्मा और एकाकी है उस वाग्देवता के अतिरिक्त और कौन वाणी दे सकता है ?

मारण मोहन वशीकरण उच्चाटन को शब्द से जानने में अनर्थ की आशंका है अर्थ से जानना ही ज्ञान है। मारण काम क्रोध का मोहन आराध्य का वशीकरण मन का स्तम्भन विषय वासना का उच्चाटन विश्व की नश्वरता के मनन से सुख भोग का। निराला के गीत भी जन मन रंजन के लिए नहीं हैं। मन का उन्नयन आत्मा की उपलब्धि ही उनका लक्ष्य है।

क्षण-क्षण की अनुभूतियाँ आत्मा का एक तथा स्थिर नहीं प्रतीत होने देती। सुख दुख से लिपटी होने के कारण अनुभूतियाँ द्वैतभाव सिरजती हैं किन्तु शूल फूल तेज तिमिर का द्वन्द्व ओझल नहीं जाता वह तो जीवन के साथ मरण की भाँति अपने आप परछाईं बना डोलता है। विद्या की बात छिड़ते ही अविद्या आ धमकती है ब्रह्म का प्रसंग आते ही माया घेरा डाल कर बैठ जाती है। कभी दूसरा गजब टूट पड़ता है

"धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे नार्चिरन्मादर्चिरेवाग्नेनक्त ददृशे न धूम '
(ऐतरेय ब्राह्मण) ।

—दिन में आग का धुआँ ही दिखाई दिया, धधक नहीं, और रात में धधक ही दिखाई दी, धुआँ नहीं ।

डाक्टर रामविलास शर्मा ने दिन दहाड़े निराला की आग का धुआँ देखा दिखाया, तभी रात में धुआँते हुए अँधेरे में धधकती हुई आग की लपट अनदेखी रह गई ।

आलम्बन की अनुभूति आश्रय की अनुभूति न हो सकी । भूमि एक ही आयाम है, किन्तु भूमा तो बीच्वा की वह लकीर है जिसके समानान्तर खिंची भूमि की लकीर अपने-आप छोटी पड़ जाती है । जिसके चरण-स्पर्श की आकांक्षा से कवि के हृदय-कमल के सारे दल खुल गये, जिसकी मौन प्रार्थना उसके प्यासे प्राणों में गूंजती थी, वह माटी की मूरत में नहीं ढूँढ़ा जा सकता, वह मन की 'विदेह धारणा' है ।

रुपयों के अभाव में सरोज की सामान्य चिकित्सा भी न हो सकी, प्रयत्न के बाद भी दुलारेलाल भार्गव से निराला को दस रुपए न मिल सके और वह वीराने में दम तोड़ती हुई अपनी इकलौती लाडली बेटी से अन्तिम भेंट भी न कर सके—यह करुण वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था में आग लगाकर मानसवाद की दुदुभी बन जाती तो निराला को विरज की बुलन्दी से मिट्टी में घसीट लाना क्या बुरा होता, किन्तु—

'बीते मेरी, तज रूप-नाम,
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय
चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण,
कह पित पूर्ण आलोक-वरण,
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण,
सरोज का ज्योतिश्शरण तरण !' —सरोज-स्मृति

लिखने वाले की दमदार पीड़ा तूफानी नारेबाजी या दम दिलासे से नहीं हो सकती,

'दे, म करूं वरण,
जननि, दुख हरण, पद
राग रञ्जित मरण !'

कोई मुमूर्षु नहीं लिख सकता,

'मुक्ति हूँ म, मृत्यु मे
आई हुई, न डरो !'

मृत्यु की विभीषिका से काँपती [हुई वाणी नहीं है। यह आई तो राजी, नही तो रोजा भी नही है। यह तो उसी (नायमात्मा बलहीनेन लभ्य) आत्म-तत्त्व की उदात्त अभिव्यक्ति है जिसके अद्वितीय व्याख्याता स्वामी विवेकानन्द थ। मानवता को आत्मा की महिमा से मण्डित करने का बीडा उठाया था स्वामी जी ने। वह प्रेम प्रकाश से हृदय हृदय के बीच की खाइयाँ पाटना चाहते थे। आत्मोद्धार उनका लक्ष्य था अत भी दरिद्रनारायण की सेवा क वह प्रथम प्रेरक थे। अशिक्षा अस्वास्थ्य और अकिंचनता को समूल नष्ट किए बिना आत्मा का उद्धार नहीं हो सकता इस उनस अधिक कौन जानता था ?

यहा माध्यम क भिन्न होने पर भी निराला विवेकानन्द मे अभिन्न थे। रवीन्द्रनाथ की निविड हार्दिकता और विवेकानन्द की अनुभूत आध्यात्मिकता को जोडने वाली कडी क रूप म निराला की कविता को परखना चाहिए।

रवीन्द्रनाथ का विलास भी वैराग्य का बाना बनाए फिरता था, निराला का वैराग्य जहाँ विलास का बाना बनाता वहाँ वह रवीन्द्रनाथ के स्तर के कवि दिखलाई दत जहा वह विशुद्ध रूप म प्रकाशित होता वहाँ विवेकानन्द के स्तर के। द्विवेदी युग की गद्यात्मकता निराला म बदी गई है विवेकानन्द की कविताओ ने अर्चना को वह रम आलोक चटक चाँदनी से भिन्न, रोमण्टिक प्रभाव से शून्य अपनी निर्विशेषता म विशिष्ट दिखगा, वह गद्यात्मक नहीं है।

ऐसे ही निराला को स्वेच्छाचारी कहने भर मे काम न चलेगा उन्हें मुक्त पुरुष मानना ही होगा। अन्त वह विमल हृदय उच्छवास ही है जिसे (सूय—) कान्त-कामिनी कविता' समझ कर नायिका भेदी आलोचको ने दुर्योधन दुश्शासन को नीचा दिखाने वाले पौरुष का प्रदर्शन किया था। निस्सन्देह तब भी कविता-कामिनी कान्त दूसरे थे यहा तो सूय के ज्योति-लिप्त तारुण्य के स्पश से ज्ञानाश्रयी जडता की हिमशिला पिघल कर 'कान्त कामिनी कविता बन गई थी। भान की कविता को कविता का मान परास्त न कर सका, बेशक थोडी आफत पीछे लगा दी। साहित्य क ज्योतिषी बनारसी तरग म शोर मचाने लगे कविता निराला को छोडकर भाग गई किसी मधुशाला म छिप

गई, बापू के छौना की देख रेख में 'शनिवार' का इलाज कराने का इरादा था उनका, सो कलकत्ते का टिकट कटा कर 'विशाल' मल्ला के अखाड़े में गर्क और अब का द्वन्द्व दफन चली गई।

निराला ने पेट ममाम कर अध्यात्म पाला था। गिटपिट करने वालों को वह अपने धूने धता बताते थे। बकरी के चोर का कटारी से मारने वाले के घर हरदम बाहरी लगी रहती थी। इधर कोई भी कवि उनका समर्थक न था। फिर भी आलोचक उनका सब अरमान निकाले बगैर न रहा। कोई राजशेखर का दास बनाकर जंग-आलूदा तलवार निकालता, कोई रस-पंचाध्यायी का पाठ पढ़ा कर 'जुही की कली' और 'शेफाली' में रंगाभाग का इजहार करता। देश विदेश के साहित्य-चक्र से राष्ट्रीय मुद्राएँ निकालने वालों की निराली मौलिकता अलग, अपनी ही बहाई हुई हवा में फहराती। वह बहन कबीर हुए बिना कोई असली आध्यात्मिकता क्या जाने! राष्ट्रीयता अलबत्ता मिलावट से गबन बनती है! कोई भी गद्दार गद्दीनशीन देशभक्त हो सकता है!

आधुनिक युग में गांधी न होते तो बुद्ध और ईसा का पुनर्जन्म न होता, निराला न होते तो माया में कागजी कबीर को ही आध्यात्मिक कविता कहा जाता। निराला ने अतीत के सिद्ध साधक, सन्त कवियों को ही अपनी आजीवन कृच्छ साधना से प्रतीति-योग्य बनाया है।

जो जीवन भर उनकी निन्दा और अवहेलना सहता रहा, पर जब मुँह खोला, सही बोला

'वारित करो क्रमित मानव मन,
स्थिर करो सुगन्धवासित तन
तुम्हीं रहो, बहते रहते क्षण,
तारे विश्व, इस तरह तारो हे!'

—उसकी आध्यात्मिक उपलब्धि का लेखा-जोखा पेटू और घूसखोर गवाह दें इससे बड़ा व्यंग्य और क्या हो सकता है? काश कि दलालों द्वारा पुरस्कार प्रदान होते कभी उस अपुरस्कृत विराग की भी पुकार सुनते

'सीधी राह मुझे चलने दो!
अपने ही जीवन फलने दो'।

अलौकिक निःस्वार्थता से पृथक कर देने पर उसकी निरंकुश उच्छृंखलता का, पागलपन नहीं, तो और क्या अर्थ होता? उसका उदासीन दर्शन भक्ति विहीन न था। उसकी उच्चकाम आत्मा निर्गन्ध देह की भाँति संज्ञा शून्य न थी। 'एतावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः'।

यहाँ अनायास ही पूछ, वर्तमान आलोचना का गाना याद आता है कि (शुक्ल जी की) अंधभक्ति के कारण निराला के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का वास्तविक (?) मूल्यांकन न हो सका। जहाँ वेद पुराणों के 'नेति नेति' चिन्तन पर भी चाँद-तारा का पुनर्मूल्यांकन जारी है वहाँ शुक्ल जी के रास्ते छोड़ जायगा ऐतिहासिक चेतना सम्पन्न नव जागरण के अग्रदूत का पुनर्मूल्य निर्धारण क्यों ?

वक्तव्य है तो यही कि स्वदेशी भाषा विदेशी पारिभाषिक शब्दावली को देवनागरी में लिपि-बद्ध भर कर देती है, उसका साधारणीकरण नहीं कर पाती। किस देश की कौन-सी उपलब्धि हम शिष्ट उपहार के रूप में प्राप्त हो रहा है इसका बोध नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में हम स्थापकों के विकट बोध से आतंकित तो होते हैं उनके सहयात्री भावक नहीं बन पाते। कविता आतंक से गले के नीचे नहीं उतरती। दूसरी ओर निराला की भाषा है जो प्रत्येक मूल्य आँकने वाले की कसौटी पर कुछ अनचीन्ही रेखाएँ खींच देती है

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम — तुलसीदास

\+ +

बह बह कुछ कह कह आपस में,
रह रह आती हैं रस-बस में,—
कितनी ही तरुण-अरुण किरणें,—
देख रहा हूँ अजान दूर ज्योति पान द्वार! — परिमल

स्थापकों का सात समन्दर पार का ज्ञान—

'करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार!

की अनुभूति में अधिक सहायक नहीं सिद्ध होता। रस्किन टाल्स्टाय रोलां होते ही कितने हैं! बिम्ब प्रतीक-योजना के चक्रव्यूह से निराला की साधना का सार-तत्त्व अक्षत नहीं कर पाता। बात नए से नए ढंग की अभिव्यक्ति की नहीं, मूल आलोक आर्ष संस्कृति का है।

जहाँ तुलसी-दल और बिल्वपत्र तोड़ने के लिए भी पौदे और पेड़ से प्रार्थना की जाती हो —

तुलस्यमृतनामासि सदा त्वं केशव प्रिया
केशवाय चिनोमि त्वा वरदा भव शोभने!

× × ×

पुण्यवृक्ष महाभाग मालूर श्रीफल प्रभो
महेशपूजनार्थाय त्वत्पत्राणि चिनोम्यहम !

कि ओ अमृत तुलसी, तू तो विष्णु की चिर प्रिया है, मैं जो तेरी ये थोड़ी सी पत्तियाँ चुन रहा हूँ, इन्हें उन्हीं को अर्पित करूँगा। अपने लिए ऐसी ढिठाई मैं कैसे कर सकता हूँ ? मुझ पर प्रसन्न हो, मेरा मनोरथ पूरा कर !

× × ×

ओ पवित्र बिल्ववृक्ष, मुझे क्षमा करना, मैं तेरे पत्र भगवान शंकर की पूजा के लिए चुन रहा हूँ ! वहाँ निराला का यह चिन्तन-गीत —

नाचो हे, रुद्रताल !
आँचो जग ऋजु-अराल !
झरे जीव जीर्ण शीर्ण,
उद्भव हो नव प्रकीर्ण
करने को पुन लीन,—
हो गहरे अन्तराल !
फिर नूतन तन लहरे,
मुकुर-गाथ बन छहरे,
उर तत्-तत् का हहरे,
नव मन, साथ-सवाल ! —आराधना

प्राय सम शब्द गन्धी होने पर भी पन्त के सवत गीत[1] से सम्पूर्ण भिन्न भाव भूमि पर स्थित है। निराला को अनित्य, अपवित्र, दु ख और अनात्म मे नित्य, पवित्र, सुख और आत्मभाव की अनुभूति नही होती। वह 'अविद्या' स आक्रान्त नहीं हैं। 'विद्या' के सीमान्त प्रहरी हैं।

द्रष्टा चेतन है, बुद्धि जड। निराला परा-अपरा की भाँति जड-चेतन के प्रबुद्ध विवेकी हैं। उन्हें 'अस्मिता' क्लिष्ट नही करती

अशब्द अधरो का सुना भाष,
म कवि हूँ पाया है प्रकाश—
मने कुछ, अहरह रह निर्भर—
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर ! —सरोज-स्मृति
× × ×
तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ म पाता हूँ सम्मान ! —गीतिका

१ द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र—युगान्त

अतीन्द्रिय की अनुभूति के लिए निराला के काव्य में आरम्भ से अन्त तक सतत सघर्ष देखा जा सकता है। मन की जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं से ऊँचे चढकर जिस आध्यात्मिक अन्तःस्फुरण की अनुभूति निराला को हुई थी उसके अक्षर प्रमाण उनके काव्य में भरे पडे हैं। अतीन्द्रियावस्था की वे ज्योतिर्मयी अनुभूतियाँ प्रसाद और महादेवी के बौद्धिक चिन्तन में कहीं नहीं हैं।

यह ठीक है कि मन हर घडी उसी स्तर पर स्थिर नहीं रहता। जब कभी ही वह दुर्लभ क्षण प्राप्त होता है जो उसे इन्द्रियों की सीमाओं और बुद्धि की क्षमता के परे पहुँचा देता है। ऐन्द्रिय एव बौद्धिक का अतिक्रमण मन न कर सकता तो—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो,
न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम्।

की अनुभूति मनुष्य को कदापि न होती।

सीधी बात यह कि भौतिक स्तर पर असीम की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। अपने व्यक्तित्व का परिहार किए बिना समग्र पकड में नहीं आता। असीम आनन्द अहन्ता के उन्मूलन में से फटता है। इन्द्रियाँ अहम् को आगे रखने कहती हैं मन को उससे निबटना होगा अहम् को सबके आगे से खदेड कर सबसे पीछे खडा करना होगा —

तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान।

बात यह है कि अहन्ता अन्धकार है उसकी शोभा पीछे ही रहने में है, ऐसे गान का आलोक निखर कर उसे व्यर्थ हीन से बचा लेता है —

मेरा दुख अरण्य किसलय दल ज्वाल,
जली काली तुम कोयल,
दग्ध डाल पर बैठी प्रतिपल
सुना रही हो तान!
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान!!

तुलसीदास जी कहते हैं पोले बाँस को शिकायत है कि उसमें चन्दन-जैसी गन्ध नहीं भरी गई कबीर का आक्रोश ऊपर का दम भरता है —होगा वसन्त अपने घर का राजा! उसके आगमन से मेरा तन क्यों रोमांचित होने

लगा ? उसे देखकर खिलन खिलखिलाने वाले कोई दूसरे ही होंगे !

अथर्ववेद के एक सूक्त में कहा गया है कि प्रेय चाहने वाले को श्रेय की कामना करनी चाहिए। बृहस्पति उसका मार्गदर्शन करेंगे। (का० ७, अ० १, सू० ६)

बृहस्पति' बड़े-बड़ों में सबसे बड़े जो हैं। वही भूमि की सीमा में उबार कर भूमा की असीमता के दर्शन करा सकते हैं।

विरोधाभास की विनोद भरी वाणी में राजा भोज ने क्या ही ठीक कहा है कि प्रकृति और पुरुष का वियोग ही तो योग कहा जाता है !

हिंदी में आज भी इसके जोड़ का कोई आध्यात्मिक प्रणय-गीत ढूंढे न मिलेगा

बैठ लें कुछ देर,
आओ, एक पथ के पथिक-से
प्रिय, अंत और अनंत के,
तम-गहन जीवन घेर !
मौन मधु हो जाय
भाषा मूकता की आड़ में,
मन सरलता की बाढ़ में—
जल बिंदु-सा बह जाय !
सरल अति स्वच्छंद
जीवन, प्रात के लघुपात से
उत्थान-पतनाघात से
रह जाय चुप निर्द्वंद्व !
—परिमल

यह 'परिमल' की पहली रचना है—एक युगांतर लानेवाली काव्य-कृति की प्रणवमातृका। शिल्प की पूर्णता के अतिरिक्त इसके कथ्य की सरल गहनता रागात्मक मौन को जिस स्तर पर स्वरित करती है, वह क्या सतही प्रणय निवेदन का है ? जिस कवि का तारुण्य जीवन्मृत तरु-तृण गुल्मों की धरती पर नव जीवन प्रदायिनी ज्योतिर्मयी वाणी का प्रार्थी रहा, उसी की संध्या ऐसी गहरी टेर से वातावरण को गुंजा सकती है

जो मेरे न लगी जो विकल प्यास,
आँखों न देखने आना तुम !
भरकर न रही जो छवि उदास,
तो कभी न उस घर जाना तुम !!

कहते कहते जग हार जाय,
रहते रहते मन भार जाय,
जो उड़े न अम्बर हरे वास
तो अपने भाव न लाना तुम !
कलियों के हारों बहु प्रकार
उर लहरे गन्ध, बहे बयार,
यदि मिला न तुमसे हृदय छन्द,
तो एक गीत मत गाना तुम !

—गीतगुंज

तेज और आलोक के इस महान् गायक को धूल धुंध भरे परिवेश में स्थापित कर कुहा, कुहरा कुहेलिका विरोधी पहाड़ा पढ़ा गया हल्ला गुल्ला को इसकी आत्मा की ज्योति से जगमगाते हुए छन्दों पर तरजीह दी गई नारे को नगमा कहा गया।

जिस पौधे का फूल आकाश में सुवास बिखेरता है उसकी जड़ मिट्टी से अलग नहीं होती। अमरवल्लरी तो वह उधार ली हुई विचारधारा है जो पश्चिमी हवा में उड़कर पूरब के किसी बल बबूल पर टंग जाती है। ईलियट की निर्वैयक्तिकता मीरा की गीत माधुरी का खट्टा नहीं कर सकती।

अकविता के अविचारकों के लिए चिन्त्य है तो यह कि ईलियट वेस्ट लैंड' से फोर क्वार्टेट्स' की ओर बढ़ जाता है! श्रीअरविन्द की भाँति विप्लवी 'नवीन' अध्यात्म की स्वर्णदी में डुबकियाँ लगाने लगते हैं!! प्रगतिशील नरेन्द्र शर्मा का प्रयोगी कवि योगी हुआ चाहता है!!!

निराला में असंगतियों और अन्तर्विरोधों के छिद्रान्वेषियों को तुलसीदास जी के युवक समर्थित सर्वोच्च साहित्य के अध्ययन से समाधान मिल जायगा, बशर्ते कि अध्ययन समाधान प्राप्ति के ही अभिप्राय से किया जाय, anticorruption विभाग खोलकर corruption को बढ़ावा देने के लिए नहीं।

(२)

दिग्दश-कालजयी निराला को इन पत्रों के सन्दर्भ में एक विश्वस्त परिधि में बाँधना होगा इससे उनकी ऊँचाई कदापि कम न होगी क्योंकि गुणात्मक मूल्यांकन की कसौटी उन्हें उस ऊँचाई पर बहुत पहले से पहुँचा हुआ पाती है जिस पर दुनिया के कुछ इने गिने कवि ही पहुँच पाए हैं।

प्रतिभा का समविभाजन संभव नहीं है। खड़ी बोली के अति संक्षिप्त काव्य-इतिहास में अभी निराला सा विशेष प्रतिभाशाली कोई दूसरा कवि नहीं दिखाई

दिया। अन्तिम श्वास तक उनकी प्रतिभा भावात्मक रही। निषेधात्मक होती तो उनकी अमित तेजस्विता कुछ परवर्तियों की-सी तार्किक वक्रता में, श्रीहीन शून्यता में बदल जाती।

'छायावाद' जिनके कारण इतिहास में अमर हुआ, निराला और पंत-प्रसाद उनमें प्रमुख हैं। निम्नगामी प्रवृत्तियों के उद्गाता उस युग में भी गौण थे, बाद में तो उनका कोई नामलेवा ही न रहा। उन्होंने गुप्त-साम्राज्य के ऐश्वर्य-दीप्त स्वर्ण-युग का काव्य और कला में पुनरुज्जीवित करने वाले एक सम्पन्न और समृद्ध युग विशेष को अपनी सपाट अभिव्यंजनाओं और पतनोन्मुख, रुग्ण भावनाओं से भरकर धराशायी कर कर दिया। कथ्य और शिल्प में विश्वजनीन, क्षुद्र तटों और रूढ़ सीमाओं से किरण और पवन की तरह ऊपर उठे, आगे बढ़े हुए युग को राष्ट्र, समाज आदर्श और रूढ़ियों के ठेकेदारों ने मटियामेट कर भदई और रब्बी फसल उगाने के लायक चौरस और चौकोर कर लिया। छायावाद विदेशी था, राष्ट्रीयता खालिस स्वदेशी, समाजवाद ग्राम भारतमाता की कुक्षि से जन्मा हुआ, प्रयोगवाद राँची और आगरे के, भारतीय संस्कृति के अपने दिमागी अस्पतालों से स्वास्थ्य और सन्तुलन के प्रमाणपत्र प्राप्त किया हुआ!

छायावाद का सम्भ्रान्त ऐश्वर्य प्रकाश सघन घन घटाओं में छिप गया, 'राम की शक्ति पूजा' रह गई, 'कामायनी' और 'पल्लव' और 'ग्राम्या' के रूप, रस, गंध, स्पर्श काव्य-कला के सुरभित उच्छ्वास के रूप में शाश्वत हो गए —

हीरा-मुक्ता माणिक्येर घटा
येन शून्य दिगन्तेर इन्द्रजाल इन्द्रधनुच्छटा
याय यदि लुप्त हये याक,
शुधु थाक
एक बिन्दु नयनेर जल
कालेर कपोलतले शुभ्र समुज्ज्वल
ए ताजमहल!

'निराला' नाम से मेरा प्रथम परिचय फरवरी, सन् १९३० में हुआ था। तब मैं चौदह साल का, गाँव की पाठशाला में पढ़नेवाला एक 'नवयुवक' था। नवयुवक इसलिए कि सन् '२८ में ही मेरा विवाह हो चुका था और सन् '२९ में मैं साहित्य और व्याकरण की मध्यमा परीक्षा पास कर चुका था। हिन्दी और संस्कृत में दो चार कविताएँ भी लिख चुका था।

मेरा जन्म माघ में हुआ था। निराला नाम से मेरा परिचय भी माघ में ही हुआ। और फिर तो योगायोग इस हद तक सक्रिय हुआ कि कुछ ही वर्षों बाद मालूम हो गया, निराला का आविर्भाव भी माघ में ही हुआ था।

गाँव में 'सुधा' (वर्ष तीन संख्या एक) पहली पहली बार देखने को मिली थी। यह अङ्क निरालामय था। इसमें दो गीत ('दृगों की कलियाँ नवल खुलीं' और 'मेरे प्राणों में आओ'), 'पद्मा और लिली' एक कहानी, मनमुखा को उत्तर एक प्रतिवाद, पाँच पुस्तकों की संक्षिप्त समालोचनाएँ, सम्पादकीय टिप्पणियाँ आदि—इतनी सारी रचनात्मक और विवेचनात्मक कृतियाँ थीं कि उनके संश्लिष्ट प्रभाव ने मुझे इस चौंका देनेवाले नए नाम का, अजान में ही, आग्रही बना दिया। फिर तो मैं ढूंढ ढूंढ कर निराला की नई-पुरानी रचनाएं पढ़ने लगा और यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् का फल भी क्रमशः प्रत्यक्ष होने लगा।

सन् '३२ में मैंने 'शास्त्री' होकर गाँव छोड़ दिया और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विभाग में अमूल्य उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए दाखिला लिया। इस बीच हिन्दी संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कुछ रचनाएँ छप चुकी थीं—हिन्दी की 'शिक्षा' और 'सुकवि' (तब महामहोपाध्याय पं० सकलनारायण शर्मा 'शिक्षा' के सम्पादक थे और पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' 'सुकवि' के।) में, संस्कृत की 'संस्कृतम्', 'सुप्रभातम्' और 'सूर्य्योदय' में।

सन् '३१ में मैंने पहले पहल हिन्दी के एक कवि को गया की मन्नूलाल लाइब्रेरी में देखा था। वह थे पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी'। बचपन से उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बारे में सुनता आया था। ऊँच-नीच समझने या सोचने की तमीज तो न तब थी न अब है। प्रतिभा प्रदीप्त ललाट, काले मोटे फ्रेम के चश्मे के भीतर से चमकती हुई बड़ी-बड़ी आँखें, कुन्दन कान्ति चढ़े मोढ का चमरती गठीला बदन, राजहंस के डैना-से सफेद कपड़े और भव्य ललाट में रोली का एक बड़ा-सा गोल टीका—उनकी दिव्य आकृति ने पहली ही झलक में मुझे अभिभूत कर लिया था। सन् '४६ में 'वियोगी' द्वारा पहला कवि शीर्षक एक संस्मरणात्मक निबन्ध में मैंने इस दर्शन का सविस्तर वर्णन किया था। यों मेरी रुचि भी अजीब है। सिलसिलेवार बात करने की कोई तमीज न होने पर भी इत्मीनान से अपनी बौद्धिक थकान दूर कर लेता हूँ।

काशी में सन् '३२—३३ में सर्व प्रथम जिन चार हिन्दी-कवियों को देखा और सुना था, वे थे सर्वश्री जयशङ्कर प्रसाद, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा

और भगवतीचरण वर्मा। प्रसादजी को रत्नाकरजी की शोक-सभा में—टाउन हॉल में देखा और सुना था और वर्मा-द्वयी को यूनिवर्सिटी के आर्ट्स कालेज हॉल में। नीहार रश्मि युग की वह दुबली-पतली लज्जा और सकोच से अपनी ही छाया में छिपती छिपती-सी महादेवीजी कोई और थी। वह जिस स्वर में सुना गई, कोई एक भी शब्द नहीं सुनाई पड़ा था। भगवती बाबू ने 'नूरजहाँ की कब्र पर' नामक एक लम्बी सी कविता को बड़े ही ओजस्वी ढंग से, और रामकुमार वर्मा जी ने 'ये गजरे तारों वाले' को करुण-मधुर स्वर में गाकर सभी श्रोताओं का मन मोह लिया था।

मेरे सस्कृत के नील निरभ्र आकाश में जब हिन्दी के ये चार तारे उग आए। यों साधन के अभाव में नौकरी चुनते हुए दिन गुजर रहे थे। वाचनालय में सामयिक और बड़ोदा वाली लाइब्रेरी में प्राचीन साहित्य का पारायण करता पर ऐसे काँटा निकलता नजर नहीं आता था।

हिन्दी कविता की सुगन्ध भरी साँस अभी मेरे तन को छूकर तरङ्गित नहीं करती थी, मन में मधुर स्मृति बनकर बसती न थी। 'तोमा पाने धाय तार शेष अपखानि' का ही सहारा था।

सस्कृत पढ़ते बारह बरस बीत चुके थे। सुखी से मत्री दुःखी से सवेदना, पुण्यात्मा के प्रति प्रसन्नता और पापात्मा की उपेक्षा से चित्त की निर्मलता की शिक्षा मिल चुकी थी। किन्तु कालिदास ने कुछ और ही सिखाया था —

न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् !'

कि जो महान पुरुषों के लिए अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करता है, केवल वही पाप का भागी नहीं होता, वह भी होता है जो उसे चुपचाप सुन लेता है !

पूर्ण प्राणे चावार याहा, रिक्त हाते चासने तार, मिक्त चोखे यासने द्वार" पढ़ा था, खाली हाथ निराला के सामने कैसे खड़ा होता ? एक दिन 'सुधा' का, जुलाई १६३३ का, अङ्क देखने को मिला। यह भी फरवरी, १६३० वाले अङ्क के समान ही निरालामय था। निराला की अनेक रचनाओं के अतिरिक्त इसमें नलिनविलोचन शर्मा का वह समीक्षात्मक लेख भी था—'निराला की 'अप्सरा', जिसे पढ़कर प्रेमचन्द के प्रशसकों के दल में खलबली मच गई थी, इस में निराला के विरुद्ध जहर उगला गया था।

इसके सम्पादकीय में हिन्दी में 'आलोचना' शीर्षक एक विचारोत्तेजक टिप्पणी थी, शैली से मैंने जिसे निराला लिखित समझा था, वर्षों बाद मालूम

हुआ, वह सचमुच उन्हीं की लिखी हुई थी। उस टिप्पणी में कालिदास के एक श्लोक (हस्ते लीलाकमलम्) के वक्तव्य पद की बड़ाई की गई थी, साथ ही, 'ठोकर लगी पहाड़ की तोड़े घर की सिल'—कहावत को चरितार्थ करते हुए 'हिन्दी-आलोचना' में संस्कृत के बड़े बड़े पण्डितों की आलोचना शक्ति की कमी पर व्यंग्य भी किया गया था। मैं तब इस चुनौती के लायक हर्गिज न था, मगर मुझसे जवाब दिए बगैर न रहा गया।

चकोर एकटक हेरता है इसलिए वह चाँद में है, मोर निहारकर नाचने लगता है इसलिए वह सजल जलद में है पपीहा रट लगाए रहता है इसलिए वह स्वाती में है झुण्ड के झुण्ड भौंरे भागे आते हैं, इसलिए वह फूल में है।

तब तक जो दो एक अनुवाद मेघदूत के यामा और दीपशिखा' की-सी सज्जा के साथ छपे थे वह छन्द और भाषा की भागदौड़ में ही अनुवादक की स्वेद सिक्त शक्ति के परिचायक थे। कालिदास की आत्मा उस मरु भूमि में एक बूंद रस भी न छिड़क सकी थी।

यद्यपि निराला ने 'संस्कृत के बड़े बड़े पण्डितों की सुस्पष्ट चर्चा नहीं की थी किन्तु तब आचार्य प० महावीर प्रसाद द्विवेदी या आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल के अलावा हिन्दी में और कौन कौन से बड़े बड़े 'पण्डित थे, मैं नहीं जानता था। अतः 'बड़े-बड़े पण्डितों का अर्थ मैंने संस्कृत के बड़े बड़े पण्डित ही समझा था।

संस्कृत में अल्पज्ञ को बड़ा पण्डित कभी नहीं कहा गया। प्राचीन काल के ऐतिहासिक ख्याति के पण्डितों का प्रसङ्ग छोड़ देने पर भी उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में बाल शास्त्री शिवकुमार शास्त्री गङ्गाधर शास्त्री रामावतार शर्मा दामोदर गोस्वामी बालकृष्ण मिश्र बच्चा झा महादेव शास्त्री— ऐसे प्रकाण्ड पण्डितों की एक विशाल परम्परा कालिदास की कविता की ममज्ञ रही है।

मैंने निराला के इस अतिरञ्जित आरोप का युक्तियों समेत खण्डन किया और चित्त से हीनता का विचार भाड़कर उसे प्रतिवाद के रूप में प्रकाशित करने के लिए भेज दिया। उन दिनों निराला ही मुख्यतः 'सुधा' का सम्पादकीय लिखते थे। उन्होंने एक अज्ञात कुलशील लेखक के ठेठ बिहारी हिन्दी में लिखे हुए उस अधकचरे लेख को पढ़ा, और भरसक विस्मृति के अँधेरे में डाल दिया।

दो वर्षों बाद जब निराला मुझसे मिलने आए प्रसादजी के पास अचानक उसी का प्रसङ्ग छेड़ बैठे कि जिसकी चर्चा मैंने स्मृति के वातायन° में की है।

° प्रसाद की याद स्मृति के वातायन

इस पत्र-गुच्छ में कदाचित् सबसे बड़ा पत्र दो वर्ष पीछे में, अवचेतन में सञ्चित, इसी कालिदासीय सन्दर्भ में सुवासित है।

निराला में आवर्तित जैसे कुछ भी नहीं, जन्म जन्मान्तर से अन्तमन में जमी हुई प्रज्ञा ही उत्ताप के अनुपात से पिघलती रही है।

मान्य-अमान्य होने का सवाल एक ओर, और संस्कृत के इस गहनतम काव्य शिल्प का निराला द्वारा मौलिक विश्लेषण एक ओर।

इस बीच मैं निराला को पढ़ता रहा था। पढ़ता मेरी जनमघुटी में पड़ा है, इसलिए लोगों के लाख खाका उड़ाने पर भी पढ़ता रहा था। बात यह है कि तब निराला महाकवि महामानव, महाप्राण नहीं कहे जाते थे। मैं संस्कृत में कुछ ऐसा लिखने लगा था कि मेरी साहित्यिक चेतना को नकारना कठिन था, मगर उस चन्दन चोटी वाले सुसंस्कृत वातावरण में लंबे बाल रखना और कविता लिखना ही दुश्चरित्रता का प्रत्यक्ष प्रमाण था[1] (यद्यपि श्री शिवप्रसाद गुप्त के घाट पर गङ्गा नहाने, चार मील पैदल चलकर विश्वनाथ दर्शन करने में भी कम ही छात्र मेरे प्रतिस्पर्धी हो सकते थे), फिर निराला का स्मरण, नामोच्चारण और गुण-कीर्तन तो शेष तीनों (अनुमान उपमान और शब्द) प्रमाणों को भी इकट्ठा कर अपनी साख का खाका उड़ाना ही हो सकता था। वे दिन भी क्या थे! जिस घड़ी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के साथ महाकवि निराला छात्रावास में मुझे ढूढ़ते हुए मेरे कमरे में आए थे, तीनों सीटें (बलिया, गोरखपुर और आजमगढ़ की) पलक झपकते खाली हो गई थीं। डा० बड़थ्वाल के बँगले से लौटने पर जब मैंने उन तत्त्वों से उड़नछू हो जाने का सबब पूछा तो उन्होंने बहुत कुछ उत्तम मध्यम कहा। मुझ पर असर न हुआ तो बोले पं० चन्द्रबली पाण्डे से पूछ देखिए निराला ने उन्हें मूर्ख कहा है।

'पं० चन्द्रबली पाण्डे उर्दू निकालने में एड़ी चोटी का पसीना एक करते हैं सुनाई होगी उल्टी-सीधी निराला को भी!'

---

१ सुप्रभातम्' में प्रकाशित मेरी एक कविता अखिल भारतीय स्तर पर सर्वश्रेष्ठता के लिए स्वर्ण-पदक प्राप्त मेरे

विरजुर्ध्वा धारां विमलतरधारामविरत
वितर्वत वङ्क्षीतनुमनसि मोदामनसिजम
न योमिर्नोविदो घन इह तडिद्दिू खलु यथा
सखे खे खेलन सन खलयति मुनीनामपि मन।'

—इस श्लोक के समान ही बहुत दिनों तक चर्चा में रही थी।

इससे क्या ? कहाँ वह एम० ए० पास और कहाँ निराला मट्रिक फेल ! फिर व हमारे सगोत्र भी हैं, गार्जियन भी !" (तब तक पण्डित हजारीप्रसादजी द्विवेदी परवान नही चढे थे नही तो समवत व उन्ही को अपना सगोत्र गार्जियन बताते !)

मैं हँस पडा। क्यो नही ? गा तायते इति गोत्र !'

'क्या कहा ? क्या कहा ?"

कुछ नही, भर्तृहरि याद आ रहे हैं —

"गात्र सेवनसेन किम ?"

इस पर जो वे भभके तो फिर एक ही साँस मे वह सब सुना गए जो अब कही पतीस वर्षों के बाद डा० रामविलास शर्मा अपने विशाल ग्रन्थ म सयुक्ति, सप्रमाण, सोदाहरण सहेज सके है, घटित को सघटित कर निराला के अध्ययन की आधारभूत अनिवार्यता के रूप मे स्थापित कर सके हैं।

उन दिनो वहा प्रवशिका परीक्षा मे एक पुस्तक पढाई जाती थी— Winners of Freedom । मैंने पढी थी । उसमे पहला लेख सुकरात पर था। सुकरात पर जितने आरोप लगाए गए थे उनमे एक होनहार नवयुवको को बरगलाना भी था । एकाग्रचित्त से भारतीय सस्कृति के इस महापुराण को सुन कर मैं होठो म बुदबुदाया

Sow the wind and reap the whirlwind । अच्छा हुआ आप लोगो ने ऐन मौके पर मुझे आगाह कर दिया अब भी न चेतूँ तो अपनी बला से !

कुछ रोज बाद मैं प्रकोष्ठ बदल कर मराठी गुजराती और बगाली लडको के साथ रहने लगा । अन्तिम वष मध्यप्रदेश—जबलपुर, रीवा, सतना के छात्रो के साथ था।

अनिलवरण राय और अनुकूलचन्द्र चक्रवर्ती के ससग म आने पर—

'आसनतलेर माटिर' परे लुटिये र'बो

तोमार चरण धूलाय धूलाय धूसर हबो !

गाना सीख गया था। बगला मैं बचपन से जानता था। श्री शान्तिप्रिय जी द्विवदी ने बताया था 'निराला को समझना चाहते हो तो बँगला साहित्य का अध्ययन करो।' दो तीन वर्षों मे मैंने महाजन-पदावली', मेघनादवध से लेकर सत्येन्द्रनाथ दत्त के बेलाशेषेर गान तक फला हुआ काव्य साहित्य प्राय पढ डाला था। उन्ही दिनो महादेवीजी के सम्पादकत्व म निकलने वाले 'चाँद म माइकेल मधुसूदन, टगोर आदि पर मेरे कई लेख प्रकाशित भी हुए थे।

एक दिन शान्तिप्रियजी के पास भैरवी-गान, सूरदास-प्रार्थना, उर्वशी, अभिसार आदि कविताओं की आवृत्ति की तो वह सजल नेत्रों से विहँस कर बोले

'इतनी जल्दी कैसे याद हो गई ?'

मैंने कहा 'कितनी मधुर हैं ये !'

'फिर' ?

'ब्राह्मणो मधुरप्रिय !'

× × +

परिणाम की भिन्नता में क्रम की भिन्नता कारण है। क्रम की भिन्नता सहकारी कारणों से होती है। शिद्दत की गर्मी हो तो पानी भाप बन जाता है, कड़ाके की सर्दी पानी को जमा कर बर्फ बना देती है।

एक रूप से दूसरे रूप में कोई वस्तु एक ही पल, छिन या दिन में नहीं बदल जाती। हाँ, परिवर्तन का क्रम कभी लक्षित होता है, कभी असलक्ष्य रहता है। 'फलेन परिचीयते' के अनुसार परिणाम से वह अनुमित होता है। एक के बाद दूसरे, तीसरे क्षणों के प्रवाह में क्रम ही पूर्वापर का मापक होता है।

क्षण क्या है ? काल का वह छोटे से-छोटा अंश, जिसे अब और छोटा नहीं किया जा सकता। दो क्षण इकट्ठे नहीं हो सकते। एक के पीछे दूसरा क्षण अपना सिलसिला चलाए चलता है। यही क्रम है।

मेरे शांत मन में एक अशांत मन बसेरा लेने लगा था। जिस क्षिप्र गति से यह परिवर्तन तन-मन को आक्रांत कर रहा था, उसका विश्लेषण अति कठिन है। मैं परम्परा भुक्त प्रसङ्गों से कतराकर नए उपजीव्य की खोज, नए स्पर्श की स्पृहा नए आवेगों की हलचल में डूबा खोया रहने लगा था।

—"एसेछ एसेछ"—एइ कथा बले प्राण,

"एसेछे एसेछे"—उठितेछे एइ गान,

नयने एसेछे, हृदय एसेछे धेये।

की चञ्चल धारा में आविष्ट अस्तित्व बहता-बहता सा प्रतीत होता। स्वानुभूति को जागरित करने की गीति-काव्यात्मक अभिरुचि उमड़ने लगी थी। जातीय संस्कार ने कथ्य और शिल्प के चुनाव में थोड़ी छूट दी थी निष्प्राण परम्पराओं और अर्थहीन आधारों के आग्रह से कटकर गम्भीर अनुभूति को सहज ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए उत्प्रेरित किया था, किंतु माध्यम के चयन में, जाने क्या उसने युगधर्म की पुकार अनसुनी कर संस्कृत पर ही अतिरिक्त

आग्रह दिखलाया, और मैं लिखने लगा

निनादय नवीनासये वाणि वीणाम् !

× ×

स्वग मत्यनयनपथव प्रेक्ष्यमाणा पुरस्ता—

दासस्ते सर लघुतर साध्वनेनाध्वनेति !

× ×

लीलाशीलालिलोलत्करतलकलितोत्तालताल सहास्य

सास्य श्रीशारिकायास्तिरयतु दुरित मानस मानवानाम

इस प्रकार मिश्र सस्कार ने मुझसे 'काकली' के गीतो और श्लोकों का रचना करा ली। कहा का आवेग कहाँ की सवेदना अबोध जिज्ञासा के तुतले स्वर सजल विनोद म बिखर कर रह गए।

छपने पर और-और पत्रिकाओ के साथ सुधा म भी समीक्षाथ 'काकली' की प्रतियाँ भेजी। सस्कृत और बगला की कितनी ही पत्र पत्रिकाओ म सक्षिप्त किन्तु सार गभ समीक्षाए प्रकाशित हुइ, 'सरस्वती' और 'विशाल भारत' ने भी ऊँचे शब्दा म आशसित किया, किन्तु 'सुधा' मौन रही। कालिदास की कला वाला प्रतिवादात्मक लेख 'सुधा' के गरल जठर म जल चुका था,—सस्कृत का आदश हिन्दी के यथाथ से टकराकर चूर चूर हो चुका था। अब 'काकली' भी काग राग म तब्दील हो रही थी कि निराला का अत्यन्त अप्रत्याशित पत्र आया। इस सुदीघ काल व्यापी पत्राचार का प्रारम्भ यहीं से हुआ।

इस बीच सन् ३४ म मैं साहित्याचाय्य हो चुका था। बिहार और उडीसा भर मे सवप्रथम आया था। स्वणपदक से समादृत भी हुआ था।

सन् ३५ म पूवबङ्ग सारस्वत समाज ढाका से साहित्यरत्न' की उपाधि प्राप्त की थी। पुराने रकाड तोडकर सर्वोत्तमता का एक नया रेकाड स्थापित किया था। प्रशस्ति समेत स्वणपदक मिला था। केन्द्राधीशक के निर्देश से मैंने बङ्गाक्षरा म ही प्रश्ना क उत्तर लिख थे।

और काशी विश्वविद्यालय स प्रथम श्रेणी म शास्त्री होकर शास्त्राचाय्य की तैयारी कर रहा था।

'चयनिका की भाति गोल्डन ट्रेजरी भी घोट डाली थी किन्तु अग्रेजी की कोई परीक्षा नही दी थी। सन् '३६ म प्रवशिका पास की। निराला के प्रथम दशन क समय जाहिरी तौर पर यही मेरी हैसियत-उरफ़ी थी।

उस सोने क सपने को

देखे कितने दिन बीते ! —महादवी

सन् '३५ के माघ (फरवरी) में फूलो भरे बाग और कमल भरे तडाग को खिलाती हुई एक द्युतिमयी किरण निकली थी। निराला का विश्वविख्यात काव्य 'तुलसीदास' इसी महीने से 'सुधा' में क्रमश छपने लगा था और जून (ज्येष्ठ) के अङ्क में किसी कारणवश न छप सकने के कारण जुलाई '३५ वाले अङ्क में पूरा हुआ था।

व्यक्तित्व के प्रक्षेपण (Projection of personality) की चर्चा अब हिन्दी म धडल्ले से होने लगी है। राजशेखर ने हजार साल पहले—यत्स्वभाव कविस्तदनुरूप काव्यम्' लिखा था। सन् '३४ तक के सतत अध्ययन के क्रम में निराला की आकृति प्रकृति की जो कल्पना मैंने की थी उसका बहिरङ्ग Heroic और अतरङ्ग Sublime था। दृप्त और उदात्त—केवल यही दो शब्द सौरमण्डल को साकार करने के लिए पर्याप्त थे। 'तुलसीदास' के प्रकाश म मेरी कल्पना पख फडफडाकर उड चली।

ऋग्वेद म धनुष से दिग्विजय करने का एक प्रसङ्ग आया है 'धन्वना सर्वा प्रदिशो जयेम"। हिन्दी कविता की स्वयवर-सभा म जसे घन-नाद धनुष्य से निराला ने 'तुलसीदास' के शब्द-वेधी बाण चलाए हैं, तब मुझे ऐसा ही प्रतीत हुआ था। तब तक 'कामायनी' छपी (इस रूप म लिखी भी जा चुकी थी या नहीं, कहना कठिन है) न थी, दूसरा कोई भी इतिवृत्तात्मक उथला काव्य 'तुलसीदास' से आँख नहीं मिला सकता था।

मैंने निश्चय कर लिया, निराला की काव्य कला पर सबसे पहला लेख मैं लिखूगा।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने इतनी सी बात के लिए आख मैली कर ली। एक दिन बालकवि आद्याप्रसाद चतुर्वेदी के साथ होस्टल से लोलार्कंकुण्ड की ओर ले जाते हुए उन्होने मुझसे कई विचित्र प्रश्न किए 'पन्त और निराला मे कौन बडा लगता है ?'

'निराला !'

'क्यों ?'

'क्योंकि पन्त समझ में आ जाते हैं, आसानी से मैं उनका अनुकरण भी कर लेता हूँ, किन्तु निराला ऊपर का दम भरनेवालों के भी पल्ले नहीं पडते, मैंने दाएँ-बाएँ टटोलकर देख लिया है, और निराला का अनुकरण कोई क्या खाकर करेगा ?'

द्विवेदी जी तिलमिला कर आद्या की तरफ मुडे, वह हस रहा था। अब तो उन्हें एक-एक पग चलना दूभर हो रहा था। गिन गिनकर पर रखने

पडते थे।

'आप पन्त का अनुकरण '

जी हाँ अनुकरणीय तो वही है पन्त जी की 'छाया' की पंक्तियाँ हैं

कहो कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय, तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि, नल सा निष्ठुर कोई ?

और मेरी 'कल्लोलिनीम्प्रति' के पद है —

केन कथय ताडितहृदयाऽमूरेव त्वमिह विरक्ता,
भिन्नस्वान्ता कान्तारे कान्ते, केनासि विभक्ता ?
अधरणिजा गिरिजे, रघुवंशोऽनूढाऽप्रतिहतलङ्का
केन प्रेषितवाक्यधुना रघुपतिना, का शङ्का ?
वल्मीकावलिरिह वने न वाल्मीकेश्श्रुतमभिधानम्
कुशाल्लवमध्ये मध्येविपिन कस्त्रास्पत इह मानम् ?
भीमभूमिमत्क्रम्य सप्तेस्समसुषमा दमयन्ती
त्यक्ता केन नलेन कपङ्कार विजने दमयन्ती ?
नववारण बालया प्रियवयया, ऽनसूयया यासि—
कण्ठीरवक्रमयाऽऽलिता, किं सत्य शकुन्तलाऽसि?

—काकली

तुम्हारी आँखों का आकाश
खो गया मेरा खग अनजान
मृगेक्षणि, बाल विहग नादान !

—पन्त

भ्राम्यन्ती ते स्वप्ने मे प्रीतिविहङ्गमबाला
कुत्र गता ? क्व ग्राम ? हन्त ! कुर्म्या किमिह वनबाला ?
मृदुदिल्लताशीतले तले ते मञ्जुललोचननीडे
स्वतुतलकोमलकिसलयनिकुरम्बवीतरविपीडे—
भ्रान्तेवाशु विदेशासौ कुर्म्या किमिह वनबाला ?
अपरिचिते मग्राम वने, मे प्रीतिविहङ्गमबाला !

—काकली

अभी उस दिन सुधा में उनके एक गीत का मुखडा पसन्द आ गया

नव हे, नव हे!

और मैंने तुरत ही कई गीत लिख डाले

नयने नयने!
प्रियसुख विस्तीर्णे मे कण्टककल्पितशयने!
मोदाश्रुमिश्रनयने, पश्यसि सस्मितमयने!

—काकली

× ×

मधुर मधुरम्!
रूप, सौन्दर्य, लावण्य ते मधुर, मधुरम्!
प्रिये, परम,—वरवचनविरचनाञ्चितमधुमकरन्दम्
पतति ते ऽधरे पीयूष सतत मन्द मन्दम्,—
अयि, वितरदमरताम्पिबते!

—काकली

आचार्य ने अर्थ समझा दिए। अब तक मेरे बारे में द्विवेदी जी सुनते ही सुनते थे, कभी कोई कविता नहीं सुनी थी। तब भी मेरा जीवन राग विराग, आसक्ति-अनासक्ति के बीच घूमता रहता था। सत्रहवें ही साल में मैंने लिख डाला था

तव वसन्तोल्लासक सदा सुरभिरनादिरनन्त
जीवनवने न मे कदाचिदायातो हन्त, वसन्त!

—काकली

निराला प्राणों की प्रचण्ड शक्ति के स्रष्टा थे। मुझ-सा अल्पप्राण उनके महानाद को प्रतिनिनादित नहीं कर सकता था। उनका लालित्य भी 'ललित-लवङ्ग' न था, माधुर्य तो ऊर्जा से तरङ्गित होता ही था

ज्योति की तन्वी तड़ित-द्युति ने क्षमा माँगी!

—गीतिका

—में कैसी स्वस्थ प्रफुल्लता प्रकाशित हुई है!

ज्योति-तप्त मुख तरुण वय के
कर से प्रखर धुलीं!

—गीतिका

अचपल ध्वनि की चमकी चपला,
बल की महिमा बोली अबला,
जागी जल पर कमला अमला मति डोली।

—तुलसीदास

कहीं नीली नसें नहीं उभरी हैं, कहीं पीला चेहरा नहीं झुका है। यह सौन्दर्य स्वस्थ वृन्त पर ही खिलता है, यह माधुर्य saddest thought से नहीं

छहरता।

किन्तु मेरे निर्विकार, निरुद्देश अभेद्य मौन की व्याकुलता कुछ इस भांति प्रकट हुई पल्लव के प्रवेश' की तुलना आ ड्वर्ड्स' की भूमिका में की जाती है। मैं नहीं जानता, अभिरुचि और ज्ञान को समान सम्मान मिलता है ? पन्त जी जिस तैयारी से उतरे हैं जान पड़ता है, स्वयं प्रकृति ने उन्हें इस महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए (उनमें लीन होकर या उन्हें ही अपने में लीन कर) अपने हाथों सजाया सँवारा है। अनुभूति हो भी अनुभूति की विकृति तो उनमें कहां नहीं है।

मेरे भाव अभाव की देन हैं। घर बाहर जीने का कहीं कोई सहारा नहीं। मैं एक दुख पर चले आते दूसरे दुख को सहन करने के लिए गाता हूं, जन्म गत, निजल अभाव के आवर्त, बुदबुद तरङ्गों से अनाकुलित रहने के लिए काल्पनिक कविता लिखता हूं। मेरा साहित्य या दर्शन का 'ज्ञान' पुस्तकीय ही तो है, जीवन का कोई भी कोना मैं नहीं पहचानता। मेरे पुटपाक में गलकर उसने भाव और रूप में नया जन्म नहीं लिया है। पन्त अनुकरणीय हैं, मैं उनके साँचे (सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल, उषा का था उर में आवास, अकेली आकुलता सी प्राण ! कहीं करती तव मृदु आघात) को छूने की कोशिश भी करता हूं किन्तु संस्कृत में विशेषण विपर्यय, मानवीकरण या प्रतीकविधान की पद्धति पचक है, वहां

> नवोढ़ा बाल लहर
> 	अचानक उपकूलों के
> प्रसूनों के ढिंग रुक कर
> 	सरकती है सत्वर !

को सरकाना आसान नहीं है। मैं पन्त नहीं हो सकता।

द्विवेदी जी ने मुस्करा कर झिड़क दिया 'इस अवस्था में यह दम्भ अच्छा नहीं लगता। मैंने आपकी काव्य रुचि को परिमार्जित करने के लिए पन्त का पथ दिखलाया था पन्त से अपनी तुलना करने के लिए नहीं। यह आच्छादन है, भोंडापन है

'आपको पन्त का प्रशस्त पथ नहीं, निराला की कटीली-पथरीली पगडंडियाँ पसंद हैं। फिर क्या पत्थर से सिर टकराइए कौन मना करने वाला है !'

अस्सी के चौराहे पर पान खाते खिलखिलाने और पीक की भांति अन्तिम वाक्य थूकते हुए द्विवेदी जी 'नमस्कार' कहकर लोलार्ककुण्ड की ओर बढ़ गए।

मैं उस विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था जहाँ प्रो० महानी विनोदशङ्कर व्यास

की तुलना मोपासा से करते थे, हरिऔध जी कवि-सम्राट् कहलाते थे, आचार्य शुक्ल को डा० जॉनसन कहा जाता था, प्रेमचन्द जी के 'जागरण' में प्रसिद्ध वक्ता और लेखक छात्र प० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' 'चरित्र रेखा' लिखने के बहाने निराला के लिए अशिष्ट और आपत्तिजनक शब्दों का धड़ल्ले प्रयोग करते थे। जाने क्यों, वहाँ का सम्पूर्ण वातावरण ही निराला विरोधी था।

सन् '३५ तक निराला का सार्वत्रिक विरोध मैंने अपनी आँखों देखा था। व्यक्तित्व आतङ्ककारी और प्रतिभा प्रताप-तप्त—यह प्रतिक्रिया निराला-जैसे महान कवि की संवेदना के अवसर पर भी व्यक्त की जाती थी। दरअसल कोयले की दलाली में कौन हाथ काले करता, जबकि कलकतिया विशाल भारत ताबड़तोड़ हीरे की खान खोदे जा रहा था!

Then with the year
Seasons return, but not to me returns
Day or the sweet approach of even or morn
Or sight of vernal bloom or summer's rose
Or flocks or herds or human face divine

—Milton

'वर्तमान धर्म' के सप्त महारथियों द्वारा रचित चक्रव्यूह का भेदन निराला किस कौशल से कर रहे थे, मेरी आर्थिक धृतराष्ट्रता का वात्सल्य का संजय समझाता रहा था। मैं इस भूख प्यास में और अधिक तीव्रता लाने के लिए अब युनिवर्सिटी से नागरी प्रचारिणी सभा तक की दौड़ लगाने लगा था।

शब्द का बाह्य कम्पन अन्तरिन्द्रिय में प्रवाहित होकर अर्थ बनता, फिर प्रतिक्रिया की प्रकाश धारा उसे चेतना और गति देकर ज्ञान का रूप प्रदान करती रही। बाह्य की अनुभूति में शब्द, अर्थ और ज्ञान की समष्टि ही तो होती है।

मैं उन दिनों अभिव्यक्ति की अन्तर्गूढ़ घनी व्यथा सह रहा था। संस्कृत में न यह सब लिखा जा सकता, न वहाँ इसके लिखे जाने से कोई प्रयोजन सधता दिखता था। मैं महज संस्कृत के जोर से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'सीतार वनवास' से माइकेल के 'मेघनादवध' तक निर्बाध पन्ना चला गया था—जीवन और साहित्य की भिन्नजातीय अनुभूतियाँ सँजोता हुआ। साहित्य की जीवन से अभिन्नता के रूप में सार्थकता समझे बिना हिन्दी में नहीं लिखा जा सकता था। हिन्दी मेरे लिए संस्कृत और बँगला की भाँति ज्ञान की भाषा न थी, अनुभूति की भाषा थी, और अनुभूति की भाषा में तब तक साहित्य नहीं लिखा

जा सकता, जब तक साहित्य को जीवन के अभिन्दन के रूप में स्वीकार नहीं कर लिया जाता।

यह स्वीकृति आज अतीत संगीत-सी मीठी मालूम देती है, अतीत, जो स्मृतियों के तूफान में आत्मविस्मृति का चौमुखा दीपक जलाया करता था,—संगीत जो बिखरी स्वरों के समारोह में प्रणव-नाद था, क्रत में अमन का संधानी था कि जिस निराला के साहित्य, संगीत, कला, जीवन-दर्शन और आचार व्यवहार की ऐसी कठोर सार्वजनिक आलोचना आए दिन होती रहती है आखिर वह कैसा दुर्दान्त प्रतिभा है? इतने आघात प्रतिघातों के निजल जलद जाल को छिन्न भिन्न कर ज्योतिवलयित आकार में अप्रतिहत, उद्दीप्त वह व्यक्ति क्या है? गलित-कमल मणाल उपमान नहीं बनता, सुगन्ध विहीन पवन के लिए कोई नाक मुह नहीं खोलता,—क्या है वह उनिद्र प्रभा जो हर ओर से घेरे हुए अज्ञान के अंधेरे में आग्नेय श्वास प्रश्वास का प्लावन पीकर गाती है—

कौन तुम शुभ्र किरण वसना?
सीखा केवल हँसना—केवल हँसना—
शुभ्र किरण वसना!

जिसके अभ्र भरी शिखर पर चुनौतियों के वज्र गिरते हैं तो उनके शङ्कु मुड मुड जाते हैं अच्छेद्य अभेद्य आत्मा का वह निष्कम्प भूधर कैसा होगा?—कुछ ऐसे ही स्वच्छ मथित आंतरिक आग्रह से हिन्दी में उतरने की ठानी थी निराला पर पहली कविता मैं लिखूगा।

तब कौन जानता था कि निराला पर पहली कविता या पहला लेख लिख कर मैदान में उतरने का अर्थ मैदान से खदेड़ा जाना होगा और 'जैसी बहै बयार' की रवायत नीति ही आँधी मदान में झडा फहराती रहेगी?

फिलहाल संस्कृत में लिखने का इरादा मुल्तवी कर हिन्दी की मुलाजिमत अख्तियार तो कर ली मगर कूटनीतिक दाँव पेच सीखकर किसी दुमदार से लड़ाई मोल लेने की गरज से नहीं कुछ रचनात्मक कार्य सीखने के लिए। सन् '३५ में केवल दो बड़ी कविताएँ लिखीं—शकुन्तला और 'निराला'। 'शकुन्तला' टैगोर की 'उवर्शी' से उत्प्रेरित हुई थी और 'निराला' निराला के 'तुलसीदास' से।

निरलङ्कार, चारु गति, ऋजु पद,
कालिदास कविता-सी सरला!
कोरक निहित-सुरभि सी वन वासिना,
वंशी-स्वर-सी कोमल, कल्हासिनी,

जड़-से शान्त कण्व-आश्रम में—
तू चतय-कला-सी तरला !
आलुलायित-कुन्तले,
शिशु - शकुन्तले !
—शकुन्तला [शिप्रा पृष्ठ—५०—५४]

मेरे क्षितिज की असीमता को घूमिएना, गम्भीरता को अशान्ति और प्रकाश के ईषत् स्पर्श को कुतल्मेघ माननेवालों को मालूम हो—'उर्वशी' विश्वकवि की पहली या प्रारम्भिक रचना न थी, अवस्था में मुझमे सत्रह वर्ष बड़े और काव्य कला में एक शताब्दी बड़े महाकवि पन्त की निराला पर लिखी हुई अद्वितीय कविता अवस्था में मेरी कविता से चार साल छोटी है

छोली रवीन्द्र-नर्दित निनाद
हिन्दी-उवर उर पर अबाध—
छवि छायावाद अगाध जलधि जल छाया,
उसकी चञ्चल लहरों में स्थिर
गुरु ग्राह मकर कर से घिर घिर
पौरुष प्रगल्भ चिर-लब्ध एक कवि आया—

× ×

परिपुष्ट काय अनपाय द्योति,
तम-तोम शोमकर अवल-ज्योति,
भारती-आरती, सुधा कपोलि-लो विभ्रम,
उद्दाम प्रतिभ निष्काम शान्त,
आयत दृग, दीप्त ललाट, कान्त,
पर-तेजोऽसह थी सूर्यकान्त रवि मणि सम !

× ×

आनन्द इन्दु रस विन्दु अमर,
जिसका गिरि-उर भेदक निर्झर—
क्षिति का हृी-तल शीतल करता लोचन जल,
जिसकी भाषा घन सिंह-नाद,
उच्छल प्रतिभा-यौवनोन्माद,
उन्मुक्त भाव जिसके निनाद-से कलकल !

× ×

सेवा व्रत हत-पार्थिव प्रमोद,

हिंदी मन्दिर का मूत मोद,
साहित्य सरस अच्छोद कमल वनमाला !
चिर आत्माराम अगाध-मेध,
सारस्वत सित शर शब्द बेध,
अविराम सिद्ध वह नाम प्रसिद्ध—'निराला।
—निराला [शिप्रा पृष्ठ—३८ ६४]

आज (सन् ६६ मे) सन् '३५ की इस समास-बहुल संस्कृत हिन्दी को चाहे जितने व्यङ्ग्य बाण ओजने पड़ें, तब इसकी सार्थकता सुस्पष्ट थी। इसे ही निकट भविष्य म निराला पर लिखी गई एक हजार कविताओ म 'या सष्टि स्रष्टुराद्या का गौरव प्राप्त होना था।

'निराला की काव्य-कला (सन ३६-३७) निराला पर मेरा प्रथम प्रबन्धात्मक लेख था जो 'माधुरी' के कई-कई अङ्को म धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुआ था और जो मेरे साहित्यदर्शन के प्रथम सस्करण म एक सौ पृष्ठो म पूरा हुआ था। तब तक निराला पर इस आकार प्रकार का कोई भी लेख कही नही छपा था।

इन पत्रो मे उक्त कविता और लेख सबधी कतिपय सकेत प्राप्त होगे। ये पत्र अपना ऐतिहासिक पाट अदा कर चुके होते तो इन्ह नए सिरे से नुमाइशगाह मे सजाने का साहस कौन करता ? जब भी बकौल 'फज' —'जो दिल प गुजरती है रकम करते रहेंगे !

सन '३६ मे मैंने अपने हिन्दी गीतो का प्रथम सग्रह— रूप-अरूप निराला को ही समर्पित किया था। इस पर उनकी प्रतिक्रिया पानी पानी कर देनेवाली थी। एक पत्र म वह भी उल्लिखित है।

दरे कफस पे अँधेरे की मुहर लगती है,
तो 'फज' दिल मे सितारे उतरने लगते हैं !

निराला के ही निर्देश से मैं श्री मथिलीशरण जी गुप्त से मिलने राय कृष्णदास जी के घर गया था। भारतीय सस्कृति के सव-समादृत महाकवि को मैंने सव प्रथम बीडी पीते हुए देखा था। फिर तबाकू भरी चिलम आ गई तो वह नारियल उठाकर धुआँ पीने लगे थे। एक दफा मेरा तो चेहरा उतर गया था।

निराला ने तब भी झुझलाहट प्रकट की थी जब मैंने महादेवी वर्मा सम्पादित 'चाँद' म कवीन्द्र रवीन्द्र की उपक्षिता और 'साकेत की उर्मिला — जस विस्फोटक लेख प्रकाशित कराए थ। इस मुलाकात की प्रतिक्रिया हास्य

व्यङ्ग्य भरे लहजे में लिख भेजी तो वह वाकई आगबबूला हो गए थे। फिर भी यह कहना ही होगा कि पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के अलावा तब तक गुप्त जी ही मुझे एकमात्र ऐसे महाकवि श्रोता मिले थे जिन्होंने मेरी हर तरह कमजोर रचनाओं को देर देर तक रस ले-लेकर सुना, सराहा था। यह युग तो 'परस्पर प्रशंसंति या निंदन्ति' का है। निराला जी के लड़के भी मुझसे बड़े हैं। गुप्त जी तो निराला और नवीन से काफी बड़े थे। वह प्रतिदान की आशा से मेरी भावाढ्य प्रशंसा नहीं कर सकते थे।

वाल्मीकि के राम ने बाली से कहा था —

धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम्
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे।
अपृष्ट्वा बुद्धिसम्पन्नान् वृद्धानाचार्यसम्मतान्
सौम्य, वानरचापल्यात् त्वं मा वक्तुमिहेच्छसि।

कि तुम धर्म, अर्थ, काम और लोकोपयोगी सदाचार का रहस्य स्वयं तो जानते नहीं, मुझे समझाने चले हो।
सच बताओ, कभी वरिष्ठ मनीषियों से धर्म-तत्त्व की जिज्ञासा की है? यदि नहीं तो मेरी आलोचना किस बूते पर किए जा रहे हो?

गुप्त जी के सन्दर्भ में इससे सटीक और कोई बात मुझसे भी नहीं कही जा सकती। मैंने अपने एकाङ्गी अज्ञान के तेज तीर ही आलोचना-कला के कलेजे में चुभोए थे। मैथिलीशरण जी अमर हैं। उनका विदीर्ण हृदय रामनामाङ्कित ही निकला था। यहाँ एक लतीफा याद आ रहा है

Walk fast in snow
In frost walk slow
And still as you go
Tread on your toe
When frost and snow are both together,
Sit by the fire and spare shoe leather

सन' ३५ से '५८ तक के अर्से में निराला मुझे कई बार डाँट पिला चुके थे। 'श, ष, व, ल' को लेकर जब वे कालिदास को ऊँचा-नीचा सुनाने लगते, मेरी हड्डी किरकिरी हो जाती, मुँह-दर-मुँह कुछ कहते न बनता। यों कसर निकाल लेता था मैं एक-एक के दो-दो कर, मगर खत लिखकर, रूबरू नहीं।

खुशी भी होती थी कि उन्हें कालिदास के कितने ही सुन्दर-सुन्दर श्लोक

याद थे ! फिर वह नाद वर्णों का मधुर उच्चारण और कहाँ सुनने को मिला !

'सरस्वती' के जून '२९ के अङ्क में पन्त जी की 'बादल' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई थी। मैंने उत्सुक स्वर में प्रशंसा की तो आगे बढ़कर हाथ से अङ्क ले लिया और उच्च स्वर में बाँचने लगे। छह-छह तक पढ़ते चले गए। सातवाँ पढ़ते वक्त अट्टहास किया और पाँचवीं तथा सातवीं पंक्तियों को रेखाङ्कित कर हाशिये पर लिख दिया

'लगा तो महात्मा जी के हृदय का हुआ फिर यह गान्धर्व कहाँ का हुआ ?—खाली क्या ?'

मैंने लाख समझाया पहली बार पंक्तियों में एक अन्तर है और दूसरी बार पंक्तियों में दूसरा। दोनों अलग-अलग हैं और पूर्ण भी किन्तु उन्होंने मेरी एक न सुनी। बोले, 'आठ-आठ पंक्तियों का एक-एक स्तबक है, आरम्भ से कवि इस क्रम का निर्वाह करता आया है यहाँ क्या क्रम भङ्ग हो गया ?'

'सरस्वती' का वह अङ्क आज भी मेरे पास मौजूद है।

यद्यपि पन्त का निराला से बड़ा प्रशंसक मैंने दूसरा नहीं देखा। कालिदास या टैगोर पर बोलते हुए भी वह पन्त को उद्धृत करना नहीं भूलते थे। (बच्चन जी के संस्मरणों में निराला की पृष्ठभूमि सहृदयता, सम्पूर्ण आन्तरिकता कहीं नहीं है।) बाजा लेकर कभी अपने गीत सुनाने बैठते तो पहले पन्त का—

पलकन पग चूमूँ अपने पिया के

सुनाते। इतना मन्द्र-गम्भीर और अमृतनिर्झर स्वर बाद में कहाँ ! मैंने पहले-पहल निराला के कम्बु-कण्ठ से उनके मन्द्र-स्वर निनादों में पन्त का—'बाँध दिए क्यों प्राण प्राणों से ?' गीत सुना था। कहते थे, 'मैंने कविताएँ लिखी हैं, कवि पन्त ही हैं !'

उन दिनों मेरे 'स्वर्ग-द्वार कौन तुम स्वस्ति-सी, मुक्ति-सी ?'—ऐसे तत्सम शब्दों से लदे हुए गीत 'माधुरी' के मुखपृष्ठ पर प्रायः प्रकाशित हो रहे थे। भगवतीप्रसाद सबलानी ऐसे मित्र ताव खाई चाशनी सी कड़वी-मीठी फटकार बताते, फबतियाँ कसते। मैं तत्सम को सम पर लाकर गा देता तो लोकधुन से पृथक स्वर उनकी भवों की वक्रता मेट देता।

एक दिन 'सरस्वती' में सद्य प्रकाशित पन्त जी का एक गीत—

लो, जग की डाली डाली पर
जागीं नवजीवन की कलियाँ
मिट्टी ने जड़ निद्रा तज कर
खोलीं स्वप्निल पलकावलियाँ !

मैं भैरवी म गा रहा था। जिन्होंने उस अवस्था म मुझे सुना होगा, उन्हें मेरा आजकल वाला गाना बिल्कुल ही बेसुरा, बासी और उतरा हुआ लगता होगा। तब की बात और थी। संस्कृत के अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनों मे मेरा काव्य-पाठ सुनकर आँखो मे आशीर्वाद भर हुए श्रोता अनावश्यक साँस तक न लेते थे, फुस-फुस करने वालों की फूँक सरक जाती थी।

निराला ने ओचक सुना तो झटपट बाजा उठा लाए और मेरी शास्त्रीय त्रुटियों को बाजे के निनाद से भरने लगे। फिर स्वयं मन्द्र से तारसप्तक तक भर अजन्ता शैली की उंगलियाँ फेरकर जो 'भैरव' आलापा तो देखते ही देखते यह गान क्या से क्या हो गया!

जाने कैसी जिंदा तमन्ना थी निराला के दिल मे जो उन्हें जिंदगी भर तड़पाती रहा, जिसने उन्हें फूलों की टहनी पर अपना एक घोसला नहीं बनाने दिया। इकबाल की ललकार बारगर हुई। पुराने जंगल पहाड़ों म उन्हें धूनी रमाने नहीं जाना पड़ा, उनकी उन्मत्त उमंग ने एक ऐसा नया निरालापन सिरज लिया था जिसने उनके सम्पूर्ण जीवन को अनन्त एकान्त मे बदल दिया था। वह क्या फूली फूली कमजोर टहनी पर दीठ उठाए, उनकी दीठ तो कहीं और गड़ी थी!

अपने लिए घोर उत्पीड़न,
किन्तु पीड़नक था लोगों के लिए,
पानी का-सा जीवन
हँसमुख, किन्तु ममत्वहीन निर्दय वालों के लिए!

इकबाल सियासत म डूब गए? निराला का नया जुनून नए वीराने मे भटक गया?

है जुनूं तेरा नया, पैदा नया वीराना कर!

निराला ने इस साकार किया था

सिर्फ एक उन्माद!
जन-अपवाद गूँजता था, पर दूर,
क्योंकि उसे कब फुरसत—सुनता?
—था वह चूर!
न देखा उसमें कभी विषाद,
देखा सिर्फ एक उन्माद!

लिपटकर ही नहीं स्वरों के प्रखर बहाव म खुदी को गर्क करके भी। विवेकानन्द की स्वर-लहरियों मे रामकृष्ण की सन्यस्त आत्मा तैरती कम डूबती ज्यादा थी। जिसने निराला को गाते हुए नहीं देखा नहीं सुना, उसने असली

निराला को देखा ही नहीं । निराला योद्धा थे, निराला तपस्वी थे —यह वस्तुतः परस्पर विरुद्ध वचन नहीं है, किन्तु टैगोर और निराला साहित्य और संगीत के एक समान महान स्रष्टा थे यह 'काव्य गीतेन हृयते' और संगीतद्रोही नई कविता वालों के लिए अवश्यमेव चिन्त्य विषय है ।

निराला गाते थे तो उनकी निश्छल आत्मा की अमित द्युति आँखों में चमक चमक उठती थी, पतले होठों पर कुन्द-दन्तपङ्क्ति की उज्ज्वल सुगन्ध उतराने लगती थी, गालों में फारस का गुलाब खिल जाता था । उनके स्वर में ओज भरा माधुर्य या माधुर्य भरा ओज था जो अवश श्रोता को शब्दों की घाटियों में देर-देर तक गूँजता जान पड़ता था ।

उस साल कलकत्ता आचार्य क्षितिमोहन सेन की स्वागताध्यक्षता और महादेवी जी की अध्यक्षता में निराला जयन्ती मना रहा था । मेरे भाषण का सारांश मोटे टाइप के शीर्षकों में दैनिक पत्रों ने चमका कर छापा था । निराला तथा जनता ने मुझे जब जब कविता सुनाने का आदेश दिया, मैंने निराला के ही गीत सुनाए

नूपुर के सुर मन्द रहे ।
जब न चरण स्वच्छन्द रहे ।।

को 'जयजयवन्ती' में,

'लाज लगे तो आओ, तुम आओ

को देश में

'फिर सँवार सितार लो ।'

को 'बहार' में,

'वर दे वीणावादिनि वरदे ।'

को भीमपलासी में ।

प्रातःकाल जब निराला के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ, उन्होंने अपने चिरञ्जीव सङ्गीतविशारद श्री रामकृष्ण त्रिपाठी को बुलाकर बाजा मँगवाया और अपनी स्वर रचना से उन गीतों में नए प्राण प्रतिष्ठित कर मेरा (सभा में अलौकिक शोर मचता था) अहङ्कार हर लिया । उस मन्द्र-मधुर स्वर के सामने मेरा स्वर मानो प्राण झिल्ली-झनकार जैसा जान पड़ता ।

बात कहाँ से कहाँ आ गई । मैं निराला के सङ्गीत में आत्मदान कवि अभिनिवेश की व्याख्या अपने ढंग से यों करता हूँ कि जैसे उनका समाजवाद अध्यात्मवाद के रास्ते धीरे धीरे पथ पर आया था, ऐसे ही उनका मुक्त विराग निविड़ राग का ही देन था समृद्ध हृदयों और दरिद्र गलेवाले, राजा योगी

के संगीत को उन्होंने अपनी आत्मा के अतुल ऐश्वर्य से सम्पन्न कर विराट बना दिया था

बन्दू पद सुन्दर तव
छन्द-नवल स्वर-गौरव
जननि, जनक-जननि-जननि-जन्मभूमि भाषे।
जागो नव अम्बर भर ज्योतिस्तर वासे।

—गीतिका

×

×

क्षण चमत्कार,
एक-एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार।
पद-पद चल बही भाव धारा,
निर्मल कलकल में बँध गया विश्व सारा,
खुली मुक्ति बन्धन से बँधी फिर अपार—
क्षण चमत्कार।

—गीतिका

अस्तु, निराला के अमित दान को ध्यान मे रखने पर भास के एक श्लोक का सहसा स्मरण हो आता है

'क्षीणा ममार्था प्रणयिक्रियासु,
विमानित नव पर स्मरामि
एतत्तु मे प्रत्यय दत्त-मूल्य
सत्त्व सखे न क्षयमभ्युपैति।'

—चारुदत्त

'पुष्करिणी' मे 'अज्ञेय' ने निराला के कर्तृत्व को समग्रता मे नही आँका है। निराला का स्वच्छन्दतावादी पक्ष पुष्ट और सबल है, गतानुगतिकता उन्हें अवमान्य रही है। उनके प्रखर व्यक्तित्व और ओज भरी दुर्दान्त अभिव्यक्ति ने सबको अभिभूत कर दिया है। —यह सब प्रारम्भिक निराला का ही वैशिष्ट्य हो सकता है। छन्द के बंध के प्रति कवि की घोर अनास्था और आवेग की निरंकुशता के अनिकेत संकेत निराला के कई सौ गीतों और सर्वोत्तम कविताओं (राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास सरोजस्मृति, वनबेला, यमुना स्मृति आदि के अतिरिक्त भी दर्जनों) की छन्दोबद्धता के समक्ष नही दे सकते। किसी वाद का गौरव बढ़ाने के लिए उसकी संकीर्णता की बलिवेदी पर निराला की सहस्ररश्मि प्रज्ञा और सतरंगिनी प्रतिभा की बलि नही चढ़ाई जा सकती

निराला का गद्य भी लयात्मक है, मुक्त वृत्त तो कुल मिलाकर प्रातिभ वृत्त ही हैं। ऐसे उन्मुक्त वृत्त वैदिक काल से दण्डक युग तक संस्कृत की विशाल परम्परा मे बीज विटप रूप म विद्यमान थे। भारतीय साहित्य की बाह्य एव आभ्यन्तर सश्लिष्ट शिल्प भाव धारा मे अवगाहन करने मात्र से निराला की दुरूहता दुर्बोधता, असङ्गति और असम्बद्धता घुल सकती है। जिसे टेम्स मे डुबोया जा सकता है उसे गङ्गा उबार लेगी।

तब प्रश्न उठता है नवीन युगबोध और भावबोध का, मौलिकता का निराला के आत्मिक और ऐकातिक का, किन्तु क्या यह प्रश्न कालिदास, शेक्सपियर तुल्सीदास, गेट टगोर और ईलियट के लिए भी नही उठता ? पश्चिम के विकासवादी आयात के औचित्य की प्रतिष्ठा पूव के अपूव प्रकाश को बुझाए विना नही हो सकती ? क्या आनन्दमठ की रचना स्काट की आत्मा न की है ? यो तो राम की शक्ति-पूजा की का यात्मा को न समझनेवाले कृत्तिवास लिए फिरते हैं शेक्सपियर की नाट्य प्रतिभा के कसे कसे स्रोत ढूँढे जाते हैं, 'मा मा कहते रहने पर भी तुल्सीदास के लिए 'नाना पुराण' उल्टे पुल्टे जाते ही हैं, फास्ट मे अभिज्ञान शाकुन्तलम् की परछाइया मङ्गल ग्रह वेधक दूरबीन से साफ उभरती दिखती है और ।

खुदा गजे को नाखून न दे वह 'इस्यल कर देता है। मेरे कहे का क्या ? कहीं चूहे के चाम से नगाडे मढे जाते हैं ? तदपि कहे बिन रहा न कोई कि टगोर निराला जसा म जहा पश्चिम का शुद्धीकरण—पूर्वीकरण हुआ है, वहाँ शत प्रतिशत पश्चिमी भूमि—चन्द्रकान्तशिला पर अज्ञेय का अपना अजनबी आकाश ही झुका है।

अज्ञेय की इतिहास निर्मात्री प्रतिमा अपाश्चात्य प्राणो को चौंकाती रहेगी कभी भारत की आत्मा से एकाकार न होगी।

गगन गगनाकार निराला म साहित्य और सङ्गीत का एक अमय सारस्वत स्रोत प्रत्यक्ष किया जा सकता है

नग्न नीलिमा-सी व्यक्त
भाषा सुरञ्जित वह वेदों म आज भी—
मुक्त छन्द
सहज प्रकाशन वह मन का

—परिमल

'पावन वनभूमि' के इस 'आनन्दप्रद विपान' को—

आज तुम मुझे शब्द न दो, न दो,
म कल भी कहूँगा !

का असगीन उच्चारण कसे सह सकता है ?

निराला की स्वानुभत भावना यदि सामान्य मनो तन्त्र सक्रमणशील नही है तो इसका कारण दुर्बोधता, असम्बद्धता कदापि नही है । गांधी की अन्तध्वनि नहरू नही समझते थे, इसे क्या कहा जायगा ?

प्रकारान्तर से काव्य प्रकय के प्रेषणीय हो सकने की स्थिति में निराला की सवतोगामिनी प्रकाश प्रतिभा शब्दातीत स्वरोर्मियो से क्या वन्चित होना पसद करती ? सगीत निराला के सर्वोत्तम कवित्व की भी आत्मा है

लक्ष्य पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल—
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अथ भरे !

इस बहु-अथ भरे स्तव का उच्चारण— यह दीप अकेला स्नेह भरा,
है गव भरा मदमाता, पर
इसको भी पक्ति को दे दो !"

वाले रूपहीन कण्ठ से कदापि न होगा फिर 'पाठ्ये गेये च मधुर' का आनन्द निश्शब्द वाचनालय मे कसे सभाव्त हो ? मुझ-जसा पर शून्य मे घोडे दौडाने का आरोप हो, तो प्रत्युत्तर मे कहना होगा कि गणतन्त्रीय जन-गणना से विरल एकान्त उच्चता अप्रभावित ही रहती है । दसो इन्द्रियाँ मिलकर भी एक आत्मा की बराबरी नही कर सकतीं । हम पश्चिमी कुरूपता को सौन्दर्य, अस्वस्थ प्रवृत्तियो को विकासशील और विवेक विक्षेप को नई बौद्धिक उपलब्धि स्वीकारने के लिए विवश नही हैं । अरविन्द रवीन्द्र की दार्शनिक काव्यात्मकता जिसे नही छू पाती रामकृष्ण विवेकानन्द की आध्यात्मिक कलात्मकता जिसे नही स्वीकारती, रामतीथ रमण की ब्रह्मसस्पर्शिनी उपलब्धि जिसे नही सँवारती, वह आतरिकता भारतीय जीवनलता को कभी कुसुमित-फलित नही होने दे सकती, वह स्वण-वर्णा आधुनिका अमरवल्लरी भारतीय साधना की कल्पलता के सिर पर चढकर भी चिरस्य ही बनी रहेगी ।

कभी कभी प्रभाव-पूण वाग्जाल कुछ विश्वसनीय तथ्यों को फसा लेने मे सवशक्तिशाली प्रतीत होता है, किन्तु अन्तत जाल मे सत्य नही फँसता, आलोक नहा उलझता, आत्मा नही भटकती ।

अब सब ठीक-ठाक है। निराला की प्रतिभा का लोहा सभी मानते हैं—वादों में उनका घेराव करनेवाले भी, देश-काल से ऊपर उठा देखनेवाले भी। मैं तो तब की बात कह रहा हूँ, जब उनके 'सवुज' को व्यङ्ग्या की आँच में भूना जाता था, 'काँचा' को कटूक्तियों की कड़ाई में पकाया जाता था। कठोर आलोचनाओं की बौछारें उन्हें हर नए का पथ प्रशस्त करने के क्रम में सहनी पड़ती थीं। उन्होंने 'वनवेला' और 'सरोज-स्मृति' में भी पूर्व अपनी असह्य पीड़ाओं और निर्दय प्रहारों को याद किया है —

कितने ही विघ्नों का जाल
जटिल, अगम, विस्तृत पथ पर विकराल,
कण्टक कर्दम, भय भ्रम निर्मम कितने शूल,
हिंस्र निशाचर, भूधर, कन्दर पशु संकुल
पथ घन-तम, अगम अकूल।

—परिमल

क्यों न याद करें किसी का गेटे और टगोर-जैसा ऐश्वर्य सम्पन्न, तृप्त और निश्चिन्त जीवन हो तो बौद्धिक जागरूकता के साथ उसका जीवन निरपेक्षता का सिद्धान्त बघारना शोभा भी पाए! किन्तु जहाँ दुख ही किसी के जीवन की कथा हो वहाँ उसका अरुंतुद दर्नादिन दर्शन काव्य-कल्प में उन्नीत होकर एक नया, सर्व-संवेद्य रस बनता रहा यही क्या कम है?

ऐसे ही समय मुझसे भी एक अपराध बन पड़ा जिसका परिगुण्ठित पछतावा आजीवन मेरा पीछा करता रहेगा। जहाँ मैंने निराला पर पहली कविता लिखी थी, पहला बड़ा लेख लिखा था वहाँ मुझसे परिश्रम के बाद निकली उनकी पहली पुस्तक—गीतिका पर पहला (और कदाचित अंतिम भी) बड़ा आलोचनात्मक लेख भी मेरा ही प्रकाशित हुआ था। मेरे तब तक के लिखे लेखों में वह सबसे तीखा था।

इस बार लखनऊ जाने पर करारी फटकारें सुनने को मिलीं कि मैंने पहाड़ से टक्कर ली है, कि मेरा दिमाग आसमान पर चढ़ गया है, कि अन्धे के हाथ बटेर क्या लगी वह अक्लमन्द की दुम बना फिरता है!

इसी समय 'चकल्लस' (श्री नरोत्तमप्रसाद नागर द्वारा सम्पादित) का भाभी अङ्क निकला। उसमें मेरे माधुरी के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित मेघगीत की पैरोडी निकली। दिल कड़ाकर, ओठ चबाकर सब झेलना पड़ा।

वहाँ निराला के प्रशंसकों में रामविलास शर्मा नरोत्तम नागर और अमृत लाल नागर ही सूझ-बूझवाले थे। इनमें भी व्यङ्ग्य नरोत्तम जी अधिक करते

थे, रामविलास शर्मा वेसिसक फटकारते थे,—रूप-अरूप के कुछ छपे फर्मे देख कर कहा था कि यदि ये कविताएँ उनकी होतीं तो (भुसामण्डी की मोरियाँ दिखला कर) वे फाड कर फेंक देते, अमृतलाल नागर हो उमड कर मिले थे और अपनी पहली पुस्तक—'अवशेष' की एक प्रति भेंट की थी जिसम भी उनके वे सभी भाषा-सम्बन्धी चमत्कार मौजूद हैं जो आगे रंग लाए, जिनका बहुचर्चित विकास 'बूँद और सागर' 'अमृत और विष' आदि म हुआ।

दाप की अशेष बातें गताल खाते मे गई या हृदय मे गाँठ कर गई। इस सम्बन्ध मे निराला म मेरा जो पत्राचार हुआ था, वह इस सकलन मे विशेष महत्त्व का है।

हिन्दी के आलोचकों मे पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी मुझे सबस अधिक मानने वालो म थे। उनका सजल स्नेह, अवसर के अनुरूप रूप नही बदलता था। किन्तु कदाचित् सहृदय होन के कारण मैं पण्डित हजारीप्रसाद जी पर अन्त-र्गूढ श्रद्धा अधिक उँडेलता था। उनका साहित्य मुझे शान्त और स्निग्ध, सन्तुलित और उदात्त होने के कारण अच्छा लगता था या हास्य और व्यङ्ग्य और विनोद से ओतप्रोत, अत बेहद जिदादिल होने के कारण, विश्लेषण करने की बुद्धि न तब थी न अब है।

किन्तु जब उनके व्यक्तित्व की गरिमा ने कलाबाजी खाई, मुझे अचम्भा हुआ था। प० बनारसीदास चतुर्वेदी जिन दिनों 'कस्मै देवाय' का आन्दोलन चला रहे थे, द्विवेदी जी ने उन्हें 'कस्मै देवाय' का अर्थ क्या नही समझा दिया, मुझे हैरानी होती थी। 'गीतिका' की आलोचना मे उन्होंने जिस सुरुचि का परिचय दिया था वह गुप्त-बन्धी तुकारामो के लिए पर्याप्त प्रेरणाप्रद थी, किन्तु उन्होंने गीतिका की भूमिका मे प्रसाद द्वारा प्रयुक्त 'नम्ण' शब्द के सम्बन्ध म जो कहा था, वह क्यों? यह मेरी समझ मे नही आता था। नृम्ण' शब्द तो ऋग्वेद से भागवत तक मे बहुधा प्रयुक्त हुआ है, वह 'अज्ञात कुल शील' कदापि नही, फिर उसका प्रयोग महापण्डित प्रसाद ने किया था, यही क्या उसकी सार्थकता का प्रबल प्रमाण न था? द्विवेदी जी की लोकसग्रही व्याव हारिक बुद्धि ने हुरमत लेने की गरज से हर्गिज ऐसा न किया होगा।

लिङ्ग पुराण म मृग और व्याध की एक कथा आती है (उसमे एक दिए से दूसरा दिया जलाने और एक पर मे दूसरा पैर रगड कर धोने की भी पाप मे गणना की गई है) कि सचाई पर अडिग एक हिरना जब अपनी जान व्याध को सौंपने आता है तब व्याध का मन बदल जाता है। वह तीर धनुष फेंक देत है।

'शनिवारेर चिठि' में सजनीकान्त दास आजीवन रवीन्द्रनाथ के विरुद्ध विष-वमन करते रहे थे किन्तु ज्यो ही रवीन्द्रनाथ स्वर्ग सिधारे, वह उनकी 'असामयिक' मृत्यु से दुःखी होकर 'सम सामयिक' जीवन की ओर मुड गए।

पुराण पुराण है, नवीन नवीन। सच्चा आलोचक गडे मुर्दे भी उखाडता है और मिट्टी में मिले हुए की भी मिट्टी पलीद करता है। जीवित तो उसके प्रथम शरण्य होते ही हैं। उन्हे बेदाग छोड दे तो खुद दागी कहलाए!

कहते हैं कि कमजोर आदमी पहले किसी दूसरे का अनुकरण करता है, (आज नई कविता के कवियो मे से प्राय सबको असफल गीतकार के रूप में सोदाहरण देखा जा सकता है।) अनुकरण में असफल होने पर वह ईर्ष्यालु हो जाता है, ईर्ष्या के बाद निन्दा, उपहास क्रोध और फिर उससे वैर करने लगता है।

रवीन्द्रनाथ के द्रोधावेषी बँगला के काव्य-साहित्य को आवजनाओं से बचाने के लिए कमर कसकर नही खडे हुए थे, बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिन्दी साहित्य का कल्याण करने के लिए पन्त, प्रसाद निराला का बहिष्कार नही किया था। हिन्दी के अधिकाश आलोचक स्वय सृजनात्मक प्रतिभा से प्रताडित और परिश्रान्त पाए जाते हैं। जो उनके साँचे को तोड कर गिल्ली डडे में तबदील कर सकता है उस मौलिक मूर्ति भञ्जक पर वह अपनी ही सुरक्षा के लिए खड्गहस्त देखे जाते हैं, उच्च कोटि का साहित्य तो वह समझते ही नही उसकी सुरक्षा क्या करेंगे? कौन अपनी पसलियो पर हिमालय का बोझ लादे फिरे जब कि काठ के रंगीन खिलौनो से दुकान चल निकलती है? टुटपुँजिये नामी गिरामी को राह बताते हैं कौन सा लेबल गाहकों के मुआफिक आता है नामी का नाम बिकता है। न्यूरोसिस और साइकोऐनालिसिस का बोलबाला है तुलसीदास बकवास है 'राम की शक्तिपूजा' कुछ यह, कुछ वह है!

ऋग्वेद का एक मन्त्र है

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदु
यस्तन्न वेद किमचा करिष्यति य इ तद्विदुस्त इमे समासते

तात्पर्य यह कि सभी वेद अपरिच्छिन्न आकाश रूप अक्षर-अविनश्वर परमात्मा में ही पर्यवसित होते हैं सब देवते विश्व की नश्वरता से ऊपर उठे हुए उसी परम व्योम में आश्रय पाते हैं—जब किसी को यही तत्त्व हाथ न लगा तब उसने ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद पढ़कर क्या पाया? अब इसे चाहे कोई एक ही लकडी से सबको हाँकना कहे किन्तु काव्य-तत्त्व ज्ञान मे भी मैं इसी निश्चय का विश्वासी हूँ। यदि कविता का कथ्य समझने में दाँतो में

पसीना आने लगता है, यदि समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान लाख सिर टकराए पर शिल्प का कोई काम नहीं बनता, तब छायावाद की विशिष्ट प्रवृत्तियों का अध्ययन किया तो न किया तो, गाँधीवाद और मार्क्सवाद की रस्सी बटी तो न बटी तो क्या फर्क पड़ता है ?

परम्पराओं के अध्ययन का अर्थ देखो (पृष्ठ६६६) देखो (पृ० ७७७), वही (Worringer Abstraction And Empathy) वही (Stenborg Cassel s Encyclopaedia of Literature) मर नहीं है प्रगति का प्रवाह अन्तश्चेतना के आन्तर आलोक से ही मापा जा सकता है। ओठ के चाटे प्यास नहीं बुझती। बड़े नामो के म्यान में नान-स्व की जंगखाई तलवार छिपी रह कर ही ड्राइंग रूम की शोभा बढ़ाती है।

दुरूहता और जटिलता से दामन बचाने वाले क्या कवि शिरोमणि तुलसी दास को समझते हैं ? तत्त्वज्ञानी कबीर की अटपटी बानी सुनते ही दिल में उतर जाती है क्या ? फिर यह आत्मवञ्चना क्यों ?

'भरतनाट्यम' का प्रत्येक समय समयक स्वयं सामवेद समझता है ? कितने आयुर्वेदज्ञ अथर्ववेद बाँचते समय मन्त्रों का भ्रम छते चले जाते हैं ? हैं तो सामवेद-अथर्ववेद उद्गम स्रोत ही धारावाहिक ज्ञान को तरोताजा रखने वाले किन्तु इससे क्या ?

गज गजी' के ज्ञान से वेद वेदाङ्ग नहीं समझ मे आते निर्गुण-सगुण माया-ब्रह्म की तोता रटंत विद्या से कबीर और तुलसी पर दावा करना—

सुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी

—जैसा है।

यदि कोई—

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने
षट कन्ध शाखा पंच बीस अनेक पर्ण सुमन घने
फल युगल विधि कटु मधुर वेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे
पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे।

—तुलसीदास

समझना चाहेगा तो वह परम्परा की खोज में श्रीमद्भागवत तक स्वयं दृष्टि फैलाएगा

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतुरसः पञ्चविधः षडात्मा
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो
दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः।

नही तो उन्हें जनकवि जगनिक सिद्ध कर बंदर भालू की कहानी की खटास मिठास पर प्रवचन करेगा। स्मरण रखने योग्य है तो यही कि जब हिन्दी में वैज्ञानिक आलोचना नही चालू हुई थी तब तुलसीदास जी की भक्ति ज्ञान वैराग्य ने ही सदियों तक जिन्दा रक्खा था। सङ्गीत-कला के पारङ्गतों ने राग रागिनियों में विनय पत्रिका के पदों को बाँध कर उनकी कीर्ति को लोका-त्तरता प्रदान की थी। ग्रियर्सन और टेसीटोरी और आचार्य शुक्ल जैसों ने उसी अलौकिक तेजस्विता से अपनी आरम्भिक आलोचना के लिए प्रेरणा प्राप्त की थी।

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्

—जिसे ज्ञान विज्ञान का मर्म नहीं मालूम वही उसे बड़ा नही मानता।

जैसे परम्परा प्रगति में परिणति प्राप्त करती रहती है वैसे ही नित-नए विकास में वर्तमान भविष्य बनते रहते हैं। अवश्य यह विकास गुलाब की कलम में गुलाब के फूल खिलाने वाला ही होता है। बबूल के पेड़ में गुलाब के फूल और गुलाब के झाड़ में बबूल के फूल वैज्ञानिक चमत्कार से खिलते हैं, नैसर्गिक विकास की प्रक्रिया और है।

श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस की अन्तर्धारा में कोई विशेष अन्तर नहीं है, देश काल और भाषा का लम्बा व्यवधान शिल्पगत मूल्यों को ही थोड़ा बहुत प्रभावित कर सका है। निराला को भी इसी क्रम में देखना होगा —

पल्लव के उर कुसुम हार सित,
मन्द पवन-पावन विहार नित
मिलित अन्त नभ नील विकल्पित
एक,—एक से तीन बनीं तुम !
× ×
बोलूँ अल्प, न कर जल्पना,
सत्य रहे, मिट जाय कल्पना,
मोह निशा की स्नेह-गोद पर,
सोए मेरा भरा जागरण !

निराला को दुर्बोध कहने वाले अपनी-अपनी सुबोधिनी टीका दिखलाते हैं। उन्हें कौन समझाए कि तुम मूल भूल गए हो।

मैं तकले पर लिपटे हुए कलावे—सूत के लच्छे को सोने के तार नहीं मानता। जिसमें कवि के प्राणों के श्वासोच्छ्वास स्पंदित हुए हों उसे बाजारू भाषा में कैसे दुहराया जा सकता है ?

निराला का 'एक' तीन बन गया है। तीन में एक निराला—

मानव जहाँ बैल घोड़ा है,
कैसा तन मन का जोड़ा है!

ऐसे व्यङ्ग्यों की आधुनिकता निखरती है,

दूसरा निराला अनुराग सम्राट और विराग-योगी है—अवश्य अनुराग में रवीन्द्रनाथ और विराग में अरविन्द जैसा युग विभक्त नहीं।

लता मुकुल हार-गन्ध भार भर—
बही पवन बन्द मन्द, मन्दतर,
जागी नयनों में वन यौवन की माया!

—गीतिका

× × ×

अट नहीं रही है!
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है!
पत्तों से लदी डाल!
कहीं हरी, कहीं लाल
कहीं पड़ी है उर में
मन्द-गन्ध पुष्प माल!

—अर्चना

+ + +

देख चुका जो-जो आए थे, चले गए
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब भले गए!

—परिमल

रे कुछ न हुआ तो क्या?
जग धोखा तो रो क्या?

—गीतिका

तीसरा निराला भक्ति और ज्ञान के सहज समन्वय का महान कवि है यही कबीर और तुलसीदास की काष्ठा में नई विश्वसनीयता भरता है। यह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। समकालीनों में कोई इसकी समकक्षता में नहीं

आता। इसे पढ़कर—

> Tnere is madness about thee, and joy divine
> In that song of thine
> Lift me guide me high and high
> To thy banqueting place in the sky

का कवि वह स्वयं जाने क्या लिखता ?

ये तीनों निराला अजेय हैं। 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति' जैसी महान कविताओं में तीनों निराला मिल-जुलकर काम कर गए हैं—यद्भुत और नाटकीयता, दर्शन और अध्यात्म, समाज और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, आदर्श और यथार्थ, राग और विराग—सबका सर्वोच्च समुच्चय जिन रचनाओं में उपलब्ध हो उनकी तुलना किससे की जाए !

स्वयं निराला ने मेरी इस मान्यता को अधिक महत्त्व नहीं दिया। इन पत्रों में देखेंगे उन्हें अपने छोटे गीत ही बड़े लगते थे ! वह मस्ती के आलम में हारमोनियम उठाकर—

> खुलती मेरी शेफाली
> हंसती री डाली डाली
> 　　　या
> हे मैं करूँ वरण,
> 　　　　　जननि दुखहरण पद—
> राग रञ्जित मरण !

गाना पसंद करते थे 'तुलसीदास' या 'राम की शक्ति पूजा' की आवृत्ति करना नहीं।

जीने के लिए जो कवि क्रान्ति और संघर्ष की सामिधनी ऋचाएँ गढ़ता और उनकी आवृत्ति कर अप्रबुद्ध म्लान मलिनों के धक धक भाल अनल जलाता और धूमिल प्राणों में ज्योतियों की ज्योति जगाता था जीवन की—आत्मा की ऐकान्तिक गहराइयों में वह व्यावहारिक उत्तेजना को जीर्ण वस्त्र की तरह उतार फेंकता और भाव विह्वल कण्ठ से आत्म परक अनमाए गीत गाता था, यह तो मेरी सौ सौ बार अपनी आंखों देखी अपनी भावुकता की पी हुई अनुभूति है !

> आपसे हम गुज़र गए कब के,
> क्या है ज़ाहिर में जो सफ़र न किया !

कम से कम मुझे तो रामकृष्ण विवेकानन्द की आत्मज्योति से उद्भासित निराला को देखे बिना, तन मन से पृथक्—आत्मा की अनुभूति होती ही नहीं। ईलियट की निर्वैयक्तिकता किताबी है। निराला तो जब चाहते, बाह्य को सम्पूर्ण रूप से स्थगित कर आभ्यन्तर में प्रतिष्ठित हो जाते, और आभ्यन्तर का अँधेरे की तरह सतह पर छोड़कर बाहरी रोशनी में चहलकदमी शुरू कर देते थे।

मजा तो यह है आह में असर यहाँ तलक तो हो,
फलक भी चीख कर कहे जला दिया, जला दिया।

कहीं आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का एक लेख प्रसाद पर पढ़ा था। उसमें उन्होंने कामायनी के पहले ही छन्द से अपनी अरुचि व्यक्त की थी। कदाचित् डार्विन के विकासवाद का अनुवाद कर उन्होंने मनु में बर्बरता बर्बरता भाव और अकुतोभय पौरुष का समावेश चाहा था। मेरे मन में विचार आया, द्विवेदी जी को कालिदास ने भी—

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्,
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।

लिखकर बर्बर भाव के अभाव में प्रीत न किया होगा,

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्,
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः

के विज्ञानी मनुस्मृति के प्रवक्ता, मनु तो आरम्भ से ही एकाग्रचित्त और प्रशान्त आसन में महर्षियों से घिरे हुए दिखलाई देते हैं। अब इन आरण्यकों में जंगली बर्बरपन कहाँ से आए? फिर यह देव प्रलय और आदिमानव की कल्पना क्या पश्चिमी विकासवाद की विरासत है?

हिन्दी में लिखते हुए अभी दो ही वर्ष बीते थे कि गीतिका में निराला'-जैसा निबन्ध साहसपूर्वक लिखकर मैंने माधुरी में छपा डाला। उस निबन्ध का स्थापत्य एक अनाड़ी की करामात में बदल गया। वरजिश के जोर से जिनके नाम का झंडा फहराता था दीदे फाड़कर देखने पर उनमें साहित्य की आत्मा के अपरिचय का धुंधलापन साफ दिखलाई देता था। उनकी अधूरी तैयारी कलाकृति की समग्रता पर सघन घन घटा-सी छा जाती थी जब भी वह प्रकाशवादी आलोचक कहलाते थे। क्योंकि उनके विचार सपाट थे, क्योंकि उनकी भाषा साफ मँजी हुई थी। मेरा कथ्य कमजोर न था मगर मेरे पास भाषा के नाम राम दुहाई थी। पता नहीं, किनके बहकावे में पड़ कर निराला बिगड़ खड़े हुए और उन्होंने कड़ा विरोध पत्र भेजा।

सन् ३७ ३८ में मैं रायगढ़ में राजकवि था। जिन्दगी में पहली बार हर महीने सौ-पचास रुपये देखने को मिलते थे। मैं सिर्फ किताबें खरीदता था—बंगला की 'लोहार बांधन' और 'पथेर दावी'—साथ-साथ पढ़ता था, राजनगर की भाषा में—'सतणाम्यवहारी' था। बंगला का ऐसा नशा चढ़ा था कि दूर दूर से खड़ी बोली की जमीन उजाड़ और ऊबड़खाबड़ नजर आती थी। जनवरी '३१ की 'सुधा' के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित निराला का पत्र (नर जीवन के स्वार्थ सकल) 'महाजन पदावली' की कौन कहे 'भानुसिंह पदावली' के मुकाबले भी मुझे गद्यात्मक लगता था।

मैं तब माधुर्य बंगला का प्रौढ़ि हिन्दी की,—जैसा विभाजन न कर सकने के कारण कुछ ऐसा लिख गया जो निराला के अधिक अनुकूल न था। हरसिंगार झरता भर है, अपने को निःशेष कर अशेष पर निछावर नहीं होता। मेरे हरसिंगार का झरण-मात्र भी उपहार जीवन के जाग्रत देवता को कैसे स्वीकार होता ?

तब निराला यह भी भूल गए कि 'गीतिका में निराला' का लेखक अभी दो दाँत का है उन्हें उसके विष के दाँत तोड़ने की जरूरत नहीं दरअसल वह विष के नहीं दूध के दाँत हैं वक्त आने पर अपने आप टूट जायगे।

पत्रावली में वे पत्र अत्यन्त रोचक और उल्लेख्य हैं। कालिदास के बाद रवीन्द्रनाथ की कमजोरियों को खोल कर दिखलाने के अलावा उन पत्रों में मेरे संस्कृत और बंगला काव्य के ज्ञान को खूब सराहा (!) गया है। 'कहू से धोबी गधे पर नहीं चढ़ता'—यह उक्ति मेरे उत्तर-पत्रों में चरितार्थ हुई थी। मैंने निराला का कहा नहीं माना था।

'पल्लव' की भूमिका में पंत जी ने हिन्दी में अंग्रेजी ढंग की आलोचना की माँग की थी और बड़े ठसके से लिया था कि वह 'वाक्य रसात्मक काव्यम' और 'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम' को खूब समझ चुके हैं। उन्हें अंग्रेजी ढंग की आलोचनाएँ मिलीं और बहुत मिलीं। उन्होंने खुद भी काफी लिखी। इस तरह उनकी पहली माँग प्रायः पूरी हो गई। दूसरा दावा बेशक गलत था। काव्य की उक्त परिभाषाएँ जाननेवाला 'लोकायतन' नहीं लिख सकता था।

निराला ने भी 'गीतिका' की भूमिका में प्राचीन कवियों और गवैयों को अपने कटीले तर्कों में बुरी तरह घसीटा था। यह ठीक है कि इस संक्रान्ति-काल में मध्ययुगीन संस्कृति को पाश्चात्य सभ्यता के ववंडर ने बुरी तरह झकझोरा और चक्कर में डाल रखा है किन्तु कोई कैसा भी क्रूर आलोचक क्यों न हो,

निराला का मूर तुलसी से बड़ा बताने का छुटपन नहीं जताएगा। ऐसे ही भारतीय संगीत की उत्तर दक्षिण शैलियों का कोई भी ममय रवीन्द्र संगीत या निराला संगीत को श्रेष्ठतर नहीं प्रमाणित कर सकता। कुछ इसी कोटि के पूर्वाग्रहों से मेरा निबन्ध बँधा हुआ था। मैंने आक्षेप नहीं, अपनी सीमित अभिज्ञता का आवरण भङ्ग किया था। मैं गुणी नहीं, किन्तु निर्दोष अवश्य था।

'शणवल' की अनोखी खोज निराला को कालिदास की ममज्ञता का प्रमाण-पत्र देने वाली न थी। जब निराला और डा० रामविलास शर्मा इकट्ठे बैठकर कालिदास की खिल्लियाँ उड़ाते थे तब मेरी रोनी सूरत पर नकली हँसी पुत जाती थी जब 'तुलसीदास' म 'शणवल' के आधार पर कालिदास का कुप्रभाव सिद्ध किया जाता था तब मुझे इन महान आलोचकों की विनम्र अहम्मन्यता पर रोना आता था। एक रात मैंने चिढ़कर निराला की अट्टहासिनी गोष्ठी मे डा० रामविलास शर्मा से पूछा —

"अनुमन्ये तावद् भवदभिप्रेतम् किन्तु समवगत्यासख्यातान् बनम्वैरपद क्रमान् निरालालीलायितपरिमलगीतिकादिसदग्रन्थान् समविषमसन्तरणक्षमान अपि नामस्य सगिरत भवन्तो वदतीत निरालामहाशमाऽमिताशय, कालिदासीयस्यपदेशम् ? किममेव सपर्य्यापय्यथि'तुलसीदासी'य-वाग्वैभवस्य ? परिच्छेतुमल कृनिरिय विच्छित्ति कालिदासापचितवचनरचनाया ?"

तब डा० शर्मा ने स्वर में गम्भीरता लाकर मुझे हिन्दी मे अपना मन्तव्य प्रकट करने को कहा।

"तिन के फेर से सुमेर होत माटी को!"—अब तो मेरे हँसने की बारी थी। बोला

'जब आप मेरी संस्कृत नहीं समझते कालिदास को कैसे समझते हैं? अपमान तो काव्य नहीं है!'

निराला ने अपनी संस्कृत म कुछ कहकर अप्रार्थित मध्यस्थता की और वार्तालाप का विषय तत्काल बदल दिया।

जिसे कालिदास प्रिय न हों उसने संस्कृत पढ़ी ही नहीं। काव्य कला है, कालिदास ने ही सबसे पहले इसे समझा था। कालिदास का अध्येता 'चित्रांगदा', 'विदाय अभिशाप' या 'फॉस्ट' लिखता है, 'तुलसीदास' नहीं। यों माघ, मिल्टन माइकेल तक मेरी भी दृष्टि फैली थी।

छपने के लिए प्रस्तुत पुस्तक (निराला के पत्र) की पाण्डुलिपि भेज चुकने के बाद डा० रामविलास शर्मा का महान ग्रन्थ (निराला की साहित्य-साधना)

छपकर बाहर आये। (निराला के पत्रों के लिए उन्होंने मुझे कई बार लिखा था।) शर्मा जी का ग्रन्थ पहले छप गया होता तो मुझे पत्रों की यत्र-तत्र पाद टिप्पणियाँ तैयार करने में बहुत कम कठिनाई होती।

शर्माजी ने मुझ जैसे निर्जन में रहने वाले अकिञ्चन साहित्यिक को अपने महान ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर याद किया है, कोई कैसे कृतार्थ न हो! यहाँ केवल कुछ भ्रान्तियों की ओर संकेत भर कर देना चाहता हूँ जिससे उस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण रहे।

'निराला की साहित्य साधना' के पृष्ठ ३५५-५६ पर ऊपर लिखे हुए प्रसङ्ग को गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मेरा 'निराला की काव्यकला' नामक लेख पहले प्रकाशित हुआ था, 'गीतिका में निराला' उसके काफी दिनों बाद। निराला अपनी प्रशंसाओं से नहीं मेरे द्वारा दरसाए गए काव्य दोषों से अधिक प्रभावित हुए, यह जानकर अपना प्रथम श्रम भी मुझे चरम-जैसा सार्थक प्रतीत हुआ। फिर उन्होंने 'दुष्ट गीत जो नहीं लिखे' पत्रों में अपनी सरल गहनता का उल्लेख प्राय करते रहे; 'कवि तालिका' में आपके साथ ही मेरा नाम भी लिख दिया ('रामविलास प्रदीप, जानकीवल्लभ जागे'—अणिमा पृ० ३०) और फिर 'बेला' मुझे ही समर्पित किया। आपके असन्दिग्ध निष्कर्ष के सम्बन्ध में बोलने वाला मैं कौन होता हूँ? हाँ, मेरे अकथित कथ्य अविश्लिष्ट शिल्प को निराला ने अवश्य समझ लिया था

आमार अनागत
आमार अनाहत
तोमार वीणा-तारे
बाजिछे ता'रा
जानि हे जानि ताओ
हयनि हारा!

निराला प्रकृति से उनकी काव्य प्रतिभा को विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता। जैसे वह व्यक्ति रूप में प्रकृति के एक अभिन्न अङ्ग थे, ऐसे ही उनका कवित्व भी प्रकृति के साथ तादात्म्य का ही अभिव्यंजक है। निराला का देखना, सुनने पर उनके कवित्व के गुम्फ का—साधारणीकरण का भी यही रहस्य जान पड़ता है। जैसे प्रकृति नाम रूपों की विविधता में अपने को अभिव्यक्त करती है, वैसे ही साधारण एवं परस्परित सम्पृक्त छवियों में निराला का अपना ही विराट व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित हुआ है। यह बात उनके आत्मपरक गीतों, प्रगीतों तक ही सीमित नहीं, कुकुरमुत्ता जैसे व्यंग्यकाव्य तथा 'राम की शक्ति पूजा'-जैसे

महाकाव्य पर भी एकसमान लागू होती है।

निराला से पहली मुलाकात पर कदाचित सबसे पहले मैंने लिखा था—निराला दर्शन।[1] उसमें मैंने अपनी ऐंठ-अकड़ का भी प्रकारान्तर से निर्देश किया था। वाजपेयीजी ने उसे बहुत पसन्द किया था। 'कवि निराला' में उन्होंने भी उसी लहजे का इस्तेमाल किया—निराला से अपनी पहली मुलाकात का हवाला देते समय। उस दिन त्रिलोचन जी ने भी कुछ-कुछ वैसा ही अपना अनुभव बतलाया। मेरे प्रथम वार्तालाप के साक्षी तो स्वयं वाजपेयी जी थे। वर्षों के साहचर्य में उन्होंने कभी मुझे स्वघटित से नहीं परिचित कराया था। अब 'निराला की साहित्यसाधना' में भी वैसा ही स्वर छिड़ा दिखता है। हाय रे! निराला के अध्येताओं में क्या कोई भी उनसे सहज भाव से नहीं मिला था?

अब डा० शर्मा जो कहें, निराला की प्रशस्ति अकेले मैंने ही तो नहीं लिखी है। पन्त जी ने प्रतिभा के उत्तुङ्ग शृंग से अमृतकलश लुढ़काया है —

अमृत-पुत्र कवि, यश काय तव जरामरणजित,
स्वयं भारती से तेरी हृत्तन्त्री झङ्कृत!

किंतु यथास्थान अपना मत भेद भी प्रकट किया है। यह कोई गुरुतर साहित्यिक अपराध है भी नहीं। मैंने तो खैर, तब लिखना शुरू ही किया था, मेरा सारा आयास अज्ञानजन्य था।

मेरी पुरोभागिता तब आलोच्य होती जब मेरा उद्देश्य दुष्ट होता, बनारसी दास जी चतुर्वेदी की सी दुरभिसंधि मैंने भी की होती या हजारीप्रसाद जी द्विवेदी की तरह मैं भी कोई प्रौढ़ लेखक या आलोचक होता।

निराला पर लिखे मेरे किसी भी परवर्ती लेख ('काव्य में चित्र और संगीत' 'निराला की कविता', 'तुलसीदास', 'अचना' आदि) में वह गीतिका वाली शैली फिर देखने को नहीं मिलेगी।

डा० शर्मा ने निराला कविता के सन्दर्भ में जिस टोन में मेरा नाम लिया है, मैं उसी टोन में जवाब न दूँगा। दरअसल विद्वत्ता मेरी मौरूसी जायदाद है भी नहीं। ले देकर 'उस्ता चलो रे' की बैसाखी के सहारे बस डग-दो-डग चलने की हिमाकत भर की है मैंने। वाकई चारण भाट होता तो कोई-न-कोई कुर्सी जरूर मेरे भी हाथ लग जाती। यों तो सही और गलत का फैसला समाज करता है मगर तेजी और तल्खी (बात की) व्यक्ति को ही झेलनी पड़ती है।

---

१ स्मृति के वातायन'

निराला की प्रशस्ति मैंने वैसे ही लिखी है जैसे पन्त ने, भारतीय आत्मा ने डा० शिवमङ्गल सिंह सुमन ने या स्वय डा० शर्मा ने। यो मैं अपनी लिखी हुई को प्रशस्ति नही,

वाग्जन्मवफल्यमसह्यशल्य
गुणाढ्ये वस्तुनि मौनिता चेत ।

—श्रीहर्ष

मानता हू। यदि हिन्दी मे तुलसीदास या निराला के लिए वैसे शब्द प्रयुक्त न हो तो फिर किसके लिए हो ?

गुणरेतावद्भिर्जगति पुनरन्यो जयति क ?

—मुरारि

जाने क्यो, डा० शर्मा ने अपने विशाल ग्रन्थ म छोटी छोटी बातो को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। ऐसी वैसी घटनाओ के सघटन विघटन से किसी महान साहित्यस्रष्टा के दिग्देशकालजयी सजन को माप सकना सभव है क्या ? वह तो युग कवियो, राष्ट्र-कवियो का अपना दायरा है जिसमे काल से कही अधिक काल का महत्त्व होता है।

अब निराला तो रहे नही, मैं किससे कहलाऊँ कि सन १६ म 'जुही की कली' के लिखे जाने की बात उन्होंने बताई थी, कि अकेले मैं ही नही मेरी तरह कितने ही दूसरे भी दिग्भ्रान्त (!) हुए हैं।

असीम की सीमाओ का निर्माण हम अहर्निश उनिद्र बुद्धि से करते रहते हैं, किन्तु

इस अनिल वाह के पार प्रखर
किरणों का वह ज्योतिमय घर !

सदिग्ध देश एव विपयस्त काल के कवि कालिदास भारत के कवि कुल गुरु कहे जाते हैं।

रमेश (अब जबलपुर के डा० रमेशचद्र मिश्र) ने उस दिन लाज म निराला को नहला धुला कर उजले धुले कपडे पहना दिए थे। तब वह उनके गद-गद चीकट कपडो म साबुन लगा रहा था जब मैं विश्वनाथ मन्दिर से लौटा था। आज लहराते हुए सुवासित केश और खूब साफ-सुथरे कपडो मे निराला खूब ही सज रहे थे। मुझे विलम्ब से आया देख पूछा—'कहाँ गए थे ? मैंने मन्दिर का नाम लिया तो बोले आज क्या था वहाँ ? मैंने प्रकाश के स्पश से काँपते से अँधेरे म अपने रिक्तपाणि दय को छिपाते हुए निशब्दता पर अटकती लटकती

साँस को शान्त गम्भीरता से खींच कर कहा

'आज मेरा जन्मदिन है ।'

निराला ने विपुल-पुलक प्लावित स्वर मे अग जग का समस्त उल्लास घोल कर पूछा

'कौन सी तिथि है आज ?'

मैंने माघ, शुक्ल द्वितीया का हवाला देते हुए चरण-स्पर्श के लिए हाथ रूप बढ़ाया ही था कि उन्होंने शिशु सुलभ सरलता से हवा मे हाथ उछाल कर कहा

'अरे-अरे ! तुम तो मुझसे तीन दिन बड़े निकले ।'

फिर क्षितिज के तट पर आनन्द सिन्धु उद्वेलते हुए ईसवी सन् पूछा तो मैंने 'पाँच जनवरी उन्नीस सौ सोलह' बता दिया। फिर क्या था ? उमग उमड कर बोले उसी साल तो मैंने 'जुही की कली' लिखी थी । इस पर मुझे ऋग्वेद की एक ऋचा याद आ गई थी

केतु कृण्वन्नकेतवे
पेशो मर्या अपेशसे
समुषद्भिरजायथम् ।

क्या मतलब ? —निराला की दिलचस्पी का क्या कहना । मैंने बताया "इसमे मानव की महिमा वर्णित है कि वह प्रकाशहीनो मे प्रकाश फैलाता और रूपहीनो को रूप प्रदान करता हुआ उषा के साथ जन्मा है।

"और बबूल के काँटो से बिंधा हुआ मैं आपकी 'जुही की कली' के साथ पैदा हुआ हूँ ।'

इसके अतिरिक्त कोई बारह वर्ष पूर्व 'निराला की कविता' नामक एक लेख मे भी, जो 'अवन्तिका' के दो अङ्कों मे क्रमश प्रकाशित हुआ था, मैंने यही बात लिखी थी । उस लेख के कितने ही अश भिन्न भिन्न लेखको द्वारा उद्धृत हुए हैं, किन्तु किसी ने इस सचाई को चुनौती नहीं दी थी । तब स्वय निराला और उनके शत शत प्रशसक भी थे, किसी ने भी मेरी इस गल्ती की ओर इशारा नही किया था ।

प्राय सन् '२५ मे प्रकाशित 'हमारे साहित्य निर्माता' नामक अपने अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ मे छायावाद के सबसे सहृदय समीक्षक श्री शान्तिप्रिय जी द्विवेदी ने निराला का जन्म स० १९५५ और रचना काल का प्रारम्भ स० १९७२ में बताया है। साथ ही 'जुही की कली' और अधिवास को प्रारम्भिक रचनाओं में

सर्वोत्तम कहा है। फिर यह कौन-सा समय हुआ ? सन् '१६ और सं० '७२ में क्या फर्क है ?

डा० भगीरथ मिश्र ने अपनी 'निरालाकाव्य' पुस्तक में भी यही बात दुहराई है। अस्तु मेरी 'त्रयी' नामक समीक्षा पुस्तिका में जब वह लेख संकलित हुआ तो मैंने स्वयं जाकर अपने हाथों निराला को वह पुस्तक अर्पित की थी। त्रयी का पहला संस्करण सन् '५६ में हुआ था और निराला का महानिर्वाण सन् '६१ में। जो उनके जीवन-काल में सही था, वह उनके गुजरते ही गलत कैसे हो गया ? यकायक यह कैसी तेज बारिश हुई जिसकी ओला-जैसी बूँदें भूस की ढेरियाँ छितरा गईं।

आप्त वचन की प्रामाणिकता में संशय की स्थिति उत्पन्न होने पर कारण के गुणों से उसका परिहार कर स्वतःसिद्ध प्रामाणिकता की व्यवस्था शास्त्रों ने दी है। या तो केवल आकार ग्रहण करने के लिए ही घड़े को मिट्टी, चाक या चाक को घुमाने वाले डंडे आदि कारण की आवश्यकता होती है घड़े का उदाहरण भर देना हो तो कारण की कोई आवश्यकता नहीं होती।

यह सच है कि काव्य-कला के उत्कर्ष अपकर्ष का अध्ययन-आस्वादन करने के अवसर पर उसके रचना-काल को मैं बहुत अधिक महत्त्व नहीं देता। कला की साख्यिकी के बहुतेरे दावेदार पारिभाषिक शब्दावली पर जीते हैं अपनी ओर से कला को कला बताते हैं पर घिसे पिटे उदाहरणों की लीक से हट कर नव गति नव लय ताल छन्द नव' को शक्ति-परीक्षण का क्षेत्र बनाते नहीं देखे जाते। इस मामले में मैं व्यासदेव की उक्ति—'राजा कालस्य कारणम्'—का समर्थक हूँ। निराला ने जब 'जुही की कली' खिलाई तब हिन्दी काव्य के उपवन में एक ऋतु आई, जब कुकुरमुत्ता उगा तब ऋतु अपने आप बदल गई।

यह सच है कि संस्कृत के पाँच सात हजार वर्षों के साहित्य से नई हिन्दी के पचास वर्षों का साहित्य अति सामीप्य के कारण अधिक व्यामोह उत्पन्न करने वाला है। अभी गिरोहों द्वारा योजना बना कर पश्चिमी शैली का वैज्ञानिक इतिहास लिखा लिखाया जा रहा है। जो कवि है ही नहीं उसे हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करने के लिए हर साल डेढ़ दर्जन वैज्ञानिक किताबें निकल रही हैं।

इधर महामानव, महाकवि निराला के लिए महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का यह एक ही निर्घोष आर्ट पेपर पर छपे हुए सुनहली जिल्द वाले ढेर सारे अधरे को उड़ा देने के लिए काफी है

"निराला साहित्यगङ्गा के भगीरथ हैं। आधुनिक युग मे जब हिन्दी-साहित्य-गङ्गा का मार्ग अवरुद्ध हो गया था, उस वक्त पर्वत गात छेद कर उन्होंने द्वार खोला और पाञ्चजन्य बजाते आग आगे बढ़े, और अब तो—

दिङ्नागदन्तमुसलविषमेऽपनीते
मुख कलमा प्रयाति।

"निराला ने द्वार ही नहीं खोला बल्कि अपने अनमोल सृजन द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। कोई समय था, जब कि ईर्ष्यावश कितने ही साहित्यकार निराला के महत्व को स्वीकार नहीं करते थे, लेकिन वह बीते युग की बात है। आज निराला को न माननेवाला नास्तिक समझा जाएगा।

'आनेवाली पीढ़ियाँ इस महान कलाकार की प्रतिमा के बारे मे कितनी ही कल्पनाएँ करेंगी किन्तु वह उसके सरल, निष्कपट, उदार जीवन की झांकी नहीं पा सकेंगी?

"निराला जैसी विभूति दुर्लभ है। उनकी साहित्य प्रतिमा की भाति उनकी महामानवता भी साधारण मानदण्ड के माप से बाहर की चीज है।"

सक्षेप मे, जैसे कालिदास विक्रमादित्य के समकालीन हो या द्वितीय चन्द्रगुप्त के —

निद्रावशेन भवताऽप्यनवेक्षमाणा
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः।

की अर्थसम्पदा और ललित कला का बोध कालाश्रयी नहीं है, क्योंकि उस अनिर्णीत काल में भी सौ कालिदास नहीं हुए थे।

ऐसी भूलें (!) डा० शर्मा से भी कम नहीं हुई हैं। कुमारसम्भव के सर्ग निर्णय में उन्होंने निराला को ही नहीं टैगोर को भी प्रामाणिक नहीं माना है। अपने 'सताविं'—नामक काव्य संग्रह में टैगोर ने कालिदास के ऋतुसंहार मेघदूत, कुमारसंभव आदि पर सुप्रसिद्ध कविताएँ लिखी हैं। कुमारसंभव गान का अन्त —

सहसा थामिले तुमि असमाप्त गाने

बन्द कर दिया है। कालिदास ने मेघदूत को भी असमाप्त स्थिति में ही समाप्त किया है। किसी कवि ने या किन्हीं कवियों ने इन दोनों महान कला-कृतियों को पूर्ण करने का साहस किया है। कालिदास के अधूरेपन को कोई मेघ महिप स्वामी क्या आकर पूरा करता! हाँ उस सतही प्रतिभावाले ने कुछ सपाट-

खल्वाट लिख कर अपनी असहृदयता को अवश्य उध्र्वबाहु उदघोषित कर दिया है।

ऐसे ही जिन छोटे और खाटे कामो की अतिशयता मे निराला का बड प्पन झलकाया गया है वस्तुत वह विपन्न और अति श्रान्त मन का आशिक चित्र मात्र है। वह महर्षि विश्वामित्र द्वारा कुत्ते का, जूठा मास खाने जसा है। लाख सचाई की दुहाई दी जाय उसम निराला की समग्रता कहीं अनुबिम्बित नहीं है।

सत्ताईस वर्षो के अनिशय सान्निध्य ने मेरे अन्त पट पर निराला की कोई और ही आकृति आकी है। उसका विश्लेषण यहाँ अनपेक्षित है।

सक्षेप म मेरे लेख से बिदके हुए निराला कुछ ही दिनो मे प्रकृतिस्थ हो गए थे। उस क्रम म मुझे कुछ कडव पत्र भी लिखने पडे थे।

मैं जिन दिनो रायगढ म राजकवि था पण्डित रूपनारायणजी पाण्डेय के पत्र आते ही रहते थे, माधुरी म धडाधड मेरी रचनाएँ छपने लगी थी, 'सरस्वती' ने भी प्रथम पष्ठ पर मेरे कुछ गीत छापे थे, उन दिनो निराला ने अपने पत्रो म मुझस तरह-तरह के साहित्यिक प्रश्न पूछे थे। मित्रो ने कुछ अच्छे पत्रो पर ही हाथ साफ किया है फिर भी अभी इस सकलन म दो चार स्मति चिह्न रह गए हैं। एक कहो मौन मत रहा —कविता लिखते समय निराला ने सोलह शृङ्गार कौन कौन से हैं सप्रमाण जानना चाहा था। मैंने सोलह शृङ्गारो के नाम उज्ज्वलनीलमणि के इस श्लोक—

स्नाता नासाग्रजाग्रन्मणिरसितपटा सूत्रिणी बद्धवेणि
सोत्तसा चर्चिताङ्गी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता
ताम्बूलास्योरुबिन्दुस्तबकितचिबुका कज्जलाक्षी सुचित्रा
राधालक्तोज्ज्वलाङ्घ्रि स्फुरति तिलकिनी षोडशाकल्पिनीयम।

क साथ तत्काल लिख भज थ। इसी प्रकार जब उन्ह संस्कृत-नाटको पर वार्ता प्रसारित करनी थी मैंने उनक मागने पर अश्वघोष दिङ्नाग आदि के अपेक्षा कृत अल्प प्रचलित नाटको की एक नातिविस्तृत तालिका लौटती डाक स भेज दी थी। एक बार बुद्ध और शङ्कराचाय क दशनो म कहाँ-कहाँ समता है इस पर एक सक्षिप्त टिप्पणी मांगी थी।

वस्तुत उनका अभिप्राय मुझे हीनता की भावना स पीडित न होने दना ही था। वह क्या नहीं जानत थ ? मुझस कालिदास और रवीन्द्रनाथ क मिलन जुल्न हर भावों वाल पद पूछना और रवीन्द्रनाथ को श्रेष्ठतर सिद्ध कर अट्टहास किया करत थ।

मेरे प्राण तो प्रभात के उदय-आलोक में जागना चाहते थे असीम सिंधु की ओर झरने का उज्ज्वल जल उन्मुक्त कलकल ध्वनि करता हुआ वह चलता था। यदि मेरे आरम्भिक अज्ञान तिमिरान्ध लेखों का प्रभाव ही स्थायी हो। तो मेरे इस क्षुद्र अकिञ्चन लोक जीवन को जो संशय विपर्यय के गहरे कुहासे में मुह छिपा कर आत्मिक रिक्तता में डूब गया था, निराला ने अपनी व्यथा वेदना के अन्तर्दीप्त चेतन प्रकाश से कदापि उन्नती न किया होता। अन्तर की आकाङ्क्षाओं और स्वप्नों के मधुगंधी आकाश का आभास भी मुझे न मिलता यदि आदिगन्त फैले हुए तिमिर अंधकार को छिन्न विच्छिन्न कर कपूरी लौ उठानेवाली निराला की करुण प्रशान्त दृष्टि का रत्नदीप मेरे सतत साधना के पथ पर न जलता रहता।

मैं मुजफ्फरपुर में जितने दिन बीमार रहा, निराला लगातार पत्र पर पत्र भेजते रहे। उन पत्रों में कोरा आश्वासन ही आश्वासन होता तो नागरिक नातों की औपचारिकता की गंध ही लगती, किन्तु मेरे अशक्त मौन पर जो उनकी व्यग्रता प्रकट होती थी वह जैसे व्यथा-तप्त रुग्ण मन की अपरिमित क्लान्ति मेट कर तृषातुर कण्ठ में शान्ति की सुधा उंडेलनेवाली थी। लगता जैसे विश्व के सर्वोच्च पद से सभी द्वन्द्वों और निरोध विरोधों को अपदस्थ करता हुआ एक अरुण आह्वान मेरे मुमूर्षु प्राणों को अपनी दुर्निवार प्रकाशधार में खींच रहा है जहाँ पार्थिव क्लेद पङ्क धुलता और जीवन में मृत्यु की ग्लानि मिटती है।

डेढ़ साल के जीवन मरण संघर्ष के बाद मैं जब नीरोग हुआ, तब निराला का एक नया ही स्थितप्रज्ञ रूप अन्तर्दृष्टि में उभर कर चिर स्थायी हो गया

This man is freed from servile bands
Of hope to rise, or fear to fall,
Lord of himself though not of lands
And having nothing yet hath all

शताब्दियों बाद कभी कोई निराला के नतोन्नत किन्तु अनुल्लङ्घ्य धरातल का महाकवि हो भी जाय, पर युग के निम्नाभिमुख बदलते हुए परिप्रेक्ष्य को मद्दे नजर रख कर अभी यह कहना अति कठिन है कि वह भावी महाकवि महामानव भी होगा।

मेरा अन्तर वज्र-कठोर सहज संवेदनशील निराला ही लिख सकते थे, और जिसका कलेजा पत्थर का हो गया था जो एक साथ जब शत घात घूर्ण आते थे मुझ पर तुले तूण मैं खड़ा देखता रहा अचल, वह शरक्षेप वह रणकौशल को ऐसी तटस्थता से ऐतिहासिक शिलालेख बना जाता? और कौन एक साथ पेट

और प्रतिष्ठा की दुहरी मारें यो झेल जाता जसे तुलसीदास का चातक तडातड वरसते ओले तोल रहा हो अपनी अतुल अनन्य निष्ठा से ? चौकोर तिक्डम से कमाई कीर्ति को कलेजे से लगा कर रखने वाले इतिहास के सतत प्रवाह की राह म पडे हुए इस पवत को लाँघने की कोशिश मे बह जायगे, अपने ही भूगोल मे गोल हो जायग जाल डाल कर भी मछुए उनके अष्टावक्र अस्थिपन्जर का अता पता न पा सकेंग। निराला का अन्न, रस प्राण छीनकर मुह जुठारनेवाले अब उसकी वाणी छीनने के लिए हाथ लपका रहे हैं, ऐसे ठूठा दे कर सरपसी मृत्यु-कूप मे इन ा इठला कर गाडी दौडाने वाले कब गाडी म हेला मारने के लिए हाय हाय मचाएग कहना कठिन नही है।

सस्कृत के एक कवि ने इस जटिल समस्या का ऋजु समाधान ढूढ लिया था

लोको मदयुगजन्मा कृतकृतकर्मा न मद्धर्मा
इति हेतोरिव कलिना क्षलिना सम्पीडयते साधु ।

कलियुग कहता है कि जन्म मेरे युग म और काम करने लग सत्य युग का, अब ऐसे अकृतज्ञ साधु जनो को अगर मैं तोड मरोड कर कूडे में न डाल दू तो वेचारे मेरे वफादार हमराही सुख चन की चौडी सडक पर अकड कर कसे चलेंगे ?

तभी तो यहा फना फी अल्लाह वहा, पौ-बारह है। दोनो युगो की पगडी अटकी है। यो 'सत' जोर मारता रहता है मगर हर बार तम उसे झडी दिखा देता है। बहरहाल—

मानना कि हर बहार मे पर टूटते रहे
फिर भी तवाफे सहने गुलिस्तां किए गए।

(३)

एक न एक दिन निराला के ये पत्र अध अन्तभूमि से निकल कर प्रकाश के आकाश मे छवि मधु सुरभि भरेंगे, यह मैं जानता था। अवश्य इनके असा धारणीकरण पर ध्यान जाता तो मुझे अन्तगूढ मूल्ता आसती भी थी वस्तु का तगडापन ही काफी नही होता, बोद्धव्य की विशेषता पहले परखी जाती है। किसी भी भाषा म अनूठे भाव सब को नही चौंकाते। भाषा कोई होय—' बस, कहने सुनने की बात है।

जो जमीन अभी अभी जुती है उसकी सोंधी गन्ध स अटाऊ बटाऊ की नाक भर सकती है किसान की नजर अङ्कुर खोजती है। मेरे बजर मे पिछली पञ्चवर्षीय योजनाएँ कौन से अय-तत्त्व उगा सकी हैं, थकी-थकी हैरान निगाह गद बचाते मुद जाती हैं।

मेरे एक इश्तहारी कवि मित्र ने विचित्र ही तर्क दिया कि किसी स्वयम्भू प्रतिभा का निराला ऐसे एक विवादास्पद व्यक्तित्व को बीच में ला खड़ा करने की आवश्यकता क्यों हो ?

मैं प्रयत्न अनियोजित ढंग अपना कर खण्डन-मण्डन पर उतर आया 'पहले तो अपनी ही सीमाओं के सम्यग बोध के लिए उस अद्वैत-असीम तक दृष्टि फैलानी पड़ती है फिर प्रत्ययों और निषेधों के सुदृढ़ आधार के लिए विवेक में विरल प्रमाद का कंटक मिटाने वाला निराला सा अप्रतिहत अग्रगामी योद्धा और कहाँ मिलेगा ?

'प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में किसी-न किसी साहित्यिक सिद्धान्त से प्रेरित प्रभावित हो कर ही हम अपने या दूसरे के काव्य-व्यक्तित्व की जाँच पड़ताल या मूल्याङ्कन करते हैं। अकेले निराला की काव्य साधना ऐसी है जिस पर किसी भी एक सिद्धान्त का घिसा पिटा निष्कर्ष निछावर हो सकता है। मैंने कुछ मतों के विसर्जन और कुछ के नवनिर्माण के लिए ही निराला की मन्त्रवत्ता स्वेच्छया स्वीकृत की है।'

मेरी यह आत्मघाती स्वीकृति उन्हें यथा-तथा ग्राह्य हो भी जाती यदि सबके अन्त में मैंने अपना यह क्षेपक न जोड़ दिया होता कि उनके छायाद्वेषी नग्न विभा विलास में मैं निराला की जीवित डोलती हुई परछाइयाँ प्रबुद्ध हिन्दी-संसार को कभी भी दिखला सकता हूँ।

पहली बात यह है कि ये पत्र एक ऐसे व्यक्ति को लिखे गए हैं जिसका कर्तृत्व अभी अनदेखा और व्यक्तित्व अनजाना है। निराला ने उसे लिखा, यही उस अज्ञात कुल शील की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

दूसरी बात यह है कि ये पत्र कोई लेख या किताब छपाने के लिए प्रश्न पूछ पूछ कर औपचारिक उत्तर के रूप में लिखवाए हुए नहीं हैं। आत्यन्तिक सहजता ही इनकी मौलिक विशेषता है। इनमें अभिव्यक्त राग विराग हर्ष-विषाद, कठोरता विह्वलता—सब निराला की भिन्न भिन्न मन स्थितियों के निर्विकार विकार, निश्चल चाञ्चल्य, असाधारण साधारणता एवं अश्लिष्ट ऋजुता के प्रतिमान हैं। जिन्हें निराला-साहित्य गहन गिरि कान्तार सा दुर्गम प्रतीत होता हो और निराला का व्यक्तित्व विरोधों और असंगतियों का स्तूप, वे भी इन पत्रों में उनके बहिरन्तर में प्रवेश पा कर अनिरुद्ध कृतार्थता का अनुभव करेंगे। निराला से उद्भूत होने के कारण ही ये बोल अनमोल बन पड़े हैं।

अब जब निराला के जीवन और उपलब्धियों पर ढेर सारे ग्रन्थ निकल रहे हैं इन पत्रों की उपयोगिता और भी स्पष्ट है। इनके द्वारा उनके जीवन और

और प्रतिष्ठा की दुहरी मारें यो झेल जाता जस तुलसीदास का घातक तडातड बरसते ओले तोल रहा हो अपनी अतुल अनन्य निष्ठा से ? चौकोर तिकडम से कमाई कीर्ति को कलेजे से लगा कर रखने वाले इतिहास के सतत प्रवाह की राह म पडे हुए इस पवत को लाँघने की कोशिश म वह जायग अपने ही भूगोल म गोल हो जायग जाल डाल कर भी मछुए उनके अष्टावक्र अस्थिपञ्जर का अता-पता न पा सकेंगे। निराला का अन्न, रस, प्राण छीनकर मुह जुठारनेवाले अब उसकी वाणी छीनने के लिए हाथ लपका रहे हैं, ऐसे ठूठा देकर सरकसी मृत्यु-कूप म इन्ह ढकेल कर गाडी दौडाने वाले कब गाडी म हेला मारने के लिए हाय हाय मचाएगे कहना कठिन नही है।

सस्कृत के एक कवि ने इस जटिल समस्या का ऋजु समाधान ढूढ लिया था

लोको मद्युगजन्मा कृतकृतकर्मा न मद्धर्मा
इति हेतोरिव कलिना बलिना सम्पीड्यते साधु ।

कलियुग कहता है कि जन्मे मेरे युग मे और काम करने लगे सत्य युग का, अब ऐसे अकृतज्ञ साधु जनो को अगर मैं तोड मरोड कर कूडे में न डाल दू तो बेचारे मेरे वफादार, हमराही सुख धन की चौडी सडक पर अकड कर कसे चलेंगे ?

तभी तो यहाँ फना फी अल्लाह कहा, पौ-बारह है। दोनो युगो की पगडी अटकी है। यों सत जोर मारता रहता है मगर हर बार तम उसे झडी दिखा देता है। बहरहाल—

माना कि हर बहार मे घर टूटते रहे
फिर भी तवाफे सहने गुलिस्ताँ किए गए।

(३)

एक न एक दिन निराला के ये पत्र अपने अन्तर्भूमि से निकल कर प्रकाश के आकाश म छवि मधु सुरभि भरेंगे यह मैं जानता था। अवश्य इनके असाधारणीकरण पर ध्यान जाता तो मुझे अन्तगूढ मूढता आसती भी थी वक्ता का तगडापन ही काफी नही होता बोद्धव्य की विशेषता पहले परखी जाती है। किसी भी भाषा म अनूठे भाव सब को नहीं चौंकाते। भाषा कोई होय—' बस, कहने सुनने की बात है।

जो जमीन अभी अभी जुती है, उसकी सोधी गन्ध से उटाऊ बटाऊ की नाक भर सकती है किसान की नजर अड्कुर खोजती है। मेरे बजर म पिछली पञ्चवर्षीय योजनाए कौन-से अय-तत्त्व उगा सकी हैं थकी-थकी हैरान निगाहें गम खाते मुड जाती हैं।

मेरे एक इश्तहारी कवि-मित्र ने विचित्र ही तर्क दिया कि किसी स्वयम्भू प्रतिभा को निराला ऐसे एक विवादास्पद व्यक्तित्व को बीच में ला खड़ा करने की आवश्यकता क्या हो ?

मैं अत्यन्त अनियोजित ढंग अपना कर खण्डन-मण्डन पर उतर आया पहले तो अपनी ही सीमाओं के सम्यग् बोध के लिए उस अद्वैत-असीम तक दृष्टि फैलानी पड़ती है फिर प्रत्ययों और निषेधों के सुदृढ आधार के लिए विवेक से विचार प्रमाद को काटने मिटाने वाला निराला-सा अप्रतिहत अग्रगामी योद्धा और कहां मिलेगा ?

"प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में किसी-न किसी साहित्यिक सिद्धान्त से प्रेरित प्रभावित हो कर ही हम अपने या दूसरे के काव्य-व्यक्तित्व की जांच पड़ताल या मूल्याङ्कन करते हैं। केवल निराला की काव्य साधना ऐसी है जिस पर किसी भी एक सिद्धान्त का घिसा पिटा निष्कर्ष निछावर हो सकता है। मैंने कुछ मतों के विसर्जन और कुछ के नवनिर्माण के लिए ही निराला की मध्यवर्तिता स्वेच्छया स्वीकृत की है।'

मेरी यह आत्मघाती स्वीकृति उन्हें यथा-तथा ग्राह्य हो भी जाती यदि सबके अन्त में मैंने अपना यह क्षेपक न जोड़ दिया होता कि उनके छायाद्वेषी नग्न विभा विलास में मैं निराला की जीवित डोलती हुई परछाइयां प्रबुद्ध हिन्दी-संसार को कभी भी दिखला सकता हूं।

पहली बात यह है कि ये पत्र एक ऐसे व्यक्ति को लिखे गए हैं जिसका कर्तृत्व अभी अनदेखा और व्यक्तित्व अनजाना है। निराला ने उसे लिखा यही उस अज्ञात कुल शील की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

दूसरी बात यह है कि ये पत्र कोई लेख या किताब छपाने के लिए प्रश्न पूछ पूछ कर औपचारिक उत्तर के रूप में लिखवाए हुए नहीं हैं। आत्यन्तिक सहजता ही इनकी मौलिक विशेषता है। इनमें अभिव्यक्त राग विराग हर्ष विषाद, कठोरता विह्वलता—सब निराला की भिन्न भिन्न मन स्थितियों के निर्विकार विकार निश्छल वात्सल्य असाधारण साधारणता एवं अक्लिष्ट ऋजुता के प्रतिमान हैं। जिन्हें निराला-साहित्य गहन गिरि-कान्तार सा दुर्गम प्रतीत होता हो और निराला का व्यक्तित्व विरोधों और असंगतियों का स्तूप, वे भी इन पत्रों में उनके अन्तस्तर में प्रवेश पा कर अनिर्वद्ध कृतार्थता का अनुभव करेंगे। निराला से उद्भूत होने के कारण ही ये बोल अनमोल बन पड़े हैं।

अब जब निराला के जीवन और उपलब्धियों पर ढेर सारे ग्रन्थ निकल रहे हैं इन पत्रों की उपयोगिता और भी स्पष्ट है। इनके द्वारा उनके जीवन और

साहित्य के कितने ही नए पहलुओ का प्रथम प्रत्यय होगा, कितने ही अतमुख प्रश्नो का ऊध्वमुख ज्योति प्ररोही साक्षात्कार।

किसी साधना की कल्पलता के फूल फलो के साथ उसके पत्रो की प्राथमिकता पर दृष्टिपात करना द्वितीय वास्तविकता पर पहुचने क समान ही है।

आज जब छायावादी सस्कारो को निमूल करने के लिए सघबद्ध प्रयास चल रहा है छायात्मक सशयो को रेखाङ्कित कर उन पर निस्तत्त्व वाद विवाद का धधा चालू है, इन पत्रो म जहाँ-तहाँ निर्दिष्ट कुछ परस्पर विरोधी से प्रति भासित होने वाले वक्तव्यो पर यहाँ टीका टिप्पणी करना व्यथ प्रतीत हुआ। अभी उसके उपयुक्त स्थल और अवसर अनेक हो सकते हैं।

डा० नगेन्द्र क रस-बोध को चुनौती देना रस को चुनौती देना नहीं है। शङ्कराचाय के अद्वत ज्ञान का (माहिष्मती पुरी के मीमासक मण्डन मिश्र की पत्नी भारती के) काम विज्ञान की ललकार ने निस्तेज कर दिया था। किसी के विशिष्ट ज्ञान को अमर्यादित कर अपनी अविशिष्टता स्थापित करने की पद्धति नई नही है। इससे तात्कालिक चर्चा म सरगरमी आती है, यो मूर्ति भजको क सलीके बड़े काम के सिद्ध होते है। अगली पीढी उन्ही के अस्त्रो स उनकी छिन्नमस्ता प्रतिष्ठा को पुन स्थापित करती है।

यद्यपि मैंने निराला की त्रिविध ज्वालाओ की बहुविध चिनगारियो को समान मूल्यवान माना है, किन्तु यदि मूल्याङ्कन के प्रतिमान किसी एक ही स्तरीय ज्वाला से उद्भासित होते हों तो मैं अपन अधकचरे अध्यात्म की धाक निराला के प्रतिमित आलोक पर न जमाऊँगा। मेरा विरोध वहाँ है जहाँ चिन्मय को मृण्मय मान कर ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध आलोचना लम्बी छलाँग लगाती या मृण्मय को चिन्मय स्वीकार कर चतन्य की खिल्लियाँ उड़ाती है। निराला जो हैं वह आलोच्य कम और विवच्य अधिक हैं। आलोचना के घटाटोप से दबे हुए निराला को ये पत्र खुलने-खोलने म थोड़ी बहुत मदद करें तो फिर और क्या चाहिए।

जान क्या निराला को अपनी अधिक स अधिक छोटी रचनाओ का बड़ा भरोसा था। प्रत्यक पत्र क साथ वह एक-एक छोटी चीजें जरूर भेजा करत थ। आलोचकों का एक दल जिन्हें नगण्य मानता है मैं अयत्र वही उनके कथ्य और शिल्प की विस्तत व्याख्या करना चाहूँगा।

मनु न मकड़ी (चाह वह सीधे ब्रह्मा स उड़ कर आई हो) को अपवित्र

नहीं माना है[1]। मैं पवित्रता अपवित्रता की बात नहीं कर रहा, सफाई देने के सिलसिले में—

ईरण तन की ज्योति तपन की
गगन-घटा काली-काली।—

कवि के डसे हुए मन की विरक्त धूमिलता का प्रकाशित करने का प्रयास भर करूँगा। तन के बजर में और मन की चमक को निराला के छोटे गीत वस्तुत बेहद सफलता के साथ व्यक्त करते हैं। कहना न होगा, जीवन और मरण का रहस्य निराला ने किताबों के माध्यम से नहीं जाना था, वह जिन स्थितियों में गुजरे थे, जिस वर्तमान का सामना किया था जिस भविष्य के सपने बुने थे, जिस अतीत को अपने गौरव से तुङ्ग हिमालय शृङ्ग बनाया था उन सबों की सम्यक अनुभूति की किरणें उनके गीतों के वाष्पाच्छादित स्तरों में से झाँकती हैं।

निराला दूसरे कवियों से अनेक अर्थों में भिन्न थे। मृत्यु की तलहटियों में भ्रमण करने में उन्हें कभी हिचकिचाहट नहीं हुई, किन्तु जीवन की अजेयता का विश्वास उन्होंने कभी नहीं खोया। विशृङ्खलता को छिन्न भिन्न करने के लिए उन्होंने निस्सन्देह कोई शृङ्खला नहीं गढ़ी, कालुष्य को जलाने के क्रम में बार-बार उनका होम करते हाथ जला, किन्तु प्राणों का प्रदाह प्रकाश प्रवाह के लिए अन्ध उर के तट-बन्ध काटता ही रहा। धसकती हुई कगार से हट जाने के लिए उन्होंने फिर फिर मानवता को आवाज दी, तटस्थ रूढ़ियों को सावधान किया। अवश्य वह उन्हें न प्रभावित कर सके, निष्ठुरता जिनकी सामर्थ्य का गरुड़ध्वज है, विश्वासघात विकास का कला विलास और प्रतिहिंसा नैतिक उछाल। महाकवि अकबर की चेतावनी—

नेटिव की क्या सनद है, साहब कहें तो मानूं!

मुझे याद है। मुसीबत है तो यही कि कोई नेटिव की माने न माने साहब अपनी साहबी की सलामती की खातिर नैतिक आदर्श को मौत के घाट उतारते नहीं झिझकते।

निराला के असंकुचित विचारों, उज्ज्वल और निःस्वार्थ कार्यकलापों के आदिगन्त प्रसार से ही ऐसी सारी विकृतियों की इतिश्री सम्भावित है। घातक प्रेरणाओं के शमन से उदात्त भावों का सृजन होता है। कुछ चहल-पहल बनाए

१ मक्षिका विप्रुष छाया गौरश्व सुयरश्मय
रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत।

रखन के लिए निराला की चौंकाने वाली चर्चा यह नही है। निराला से दीघकालीन निकट और घनिष्ठ सम्पक ने मुझे आतङ्क पर टिकी विडम्बनाओ से सचेत रहने की प्रेरणा नही दी है। मैं जिसे तप से न पा सका उसे तपक-तमक स पाने का कभी विश्वासी न था। हाथ बढा कर मीना को ले लेने वालो की मीयादी शक्तिमत्ता ने मुझे कभी आतङ्कित नही किया। कविता की मीनार पर खड़ी एक दूसरी मीनार सी निराला की कोमल-कठोर काया कैसे गङ्गा स्नान और गङ्गा जल-पान कर घुल्ते घुल्ते धराशायी हो गई, मैंने अपनी आँखो देखा, ये पत्र न देखनेवालो को भी दिखलाएगे। अपने-अपने बचाव के लिए हमला करनेवालो को अपनी ही दीवारो की दरारो से निशाना साधने की सीख भी इनमे है। पार पाने की बेकली धार की लहरो या भवरो का कसे धीर समीर की तरह तरण करती है, कसे शुष्क ज्ञान से विरक्ति भक्ति रस क स्रोत म परिवर्तित हो जाती है कुछ फट चित्रो जसे इन पत्रो मे यह सब भी देखा जा सकता है। जिसकी वेदना दिपी कौन सी छवि छिपी, किस नपे-तुले धरातल पर धूपछाँह अमाप अतरिक्ष उतर आया, किसने ऊपर से सूख भीतर से तरो ताजा महानुभाव घाव को रक्ताक्त बोल दिए रुधे कण्ठ को नीलकण्ठ की निष्कुण्ठना दी —इन पत्रो मे मुक्ता-मुक्त ऐसा क्या कुछ नही खुलता! किस भट्ठी मे फौलाद गला, किस शिद्दत की शरबती सर्दी मे जीवन धारा जम गई अजेय ज्योति का ताजा मिसाल सी उजला कर कसे आत्मप्रतीति की मशाल स्नेह के अभाव मे निधू म जल्ता-जल्ती जल गई कुछ सकेत उपलब्ध होते हैं इनसे।

राम ने सामने उल्लोल-कल्लोल भरे समुद्र को देखकर कहा था कि अब कोई किन शब्दो म इसकी प्रशसा करे! पाताल क कहर मे घर ससार बसाने वाले शेष भी इसकी अगेयता—अगाधता का अता पता पाने मे असमथ रहे, स्वय दिशाएँ ही इसकी सीमात रेखाएं बन गइ और द्वीप हो गए वालू के बडे बडे टीले। अब इसकी यह अपरिमय व्यापकता किन शब्दो मे अटे!

'किन्तु किन्तु मेरे जिन पूवजों ने इसे नाखूनो से खना था या जिन्हाने यह खाई भरी थी उनकी कल्पान्त तक बनी रहनेवाली महिमा को कौन बखाने!'

मैं समझता हूँ य पत्र चन्दन-वन म कस्तूरी की गन्ध फलानेवाली हवा की लहरों मे ही नही तरते इनकी सुगन्ध सवत्र आनन्द मन्थर ही नही है, आकाश

गङ्गा की हिमफुहारो से इनका अन्तर निरन्तर शिशिर शीतल ही नही रहा है, ये आग भी उगलते हैं, ऊँचे चढ कर कुछ कहते भी हैं, बातो का ठीक ठीक जवाब न देने पर चिढकर खरी-खोटी भी सुनाते हैं।

जिन्होने इन्हे लिखा, उनके सातो रगो मे एक यह भी सही। उनका प्रत्यक्ष इस रङ्ग के माध्यम से भी हो सकता है। यद्यपि शाब्द प्रमाण से कोई अनुभव नहीं दबाया जा सकता, किन्तु वेदान्ती प्रत्यक्ष एवम् अनुभव को अभिन्नार्थक मानता है। अनुभव पारमार्थिक रूप मे परम तत्त्व तक जाता है लौकिक व्यवहार मे वह प्रत्यक्ष का पर्याय है। जो हो, इन पत्रो के होने न-होने से निराला का कुछ नही आता जाता, अलबत्ता ये न हो तो मेरी प्रत्यभिज्ञा न हो, कोई न जाने कि किसी परमशिव ने कभी स्वेच्छा से अपने पट पर मेरा चित्र आँका था।—'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वो‍‌न्मीलनम्।'

—प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

अब यह परम भ्रम मेरे मिटाए न मिटेगा, क्योकि What is bred in the bone cannot come out of the flesh भारतीय साहित्य मे देवचरित्र ऋषि-चरित्र के बाद मानव चरित्र का स्थान है। देवत्व एवम् आर्षभाव मानवता की ही उदात्त व्याप्ति के भीतर हैं। निराला का मानव पहले देवता या ऋषि है,—मूल्याकन मे इस निकष की उपेक्षा यद्यपि आलोचक की एकाङ्गिता की ही विज्ञप्ति है, समग्रता मे निराला के जिज्ञासु आधे-अधूरे परिचय से विपर्यस्त तृप्ति ही पाते हैं।

वे देवतो का ठिकाना आलोक से प्रज्वलित दुर्गम दुर्बोध स्थान मे बताते हैं उस आलोकित प्रदेश मे प्रवेश असभव नहीं है, सूर्यरश्मियो के सहारे वचारिक उच्चता के शिखर पर भी पहुँचा जा सकता है।

जिसका मन विवेक से आक्रान्त है, जो भीड मे भी अकेला है शील और औदार्य जिसके विशेष गुण हैं, ज्ञान निलय चैतन्य मे चित्त को स्थिर रखने वाले उस आप्त भावापन्न को क्या नहीं समझा जा सकता? जिसका मोहावरण केंचुल की तरह उतर गया है, जिसने तप कर असाध्य साधन किया है,—इसी शरीर से नवी शक्ति को आयत्त कर महाप्राणता का अखण्डनीय प्रमाण प्रस्तुत किया है उसे छोडकर क्वचित् कदाचित् पञ्च मकार की प्राणिशास्त्रीय दुर्बलता का दुष्प्रचार मानवीय चरित्र के सबसे कमजोर पाए को मुँहजोर सिद्ध करने जैसा है।

अब तक प्रकाशित अप्रकाशित तथ्यो मे यह सामर्थ्य नही देखी गई कि वे निराला के सत्य या सत्त्व को साकार कर सकें। गुलाब की एक एक पखडी

को नोचकर गुलाब की अखण्डता का मर्म नहीं उद्घाटित किया जा सकता। विराट रूप दिखलाने के पूर्व कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि दी थी चर्म चक्षु मर्म तक पहुँचने में असमर्थ हैं। निराला केवल नाम और रूप नहीं अनाम अरूप आत्मा भी हैं। लोक रुचि की दृष्टि से यह विषय चाहे जितना अरोचक हो तत्त्व विश्लेषक के लिए तो यह रोचक भी है प्ररोचक भी। मानवीय परम्परा के सहस्राब्दियों के इतिहास में सुकरात बुद्ध ईसा गाधी एस नाम कितने हैं?—कबीर सूर-तुलसी के समान निराला भी हिंदी-कवि परम्परा में एक वैसा ही कालजयी नाम है।

अब कोई भावात्मक ग्लानि या सांख्यिकी के तथ्यों से निराला के सत्य को नहीं ढक सकता। जिसके यश का चिराग तनिक श्वास उच्छ्वास से लप लप करने लगता है उसका नाम महाप्राण निराला नहीं होता।

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल

\+ + +

किंतु पड़ी व्योम-उर बंधु नील मेघ माल!

—अनामिका

इस घनघोर भौतिकवादी युग में, जब अर्थोपार्जन के लिए कितने ही घिनौने हथकंडे अपनाए जा रहे हैं, कठोर तपस्या का दावा अकेले निराला ही तो कर सकते थे

लगे जो उपल पद हुए उत्पल ज्ञात
कण्टक चुभे, जागरण बने अवदात,

\+ + +

समझ क्या वे सकेंगे भीरु मलिन मन,
निशाचर तेज हत रहे जो वन्य जन—
धन्य जीवन कहाँ?

—गीतिका

जिस जीवन को निराला ने धन्य मानकर सुख से जीने की कर्दथित सुविधाओं का बलिदान किया उसका मूल्याङ्कन बहुमत के आधार पर कैसे हो सकता है? सतही बहुमत निराला के अभिमत की तह तक उतरता नहीं दिखता, क्योंकि अपरोक्ष स्वानुभूति के चैतन्य से निराला के अभिमत ने आकार ग्रहण किया है।

अनुभूति की सघनता को ई० सन् से तोलना ठीक नहीं है। सन् '३५-३६ की तन्मयता सान्ध्य गीतों में प्रखरतर हो उठी थी। अन्तिम स्वरों की प्रशान्त क्रान्ति, आनन्दमयता निराला की धारणातीत महिमा को चिरविस्मय के रूप में निरूपित करने को विवश करती है। मेरे अन्तर की रिक्तता उसे पूर्णता में न प्रस्फुटित करे, मलिनता उज्ज्वल रेखाएं न आँक सके, तो यह मेरी ही अक्षमता है, उन गीतों की क्षमता और योग्यता तो भ्रम और सम्भ्रम से परे है।

भौतिकवादी की दृष्टि समसामयिक सृष्टि पर टिकती है, अध्यात्मवादी तात्कालिकता को अधिक महत्त्व नहीं देता। क्योंकि अनन्त जीवन का विश्वासी कुछ क्षणों में टटका और कुछ क्षणों में बासी नहीं होता। निराला की ताजगी का राज एक अपने युग के प्रवर्तन या उसके प्रतिनिधित्व में ही पिनहा नहीं है यह बदलते हुए परिप्रेक्ष्यों के साथ आनेवाले युगों में क्रमशः स्पष्ट होता रहेगा।

कौन जाने, तब ये पत्र उनके दीप्त और दग्ध जीवन के आस-पास झुके हुए धूमिल आकाश को गहन आत्म प्रकाश से उद्भासित करने में आंशिक सहायता प्रदान करें।

निराला जयन्ती
निराला निकेतन
मुजफ्फरपुर (बिहार)

जानकीवल्लभ शास्त्री

निराला
के
पत्र

58 Nariyalwali Gali
Lucknow
13 7 35

प्रिय बाल शिव,

तुम्हारी 'काकली'[1] नकल[2] नहीं। तुम्हारे आत्मीय सत्य से पूर्ण, आकाश और पृथ्वी को मिला रही है। इसमें मैं अपने तारुण्य की नई पहचान पा कर चकित हो गया, देर तक मुग्ध होकर सुनता रहा।

मैं अवश्य किसी पत्रिका में, इसकी चर्चा करूँगा।

तुम्हारा
'निराला'

---

१ 'काकली' मेरे प्रायोगिक संस्कृत गीतों और प्रगीत कविताओं की प्रथम पुस्तिका है। सन ३४ में उसका प्रकाशन हुआ था। वन्दीमन्दिरम् (खण्डकाव्य) और लीलापद्मम् (मुक्तक काव्य) उसके बाद की रचनाएँ हैं।

२ 'काकली' शीर्षक प्रगीत कविता की प्रारम्भिक पंक्तियों में कोयल को सम्बोधित कर लिखा था कि मैंने तेरी चोरी छुपा चुरा ली, तेरी ही बोली की नकल उतारी है इसलिए मेरी काकली में तेरी काकली की असलियत नहीं, एक नकलची की कामयाब-नाकामयाब कोशिश भर है —

कोकिल, कृत कलालापो नन्दने त्वया सानन्दम्,
तत्प्रतिध्वनि प्रेङ्खितो धुना दिशि दिशि मन्द मन्दम् ।
+ +
यो यस्यानुकरोति विभ्रम तस्मात स्वयं स हीन,
त्वद्वाचोऽनुकृतेर्मलिना काकली, ततोऽस्मि च दीन ।

—काकली पृ० २८

संभवत निराला ने इसी संदर्भ की ओर संकेत किया है।

२

58 Narıyalwalı Galı
Lucknow
30 7 35

प्रिय बाल कवि,

दोनो पत्र यथासमय प्राप्त हुए। पहले के उत्तर म देर इसलिए हुई कि मैं बहुत ज्यादा उत्तर देने का आदी नही। लिखनेवाला था कि दूसरा पत्र मिला।

आपकी रचनाएँ[1] स्वाभाविक उच्छ्वास तथा प्रेरणा के अनुसार हुई हैं

---

१ रचनाए थी —

(क)

विश्व तुम्हारी माया!
ज्योतिमय, यह अन्धकार—
छाया कि तुम्हारी छाया?
जलता नभ रवि की पी हाला,
उगल रहे तरु पल्लव ज्वाला,
जग के सजग ताप मे निखरी—
कनक तुम्हारी काया!
तोड़-तोड़ कर प्रस्तर के स्तर
झरता जीवन निर्झर झर झर
मरण यहाँ पाने को जीवन
शरण तुम्हारी आया!

(ख)

मेरा नाम पुकार रहे तुम,
अपना नाम छिपाने को!
सहज-सजा म साज, तुम्हारा—
दद बजा, जब भी झनकारा
पुरस्कार देते हो मुझको,
अपना काम छिपाने को!
म जब जब जिस पथ पर चलता
दीप तुम्हारा दिखता जलता
मेरी राह दिखा देते तुम
अपना धाम छिपाने को!

अब ये गीत (सन ३६ म प्रकाशित) मेरे (प्रथम हिन्दी काव्य-ग्रन्थ) 'हम अरूप' म सकलित हैं।

इसका सादय उन्हीं से मिलता है। भावना जैसी पुष्ट है, गति भी वैसी ही सुधर। मुझे आशा है, आपकी प्रतिभा अच्छे अच्छे चमत्कार प्रदर्शित करेगी।

मैं कई कारणों से खिन्न रहता हूँ। कुछ-कुछ काम करता जाता हूँ, पर जैसे थक गया हूँ। क्या इधर दो साल तक बाकायदा आपने 'सुधा' देखी है? शायद अब इस नये वय से मुझे विशेष रूप से लिखने का मौका न मिले। कारण दुलारे लाल जी की बहुत सी बातें मुझे पसन्द नहीं। विशेषाङ्क के लेखकों में उन्होंने मेरा नाम नहीं दिया यह मुझे आपस मालूम हुआ, कल उसके सम्पादक चतुरसेन जी टहलते हुए मिले, वह भी पूछ रहे थे कि आपका नाम क्यों नहीं है आप विशेषाङ्क के लिये क्यों नहीं लिख रहे। पर सत्य यह है कि दुलारे लालजी के मांगने पर बहुत पहले ही 'मित्र के प्रति' शीर्षक मैं अपनी एक कविता १२० पङ्क्तियों की (पच्चीस रोज पहले) दे चुका हूँ फिर भी उन्होंने ऐसा किया। इसके कारण हैं। पर देखा जायगा। मैंने कल उन्हें सूचना दे दी है कि मेरा कविता वे न छापें।

मैंने 'प्रभावती' एक नया अविज्ञापित उपन्यास लिखा है, ऐतिहासिक रोमांच के रूप म। यह वे 'सरस्वती पुस्तक भंडार' से प्रकाशित होगा। और जिनके लिये आपने लिखा है पूरा करने की कोशिश करूँगा। कारणों से नहीं पूरा कर पाया।

इस महीने एक लेख मेरा 'माधुरी' के विशेषाङ्क मे छप रहा है— स्ववीया।' 'सरस्वती' को श्री सुमित्रानन्दन पन्त'[1] लिखकर भेजा है। सुधा' को जो कुछ दिया था, वह वापस ले लिया।

'चित्रपट' का अभी-अभी मैंने एक कविता उनके मांगने पर भेजी है। पहले भी एक भेजी थी, पर वह उसमें छपी है मुझे मालूम न था। विशेषाङ्क के लिये मांगी थी, विशेषाङ्क म तो नहीं छपी। उस कविता का शीर्षक मैंने 'होली' दिया था, आर गुप्तोचना लिखने हैं बदल दिया होगा। वह यह है—

मार दी तुझे पिचकारी,
कौन री, रँगी छवि वारी?

---

१ फुलस्केप साइज़ के दो पृष्ठों मे प्रस्तुत कविता की मूल पाण्डुलिपि इस पत्र के साथ संलग्न है। हाशिये पर हिदायत के ये शब्द हैं इस पद्य को कहीं छपने के लिये न दीजियेगा।—निराला

२ निराला का यह लेख नहीं प्रकाशित हुआ। इसकी पाण्डुलिपि ही नष्ट कर दी गई।

फूल-सी देह, द्युति सारी,
हल्की तूल-सी सँवारी,
रेणुओं मली सुकुमारी,
कौन री, रँगी छवि वारी ?

इसमे दूसरी पंक्ति जरा पेंचदार है और तो साफ है। मतलब है उसका — री, वह कौन है जिसने तुझे रँगी छवि वार दी ?'

अभी जो भेजी है वह यह है —

वे गये असह दुख भर,
वारिद झरझर झर कर ।[1]

आशा है आप प्रसन्न है। उपदेश के रूप म तो मैं कुछ कह ही नही सकता। उपदेश आपको अपने ही भीतर स मिलेंगे। मैं आपको केवल प्रसन्न वदन[2] देखने की इच्छा रखता हूँ। इति।

सस्नेह—
निराला

---

१ पीछे ये दोनो गीत गीतिका मे सकलित हो गये हैं। मेरे पास भेजने के कितने ही दिनो बाद मित्र के प्रति कविता माधुरी म पहली बार प्रकाशित हुई थी अब यह अनामिका म सगृहीत है।

२ प्रसन्न वदन ?—क्यो नही तभी तो मैं लिख रहा था —

नाविक, अभी सवेरा है,
तरी खोल झट कह, वह तट भी—
पहचाना क्या तेरा है ?
त करनी है कितनी दूरी ?
खे लेने की ताकत पूरी ?
तब ले चल, हाँ निस्तल जल का—
रहता डर बहुतेरा है ?
सभी ओर दुहरा कुहरा हो
तू बठा, ज्यो थक कर राही,
सुनता हूँ उस ओर सभी का
होता रनबसेरा है !

—रूप अरूप

३

नारियलवाली गली, लखनऊ
१४ ८ ३५

प्रिय कवि,

मैं बहुत दिनों तक नहीं लिख सका। मेरी कन्या का १७ साल की उम्र में[1] उसी समय देहान्त हुआ था। आपने ठीक लिखा है—किन्तु करोषि सदम्भितमेव।"[2]

आपका विद्यार्थी जीवन जैसा चमकीला रहा है, मुझे विश्वास है, आपका कवि जीवन भी वैसा ही होगा।

प्रसिद्धि से मनुष्य नहीं, मनुष्य से प्रसिद्धि है।

संस्कृत में आपने जैसा दखल पाया है, हिन्दी में पाने के लिए भी प्रयत्नपर रहिये, श्रम निश्चय सार्थक होगा। मैं कुछ स्वस्थ होकर आपकी आलोचना लिखूँगा। इस समय अनेक प्रकार की उलझनों में हूँ। यहाँ पं० रूपनारायण जी पाण्डेय सं० माधुरी संस्कृत जानते हैं। उनसे मैंने आपकी चर्चा दो-तीन बार की है। शीघ्र उन्हें 'काकली' पढ़ने के लिए दूँगा। आप यदाकदा अपने विचार

---

१ 'सरोज-स्मृति' में सवा-अट्ठारह वर्ष लिखा है —
ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा यह जीवन सिन्धु-तरण।
यहाँ संभव है तात्कालिक शोक के सबब में उन्होंने हिसाब जोड़कर न लिखा हो और कविता लिखते समय अपेक्षाकृत अधिक प्रकृतिस्थ होने पर ठीक संख्या लिखी हो।

२ 'अन्तर्यामी' शीर्षक मेरी एक संस्कृत कविता की पंक्तियाँ हैं —
उपालम्भं नु कं ? कस्य च पुरतो हृतोऽपमिह लोके ?
किं कुर्यां कृपण प्राण शापासमापने शोके ?
सदा सहृदय कान्तमपि भावाचधि दर्शो सहगामिन,
किन्तु करोषि सदेभितमेव, न वेत्सि किमन्तर्यामिन ?

हिन्दी में प्रकट किया कीजिये मैं उनसे कह दूँगा—'माधुरी' आपको जगह दे। दूसरे पत्र भी देंगे। मैं ढंग समेत आपका परिचय आलोचना में कर दूँगा।[1]

आप विषय की तह तक पहुँचने की कोशिश करते हैं, वही आपको ऊँचाई तक उठायेगी।

कालिदास और श्रीहर्ष के सम्बन्ध में आपने ठीक लिखा है।[2] कभी मैंने भी इन्हें कुछ-कुछ पढ़ा था। समय नहीं कि दोनों की सौन्दर्य-दृष्टि पर लिखूँ दोनों महान हैं पर श्रीहर्ष का प्रभाव अधिक स्थायी होता है। फिर भी कला की जानकारी कालिदास को अधिक है—अगर कुछ महन होते।

हाँ प्रभावती कुछ बाकी है। नहीं कह सकता पूरी खूबसूरत उतार दूँगा। अप्सरा से अलका जैसे भिन्न है वैसे ही यह दोनों से। आपको शायद 'अप्सरा' अधिक पसंद है श्रम 'अलका' ने अधिक लिया।

आप शायद वहाँ[3] अंगरेजी के कला विभाग में पढ़ते हैं, किस दर्जे में हैं, लिखियेगा शीघ्र। फिर बस। मैं अधिक क्षुब्ध करना नहीं चाहता।

— निराला"

---

१ मेरे बार-बार मना करने पर कि मैं स्वयं आप पर लिखने की तैयारी कर रहा हूँ और अहोरूपमहो ध्वनि से मेरे खिलाफ मण्डल बँधने लगेगा यह आलोचना कभी कलमबंद न हुई। यों मैंने दिल में यकीन कर लिया था निराला जल्द भूल जायेंगे मगर वह बराबर लिखते रहे थे।

२ यह निबन्ध निरालाजी की असावधानी से नष्ट हो गया। इस तुलनात्मक अध्ययन में मैंने जी खपा डाला था।

ऐसे ही पंत की काव्यकला शीर्षक मेरा विशाल प्रबन्ध वीणा सम्पादक पं० कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ने खो दिया। यह प्रबन्ध 'निराला की काव्यकला' के साथ ही लिखा गया था।

प्रेम और मृत्यु शीर्षक निबन्ध ने रसूलपुरी जी की लापरवाही से काशी करवट ले ली उसमें मेरे अंग्रेजी साहित्य के छिटपुट अधकचरे ज्ञान की कुछ रेखाएं अङ्कित थीं।

और सबसे अधिक दुःख स्मृति काव्यकला शीर्षक प्रबन्ध के खो जाने की है। इसे दृष्टिकोण सम्पादक शिवचन्द्र शर्मा मेरे घर पर आ कर स्वयं ले गए थे। इस निबन्ध में मैंने षट शास्त्रों का अध्ययन प्रस्तुत किया था।

३ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में।

४

58 Nariyalwali Gali,
Lucknow
5 9 35

प्रिय बाजपेयि

आपका लेख मैं लिख रहा हूँ। पर एक काम उसी वक्त कर दिया था। आपकी कविता इसी बार माधुरी में निकलेगी मुझे श्री पाण्डेय जी ने ऐसा ही कहा था। उसे प्रथम पृष्ठ पर देते, पर कुछ बड़ी है इसलिए अन्यत्र देंगे। आपकी कविता मुझे बहुत पसन्द आई।

लेख[1] भी अच्छा है। दो या तीन जगह (बिहारी) भाषा की (यू पी की दृष्टि से) गल्तियाँ हैं।[2] मैं उनके कानून व्याकरण के अनुसार अगले पत्र में लिख दूँगा। यों आप बहुत अच्छी हिन्दी लिखते हैं। आपको हिन्दी में भी नाम करना होगा। क्योंकि यहाँ गुन्जायश ज्यादा है। आपको सिद्धि भी हो सकती है, मुझे ऐसा ही विश्वास हुआ।

मैं ६/७ रोज के अन्दर एक बार काशी जानेवाला हूँ। गया तो आपसे मिलूँगा। मैंने रायकृष्णदास जी के भारती भण्डार को 'गीतिका' दे दी है। उसी के सम्बन्ध में प्रयाग तथा काशी आनेवाला हूँ। पाण्डेय जी का पत्र आपको मिला होगा अगर उन्होंने फिर लिखा है। याद नहीं मैंने भी आपको इससे पहले, इसी सम्बन्ध में लिखा है या नहीं।

इसी १२ ता० के बाद मैं यह मकान छोड़ दूँगा।

आपका
—'निराला'

१ यह लेख 'काव्य प्रतिभा' पर था। एक हज़ार वर्ष के भारतीय साहित्य का निष्कर्ष इसमें सोदाहरण विवेचित हुआ था। सर्वसाधारण के लिए समान रूप से खुले हुए निराला के घर से यह भी रहस्यपूर्ण ढंग से गायब हो गया।

२ मैं श्रीमान् शरणसिंह शर्मा साहित्याचार्य के 'चाबुक' से असावधान न था। सरस्वती सम्पादक हों या लाला भगवानदीन या , मगर मेरी फरियाद कौन सुनता ?

तूने ऐ गुल्ची! इजाज़त बागवाँ से ली हज़ार
तोड़ने थे यों न गुल मुर्गे चमन के रूबरू।'

५

58 Narıyalwalı Galı
Lucknow
29 10 35

प्रिय जानकीवल्लभ

बहुत दिनो से आपको नही लिखा । यहाँ आने पर आपका पत्र मिला था, पर उलझनें थी, जिनसे आजकल करते-करते पूजा की छुट्टी आ गई, मुझे प्रतीक्षा करनी पडी । पाण्डेय जी के पत्र से मालूम हुआ आप घर गये हैं २०/२२ तक बनारस लौटेंगे । मैं इस समय मौरावाँ उन्नाव गया था एक साहित्यिक समारोह मे । एक पत्र मैंने पहले लिखा था, पर आलस्यवश भेजा नही ।

यहाँ पत्र के साथ जो कविता भेजी थी उसे मैंने अपनी एक रचना के साथ श्री नागर को दे दिया था उनके आग्रह पर। वह कविता यहाँ के एक सिनेमा पत्र मे प्रकाशित हुई है विजयाङ्क मे बनारस वह भेजा गया होगा, पर आपकी अदम मौजूदगी मे पहुँचने के कारण अगर न मिला हो तो लिखियेगा दूसरा अङ्क भेजवा दूँगा । कविता अच्छी है, शायद कुछ अशुद्ध छप गई है—स्मरण नही ।

माधुरी' मे जो' कविता आपकी इधर निकली उसकी एक पङ्क्ति गलत है, व्याकरण सङ्गत मालूम देने पर भी 'लाना' और पाना' क्रियाएँ एक auxıllary Verb के साथ ने-वर्जित चलती हैं । Present perfect tense मे सकमक क्रिया के साथ हमेशा नहीं' रहेगा, Past future tense मे न नहीं' दोनो रह सकते हैं, असमापिका क्रिया के पहले नही कभी नही होगा, न' रहेगा । (यो नही स्त्रीलिङ्ग है—नही की नहीं' सही ।)

---

१ लो, बोल उठे वन वन विहङ्ग !
खोलो तन मन के वातायन,
क्यों मुँदे-मुँदे, उन्मन उन्मन ?
मेघो मे भर आया जीवन,
प्रतिपल पुलकित सारङ्ग-अङ्ग !

—इसमे मेघो मे भर आया की जगह जाने कैसे पण्डित रूपनारायण जी पाण्डेय की आख बचाकर मेघो ने भर लाया' छप गया था, किन्तु गुरुदेव निराला ऐसे शोहरए-आफाक उस्ताद को कौन फाँकी दे सकता था ?

गल्तियाँ हम लोगों से भी होती हैं, निरुत्साह न हूजियेगा।

आपकी दो कविताएं 'माधुरी' में और आई थीं। एक पाण्डेय जी ने रखी है एक उन्हें कम अच्छी लगी, मुझे काफी अच्छी लगी, पर वीर और रौद्र का यह रूप कुछ दिनों बाद आप स्वयं बदल देंगे, इस विचार से मैं अपनी पसन्द के अनुसार आपको हिन्दी में रखना चाहता हूँ अगर आप भी पसन्द करेंगे।

पाण्डेय जी 'ज्वलित ज्वाल' नहीं पसन्द करते। पर आप धैर्य से सब देखते-सीखते आगे बढ़िये, इन लोगों की इसलाह से आपको हिन्दी में ढंग के साथ उतरते हुए सहूलियत होगी। सविशेष फिर लिखूंगा।

मैं यहीं रह गया मकान नहीं बदल सका। आरछा मैंने कोई किताब नहीं भेजी। गीतिका साल भर पहले से तैयार थी चाहता तो छपवा कर भेजवा देता।

मेरा प्रकाशन अच्छा नहीं, यह अच्छा है। समझदार आयेंगे तस्वीरें रखनेवाले नहीं।

'सखी' छप गई। 'प्रभावती' प्रेस जा रही है। दोनों मैं ही आपको एक साथ भेज दूंगा।

अँगरेजी खूब पढ़ते जाइये। 'काकली' मैंने पाण्डेय जी को पढ़ने के लिए दी थी, शायद उन्होंने खो दी, तब आपसे मँगवाई मुझे देने के लिये, दी भी। पर देखता हूँ मेरे पास से कोई दोस्त उठा ले गये। अगर होगी तो मैं तीन चार दिन बाद आलोचना लिखूंगा, ले लूंगा, नहीं तो आपको लिखूंगा।

आपका

—निराला

---

२ नित मनाते हो रहे प्रिय,
आलि, चिर-अभिमानिनी मैं!
सजल जलद-पटल हटा
विधु विधुर-अंक अशंक देखा,
निठुर जग की चोट-सी
मत अमृत की थी वक्र रेखा,
लोक लोचन श्याम तम
निजल जली सौदामिनी मैं!

को पाण्डेय जी ने खूब सराहा था, किन्तु—

जीवन रण में हों दीप्त भाल
लेकर कर में करवाल लाल,
यौवन घन उगले ज्वलित ज्वाल!

का "उद्दण्ड दण्डधर अतिप्रचण्ड ढंग उन्हें न रुचा न जँचा और १ १० ३२ की लिखी हुई यह कविता सदा सर्वदा के लिए अप्रकाशित रह गई। फिर शोरगुल-झगड़ा फसाद-वाली हुल्लड़बाज शैली में मैंने लिखना ही छोड़ दिया।

६[1]

58 Nariyalwali Gali,
Lucknow
23 11 35

प्रिय कवि,

फिर बहुत दिन लग गये आपको उत्तर देने में। यह भी उत्तर नहीं केवल सान्त्वना है। उत्तर फिर लिखूंगा क्योंकि बहुत लिखना है।

आपकी 'निराला पर लिखी कविता' 'ध्वनि पर लिखा लेख'[2] और 'सुधा' के नोट की आलोचना'[3] मिली। उसी वक्त सब पढ़ डाला था।

आपकी काव्य प्रतिभा 'निराला' की तारीफ में उसके 'तुलसीदास' के मुकाबले न्यून नहीं। पर मैं इसे कहीं भेज नहीं सकता न भेजवा सकता हूँ। इसे तारीख डाल कर, रखे रहिये। मेरी राय में प्रसिद्ध होकर यदि इच्छा हुई तो कहीं भेजियेगा।

---

१ 'तुलसीदास' का पहला अंश 'सुधा' में पढ़कर मैंने तत्क्षण उसी छन्द में निराला पर एक लम्बी कविता लिख डाली थी।

२ यह लेख भी निराला के घर से गायब हो गया।

३ 'सुधा' के एक सम्पादकीय नोट में निराला ने चुनौती दी थी कि संस्कृत के बड़े विद्वान भी कालिदास की कला की बारीकियों को नहीं समझते। मैंने महज अट्ठारह की उम्र में उस टिप्पणी का कठोर प्रतिवाद लिख भेजा था। तब तक निराला से साक्षात्कार नहीं हुआ था। मेरा प्रतिवाद 'सुधा' में नहीं छपा। साक्षात्कार के बाद निराला ने उसी प्रतिवाद की प्रतिलिपि मँगवाई थी।

४ गुरुदेव का आदेश सिर आँखों पर। मैंने बारह वर्षों बाद सन् '४७ में, कविवर श्री शमशेर बहादुर सिंह के अनुरोध पर उसे बम्बई से निकलने वाले 'नया साहित्य' में प्रकाशित कराया था। यों प्रसिद्धि की दिल्ली तब क्या, अब भी दूर है।

आपकी आलोचना के सम्बन्ध मे ही मुझे अधिक लिखना है, इसलिये दूसरे पत्र की आशा दिलाता हूँ।

ध्वनि' वाला लेख काफी अच्छा है। पर अच्छी ध्वनि के प्रदर्शन मे वैसा अश्लील उदाहरण[1] न देना था, और संस्कृत साहित्य म इधर के कवियों ने अश्लीलता मे ही कमाल दिखाया है मैं समझता हूँ। कुछ हो, यह भी मुझसे सम्बन्ध रखता है। मैं कह नहीं सकता, क्योंकि लेखक स्वतन्त्र है, पर मुझे अपने मित्रों म स्नेह की ही इच्छा रहती है।

आपका लेख माधुरी म इस बार नही प्रकाशित हुआ। अब के प्रकाशित होने वाले अङ्क म उसे गौरव वाला (प्रथम) स्थान मिला है,[2] पाण्डेय जी कहते थे।

मैंने आपके पास सिनेमा-समाचार' का अङ्क भेज देने के लिये फिर कहा था, अगर न गया हो तो जरूर लिखिये मेरे पास एक अङ्क है भेज दूगा। आपकी कविता शुद्ध सुंदर छपा है सिनेमा समाचार म।

— निराला'

---

१ सम्भवत आचार्य गोवर्द्धन की यह आर्या उदाहृत थी —

अवधिदिनावधिजीवा, प्रसीद जीवतु पथिकजनजाया
दुलर्भ्यवत्मशलो स्तनौ पिधेहि प्रपापालि।

संस्कृत म यह स्वस्थ, एव सम्पूर्ण श्री से शोभित है अश्लील नहीं। तभी महर्षि वाल्मीकि योगवासिष्ठ म भुशुण्ड म देवाधिदेव महादेव का वर्णन करवाते हैं —

पटपवर्थेणितमना यस्योच्चस्तसवस्तनो,
विलासिनी शरीरार्धे लता चूततरोरिव।

२ हिन्दी म यही मेरा प्रथम प्रकाशित लेख था जिसे माधुरी-सम्पादक प० रूपनारायण जी पाण्डेय ने प्रथम स्थान प्रदान किया था।

७

58, Nanyalwali Gali
Lucknow
11 2 36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

बहुत दिनो बाद आपको लिख रहा हूँ। आपके दो पत्रो पर भी निरुत्तर रहा। मैं मानसिक स्फूर्ति उत्तरोत्तर खोता जा रहा हू। केवल विश्वास रह गया है। नही कह सकता देवी वीणावादिनी की क्या इच्छा है!

इस पत्र के साथ इधर की लिखी 'सरोज-स्मृति' रचना आपके पास भेज रहा हूँ—मेरी पुत्री सरोजकुमारी की स्मृति पर लिखी गई है।

आपकी काकली की आलोचना के लिए कुछ और समय ले लिया है कारण आपका हिन्दी-कवि रूप भी साथ रखना चाहता हू पुन कुछ आवश्यक कामो से फुरसत पा लेना चाहता हू तब तक तुलसी कालिदास की प्रत्यालोचना म लिखा निबन्ध आपका मैंने दे दिया है पिछले महीने स्थानाभाव के कारण नही जा सका, अब वे सुना जा रहा है इस बार मेरा भी एक बहुत विवेचन मेरे गीत और कला शीर्षक से जा रहा है चार-पाच अङ्को म निकलेगा माधुरी म।

मैंने देखा हिन्दी के आलोचक परले दर्जे के उजबक हैं। जब तक मैं कला का आधुनिक रूप खोल कर न रखूगा वे कला-कला करके ही कला की इति करते रहेंगे। लेख देखियेगा।

जब तक मैं स्वय आप पर इच्छानुसार न लिख लूँ तब तक मुझ पर लिखा आपका कुछ प्रकाशित होना ठीक नही। यद्यपि यह सहृदयता के प्रतिकूल नही फिर भी लोकाचार इसके विरुद्ध है। आप मेरे विचार म बिहार और समस्त हिन्दी-संसार म शीघ्र अपना सुन्दर कवि रूप रक्खेंगे, पर हिन्दी की तरक्की कीजिये। जिन बिहारियो का डका पीटा जा रहा है मैं बहुत जल्द उनके समक्ष आपको भिड़ाना हूँ—खास तौर से दिनकर जी के मुकाबले दया जाय। एक आन्दोलन बिहारियो के माध्यम भान का खड़ा करके देखना

चाहता हूँ, डङ्का पीटनेवाले वाजदार ही हैं या समझदार भी। इस पत्र का मर्म खोलियेगा मत।[1]

---

१ बत्तीस वर्षों बाद ईमान के नाम पर मर्म खोलना पड रहा है, क्योंकि निराला के पत्रों का सम्पादन-संशोधन मेरा उद्देश्य नहीं। कहना न होगा, मैंने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व को गुम जाने देना पसद किया, किन्तु निराला को ऐसा अप्रिय और अवाञ्छनीय आन्दोलन कभी नहीं खडा करने दिया। एक तो बिहारियों के ही काव्य ज्ञान की छिछालेदर क्यों?

दूसरे बेनीपुरी जी या पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी का दिनकर जी के नाम का डंका पीटना या आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का अञ्चल जी का निशान उठाना यदि असाहित्यिक और अशोभन कार्य था तो निराला का यह आन्दोलन क्या होता?

सच तो यह कि मैं ऐसी आरोपित कीर्ति का कभी प्यासा न था। यथार्थ के विरुद्ध अतिशय विनम्रता का विश्वासी भी नहीं। बीस बरस की उमर में भी मुझे अपनी सीमाओं का सम्यक् बोध था। रंग बिरंगी चिनगारियाँ छिटकाती हुई यह आतिशबाजी मेरे ठंडे दिल को कैसे भाती?

पीछे मुझे इस अप्रशस्त प्रशस्ति से बचाव का एक यही सही रास्ता मालूम दिया। निराला की बात ('जब तक मैं स्वयं आप पर इच्छानुसार न लिख दूँ तब तक मुझ पर लिखा आपका कुछ प्रकाशित होना ठीक नहीं।') काट कर मैंने उन पर एक सौ पृष्ठों का प्रबन्ध—निराला की काव्यकला' लिख कर छपवा डाला।

प्रचार और विज्ञापन से नए साहित्य का जो सब जोरोजबर हुआ उधर मेरा मुतलक ध्यान न था। मैंने दो गीत रच कर निराला को जतलाया —

सिंधु मिलन की चाह नहीं, बस
मुझको तो बहते जाना है!
दो पुलिनों से बँध कर भी,
कितनी स्वतन्त्र है जीवन धारा!
रोक रखेगी मुझको कब तक,
पत्थर-चट्टानों की कारा?
अपनी तुङ्ग तरङ्गों का हो,
रहता इतना बडा भरोसा,

आपके पत्र के और सब विषय भूल गये हैं, लेख और पत्र हैं तो, पर उठ कर उन्हें खोज कर पढ़ना मेरे लिये बड़ी मिहनत का काम है। ऐसा कष्ट मैंने कभी नहीं उठाया। मैं समझता हूँ, एक ही विषय उत्तर देने के योग्य है। अन्य सब सहृदय होकर हृदय में ही लीन हो चुके हैं। यह कालिदास के इस श्लोक का अर्थ है, जिसका मतलब मेरे विचार से मल्लिनाथ को भी नहीं सूझा। न संस्कृत के पण्डित मेरे मित्र श्री वासुदेव शरण जी अग्रवाल शास्त्री एम० ए० एल-एल बी० को, जिन्होंने कई साल पहले 'माधुरी' के विशेषाङ्क में इसी श्लोक के आधार पर (कालिदास पर लिखते हुए) अलका में सब समय सब ऋतुओं की छाया कर दी है। आपने मुझे सहृदय होकर समझाने के लिए लिखा है।

यह ठीक है कि भाषा की ओजस्विता कभी कभी क्रोध की परिचायिका होती है, पर यह भ्रम है सत्य नहीं। मैं तो आपको छोटे भाई मित्र की ही तरह देखता हूँ। दूसरों पर भी वैर नहीं रखता। पर न जाने क्यों मुझे वैर ही दूसरों से मिला।

लौट-लौट कर नहीं देखता
मुझको तो बहते जाना है!
राह बनाकर बढ़ना पड़ता,
इसीलिए रुक रुक चलता हूँ!
झुकना शील स्वभाव,
शिलाओं को पथ की चञ्चल, छलता हूँ!
आसपास में औरों के
मेरी भी एक धार लहराए—
यह विचारने की कब फुर्सत,
मुझको तो बहते जाना है!

(२)

मेरी शिथिल, मन्द गति ही क्यों
गिरि, वन सिंधु धार भी देखो!
पीले पत्तों में, वसन्त के—
लाल प्रवालों का दल सोता,

अप्रिय सत्य मे सत्य को छोडकर यदि वे अप्रियता को ही देखें तो मैं हृदय से अपने को निर्दोष ही पाता हूँ।—और अप्रिय सत्य के प्रयोग मुझे इसलिए करने पडते हैं कि लोग सत्यप्रियता के नाम से असत्य या अर्द्धसत्य का पल्ला पकडते हैं।

आपने "सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम्' मे 'वधूना' के द्वारा, सभी फूलो को, भिन्नरुचि के अनुसार लगाने की युक्ति दी है। युक्ति अच्छी है। पर दूसरा विरोध इससे भी जोरदार और साथ ही पायेदार रहता है। वह यह कि एक ही समय घोर जाडा और घोर गर्मी नही पड सकती इसलिये ऋतु प्रभाव से, धीरे धीरे खिलनवाले जाडे के 'लोध्र' और गर्मी के 'शिरीष एक साथ बगीचे मे खिले नही मिल सकते। स्वर्ग मे छहो ऋतुओ का एक साथ

काले जड पाषाणों मे
रहता उज्ज्वल जीवन का सोता
आँखो का खारा जल ही क्यो,
उर का मधुर प्यार भी देखो!

बरसा कर अपना सारा रस,
नि स्व हो गई नीरव माला,
घन वन रँग, रुचि, मधु सौरभ भर
कलियो ने खुद को खो डाला,
ऊपर सूनी डाली ही क्यो,
नीचे हरसिगार भी देखो

नभ के शून्य नयन भर जाएँ
तो अवनी का ताप भला रे!
शीतल हो जो हृदय किसी का,
तो कोई ले मुझे जला रे!
सोने का सपना ही क्यों,
तुम अपना कण्टहार भी देख

—

आपके पत्र के और सब विषय भूल गये हैं। लिखा और पत्र हैं तो, पर उठ कर उन्हें खोज कर पढ़ना मेरे लिये बड़ी मिहनत का काम है। ऐसा कष्ट मैंने कभी नहीं उठाया। मैं समझता हूँ एक ही विषय उत्तर देने के योग्य है। अब सब सहृदय होकर हृदय में ही लीन हो चुके हैं। यह कालिदास के इस श्लोक का अर्थ है जिसका मतलब मेरे विचार से मल्लिनाथ को भी नहीं सूझा न संस्कृत के पण्डित मेरे मित्र श्री वासुदेव शरण जी अग्रवाल शास्त्री एम० ए० एल एल बी० को जिन्होंने कई साल पहले 'माधुरी' के विशेषाङ्क में इसी श्लोक के आधार पर (कालिदास पर लिखते हुए) अलका में सब समय सब ऋतुओं की छाया कर दी है। आपने मुझे सहृदय होकर समझाने के लिए लिखा है।

यह ठीक है कि भाषा की ओजस्विता कभी-कभी भाव की परिचायिका होती है पर यह भ्रम है सत्य नहीं। मैं तो आपको छोटे कवि मित्र की ही तरह देखता हूँ। दूसरों पर भी कर नहीं रखता। पर न जाने क्यों, मुझे कर ही दूसरों से मिला।

लौट-लौट कर नहीं देखता
मुझको तो बहते जाना है !
राह बनाकर बढ़ना पड़ता,
इसीलिए रुक रुक चलता हूँ !
झुकना शील स्वभाव,
शिलाओं को पथ की, चञ्चल, छलता हूँ !
आसपास में औरों के
मेरा भी एक धार लहराए—
यह विचारने की कब फुर्सत,
मुझको तो बहते जाना है !

(२)

मेरी शिथिल, मन्द गति हो क्या
गिरि, वन सिन्धु धार भी देखो !
पीले पत्तों में, वसन्त के—
लाल प्रवालों का दल सोता

अप्रिय सत्य मे सत्य को छोडकर यदि वे अप्रियता को ही देखें तो मैं हृदय से अपने को निर्दोष ही पाता हूँ ।—और अप्रिय सत्य के प्रयोग मुझे इसलिए करने पडते हैं कि लोग सत्यप्रियता के नाम से असत्य या अर्द्धसत्य का पल्ला पकडते हैं।

आपने "सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम" मे 'वधूना' के द्वारा, सभी फूलो को, भिन्नरुचि के अनुसार लगाने की युक्ति दी है। युक्ति अच्छी है। पर, दूसरा विरोध इससे भी जोरदार और साथ ही पायेदार रहता है। वह यह कि एक ही समय घोर जाडा और घोर गर्मी नही पड सकती इसलिये ऋतु प्रभाव से, धीरे धीरे खिलनेवाले जाडे के 'लोध्र' और गर्मी के शिरीष एक साथ बगीचे मे खिले नही मिल सकते। स्वर्ग मे छहो ऋतुओ का एक साथ

काले जड पाषाणो मे
रहता उज्ज्वल जीवन का सोता,
आँखों का खारा जल ही क्यो,
उर का मधुर प्यार भी देखो।
बरसा कर अपना सारा रस,
निःस्व हो गई नीरद माला,
वन वन रँग, रुचि, मधु सौरभ भर
कलियो ने खुद को खो डाला,
ऊपर सूनी डाली ही क्या,
नीचे हरसिंगार भी देखो !
नभ के शून्य नयन भर आएँ
तो अवनी का ताप भला रे।
शीतल हो जो हृदय किसी का
तो कोई ले मुझे जला रे !
सोने का सपना ही क्या,
तुम अपना कण्ठहार भी देखो।

—'रूप-अरूप'

होना माना गया है¹ पर वह काल्पनिक है, यहा इसी का आश्रय टीकाकारो ने तथा सस्कृत के विद्वानो ने लिया है, पर यह कालिदास की कला को न समझना है—जसा कि उन्होने 'मेघ' म ही लिखा है, आप जानते हैं,—'दिङ्नागानां पथि परिहरन स्थूलहस्तावलेपान्" (दूसरा अथ —रास्ते म दिङ्नाग-जसे पण्डितो के हाथ की भद्दी लीपापोती (स्थूल काव्य कला) छोडते हुए)। और आपकी ही युक्ति के उत्तर म कहूँगा कि ऋतु ऋतु का एक ही शृगार सभी स्त्रियाँ कर सकती हैं। अस्तु दूसरे का अथ —

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा पादपा नित्यपुष्पा
हसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्य ।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्ना प्रतिहततमोवृत्तिरम्या प्रदोषा ॥

इसके अथ से पहले इतना जान लेना आवश्यक है कि केवल यक्ष विरही है और सब वहाँ अपनी अपनी प्रिया से मिले हुए। इस श्लोक म शुरू से अखीर तक लुप्तोपमा है।

---

१ स्वग म ही क्या? महाकवि माघ ने तो रावण के ऐश्वय का वणन करते हुए उसी क नगर मे सदा सवदा क लिए छहों ऋतुओं के घर ससार बसा लेने का अलौकिक चित्र अङ्कित किया है

तपेन वर्षा शरदा हिमागमो
वसन्तलक्ष्म्या शिशिर समेत्य च
प्रसूनक्लृप्तिं दधत सदर्तव
पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बिता ययु ।

इतना ही नहीं कालिदास ने अलका म हर रात चाँदनी छिटकाने के लिए भगवान शङ्कर का सहारा लिया है कि उनके भाल चन्द्र की चन्द्रिका अलका के महलो को सफेदी करती रहती है — 'बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।'

किन्तु माघ ने पूर्णिमा के चाँद को ही रावण का नमसचिव बना लिया है —रावण क अन्तःपुर की मानिनी रमणियो को चाँदनी की मदिरा पिला कर विलास के लिए उत्सुक कर देने की नौकरी पर रखवा लिया है —

कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ।

यश कहता है —जहाँ पागल (भ्रमर यानी प्रणयी, प्रणयी की तरह मुखर=भ्रमरमुखर) भौंरो से (भ्रमर-मयुक्त हो कर) मुखर पादप (पुरुष) नित्यपुष्प (युवतिजना) हो रहे हैं, हसश्रेणी (तारीफ करने वालों की मण्डली या हसा की कतार से) निर्मित रशना (वृत्त या करधनी वह करधनी जिसमे हसो की कतार बैठा दी गई है, या हसो की श्रेणी में आने वाले, क्षीर-नीर-विवेक रखने वाले सत्य प्रशसकों की मण्डली से घिरी), नलिनी (स्वरूपा कामिनियाँ) नित्यपद्मा (नित्य पद्म पुरुषा¹) हैं,—(उनके हृदय पर उनके प्रिय हैं।)

इन दोनो पक्तियो म जैसा स्त्री-पुरुष-सयोग दिखाया गया है, वैसा एक-एक पक्ति मे भी आ सकता है और शब्द रचना साबित करती है कि कालिदास का यही भाव है—जहाँ मत्त भ्रमर-भाग से मुखर पादप (पुरुष) नित्य पुष्पधारण किय रहते हैं (खुश हैं—ध्वनि) और नलिनी (शय्याएँ) हसा की कतार वाली करधनी पहन हुए पदमस्वरूपा² स्त्रियो से नित्य युक्त खिली हुई हैं—हस श्रेणी रचित रशना नित्यपदमा' हो रही हैं (खुश हैं—ध्वनि)।

देखिये, कसा घटता है !—यही कालिदास की एकमात्र कला है जो अन्यत्र नहीं मिलती। (मैंने अनेक उदाहरण इनके ऐसे निकाले हैं, जहा अलङ्कार के भ्रम विशेष के लोप से दूसरा सहज अर्थ प्रतिभात है।)

आगे देखिये —वेला स्त्रीलिङ्ग है और शिखी पुलिङ्ग, फिर ज्योत्स्ना स्त्रीलिङ्ग है और प्रदोष पुलिङ्ग। पहले कालिदास रूप म स्त्री पुरुष सयोग दिखा चुके हैं—उनकी प्रसन्नता जाहिर कर चुके हैं, अब स्वर म दिखा रहे हैं—वही सयोग, फिर भाव म, जो और सूक्ष्म हो गया है।

---

१ अप्रसिद्ध चाहे जितना हो, किन्तु 'पदम' शब्द पुलिङ्ग भी है —
भाति पदम सरोवरे।

अमरकोश का प्रमाण प्रत्यक्ष है —
वा पुसि पदम नलिनमरविन्दमहोत्पलम।

२ यहाँ पद्मा का सभवत पद्मिनी के अर्थ मे निराला प्रयोग कर रहे हैं। अपनी कविताओ म तो बहुत बार कर चुके हैं। पद्मा' शब्द की व्युत्पत्ति है —पदमम अस्ति अस्या इति पदमा।

यहां 'भवन शिखी' द्रष्टव्य है। यक्ष भवन शिखी नहीं। कहता है—मकान के मयूर हमेशा कलाप से चमकते हुए (क्योंकि सुख हैं) केका से उत्कण्ठित रहते हैं (केका का योग है, यह भीतरी स्त्री रूप मोर से संयुक्त किया गया है और बाहरी स्त्री रूप से मिलने का भाव उत्कण्ठा शब्द से द्योतित है। पुनः यह उत्कण्ठा शब्द अनिश्चयात्मक नहीं, मिलने की निश्चयात्मकता लिये हुए है।)

प्रदोष (शब्दाथ के भीतर, धातु भाव से पैठिये कैसा रक्खा है)—सान्ध्य काल, तमोवृत्ति से प्रतिहत होकर रम्य है (तमोवृत्ति शब्द भी देखिये, इसके ये मानी नहीं कि यहां शाम का अंधेरा नहीं होता नहीं, तमवाली वृत्ति जो दुखदा है यहां नहीं,) कारण नित्य ज्योत्स्नारूपिणी स्त्रियां (घर घर) विराज रही हैं। प्रदोष-पुरुष नित्यज्योत्स्ना ज्योति युवतियों से युक्त हो कर प्रतिहत-तमोवृत्ति रम्य हैं। नित्य-ज्योत्स्ना ज्योति होने के कारण तमवृत्ति प्रतिहत है इसलिए प्रदोष रम्य है।

अधिक और क्या लिखूं, आप अच्छी तरह मनन कर लीजिये। और बहुत कुछ कहता पर सोचने और मिला लेने के लिये छोड दिया है। लिखियेगा कैसा लगा। मुझे समय नहीं आधी संस्कृत भूल भी गया हूं फिर भी और बड़ी बड़ी बातों का आविष्कार किया है मैंने जहां गीता की टीका में शङ्कर भी कम वान्त हैं। मैं इसलिये जबान नहीं खोलता कि हिन्दी में ही कूडा नहीं साफ कर पाया कौन फिर उधर जल्द उलझे! मुझे आशा है, आप इसे सहृदय भाव से देखेंगे और अपना राय १८ दिन के बाद भेजेंगे। मैं इलाहाबाद जा रहा हूं। वहां १०/१२ दिन रहूंगा।

मैं फिर लिखता हूँ आप अपनी साफ राय दीजियेगा। क्योंकि मैं आपको जिस संस्कृत रूप में देखना चाहता हूं वह अनात्मीय नहीं। अशास्त्रीयता से ही मुझे घृणा रही है। मर इस अर्थ को मिलाइयेगा तो पूरा का सब समय चिन्त की आर्य-आप राय लिखियेगा मिलती है या नहीं। पुनः पूर्व पक्ष से यह सम्बद्ध भी किस तरह रहता है। जो कालिदास हस्त लीलाकमलम में ऋतुओं का वर्णन गुथर क्रम रखते हुए भी ममझने का धोखा दे जाते हैं वे बाद को घाट ही देंगे, यह रमुक्ति है। मैं बानी में आपसे कहता था कि बाद को विचार किया है, पर मुझे मरा करना पड़ता है अब देखिए।

१ एक बार मानमन्दिर में महाराज गायन (प्रसाद जी के घर) जाते समय निराला ने मुझे अपने संस्कृत साहित्य के गहन ज्ञान से अभिभूत किया

आप जब तक उर्दू न पढ़ें, उर्दू के किसी शब्द के नीचे बिन्दी न लगायें। न वैसा उच्चारण करें। जल्द प्रगति कीजिए, बहुत पढ़ना और बहुत आगे आना है। फिर और बातें लिखूँगा।

आपका
निराला

था। मैं उन्हें टकटक देखने लगा था तभी, विश्वनाथ की सँकरी गली में, हमारे बीच से एक साँड़ निकल कर सीधे सरस्वती फाटक की ओर चला गया था।

उस दिन गीतगोविन्द की वसन्तपरक व्याख्या, कर्पूरस्तव, सौन्दर्यलहरी आदि के साथ साथ मेघदूत के उक्त श्लोक पर भी बहुत कुछ कहा सुना था। निराला टकसाल चला चुके थे, बात बड़ी टकसाली करते थे उसे टाल डालने की हिम्मत कहाँ थी! फिर वह हौसला अफज़ाई करनेवालों में भी अव्वल थे।

मैं निराला के शब्दों को ही दुहराए देता हूँ —

'आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है। अतः साहित्य के विकास का श्रेय अनेक अंशों में इसे ही प्राप्त है। हृदय का महत्त्व लेकर निकलने वाली कविता भी यदि विचार और शृङ्खला से सम्बद्ध नहीं, तो शैशव-प्रलाप की तरह भावोच्छ्वास मात्र है उससे साहित्य को कोई बड़ी प्राप्ति नहीं हो सकती। काव्य साहित्य के बड़े बड़े आलोचक ऐसा ही कहते हैं, और पहले भी कह चुके हैं। एक उदाहरण लीजिए —

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्ध
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री
चूडापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्

(मेघदूते कालिदासस्य)

अर्थात् वहाँ अलका में वधुओं के हाथ में लीला-कमल रहता है केशों में कुन्द की नई कलियाँ। लोध्र पुष्पों के पराग से उनके मुखों की श्री पाण्डुता लिए हुए है। उनके चूडापाश में नया कुरवक खोंसा हुआ है सुन्दर कानों में शिरीष और माँग में (हे मेघ!) तुम्हारे आगम से पैदा हुआ कदम्ब पुष्प।

इस वर्णन से एकाएक हाथ में लीला कमल लिए, केशों में कुन्द की कलियाँ चुने, लोध्र रज मुखों में लगाए, चूडापाश में नया कुरवक और कानों में शिरीष खोंसे और माँग पर कदम्ब लगाए हुए अलकापुरी की सुन्दर वधुएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

जो आलोचक नहीं वह इस पद्य का अन्तमहत्त्व न समझेगा फूलों से उज्ज्वल नारियों का विकच सौन्दर्य देख कर कालिदास को धन्य कवि, धन्य कवि कह कर केवल धन्यवाद देगा। उसे फूल ही से महाकवि कालिदास के हृदय में मिला संयुक्त कष्टकाधार मस्तिष्क—जिस पर यह कोमल कला टिकी हुई है—कदापि अनुभूत न होगा। वह चौंकेगा, जब आलोचक एकाएक पूछेगा क्यों भाई कुन्द तो हेमन्त ऋतु का फूल है वर्षा में वह खिलता ही नहीं, फिर महाकवि कालिदास ने मेघ से जो आषाढ़ के पहले दिन रवाना होता है कैसे कह दिया कि अलका की वधूए केशों में कुन्द की कलियाँ चुन रखती हैं?

केवल हृदय को काव्य में महत्त्व देनेवाला वह मनुष्य तब कालिदास पर निश्चय ही दोषारोप करेगा। दोष एक ही नहीं लोध्र जाड़े में कुरवक वसंत में और शिरीष ग्रीष्म में खिलते हैं। फिर एक ही समय एक साथ इतने फूल अलका की सुन्दरियों को कैसे प्राप्त हो जाते हैं? केवल कमल और कदम्ब वर्षा में मिलते हैं।

जब तत्त्व किसी आलोचक का सुनाया हुआ उसकी समझ में आएगा, तब वह देखेगा कालिदास ने यहाँ मस्तिष्क से काम लिया है। कमल का यद्यपि [illegible] में खिलना जारी हो जाता है तथापि जल पूर्ण शरद् ऋतु में उसका पूरा विकास होता है हेमन्त के हिम से मुरझाने से पहले। इसलिए महाकवि कालिदास वर्षा के बाद वाली शरद् ऋतु से श्रीगणेश कर [illegible] ऋतुओं के पुष्प [illegible] में अलका की रूपवती कन्याओं को भूषित करते हैं। शरद् में हाथ में कमल दे कर हेमन्त में कुन्द की कलियाँ गूँथ कर शिशिर में लोध्र पुष्प की रज द्वारा वसन्त में कुरवक खोंस कर ग्रीष्म में शिरीष और वर्षा में कदम्ब लगा कर।

[illegible] का क्रम देखिए, कितना अच्छा है। इस प्रकार महाकवि के हृदय के साथ मस्तिष्क का परिचय मिलने पर कविता कितनी खिल जाती है। कालिदास [illegible] पर एक साथ इतने फूलों का भार नहीं रखते, सौन्दर्य [illegible] के इतने कोमल कवि हैं, एक ही पुष्प प्रति ऋतु में अलका की सौन्दर्य [illegible] है। [illegible] में स्पष्ट हो जाता है कि [illegible] ने [illegible] में [illegible] कर [illegible] है।

[illegible] आलोचकों ने की नहीं होगी आलोचकों ने यह सौन्दर्य [illegible] हृदय [illegible] एक साथ इतने फूलों का [illegible] भार [illegible] [illegible] ही रहा।

[illegible] आलोचना [illegible] भी [illegible] का कारण है। [illegible] कालिदास [illegible] है जिसमें [illegible] सौन्दर्य और [illegible] है।

८

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

एक लम्बा पत्र जिसमें कालिदास के 'यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा' वाले श्लोक का अपना अर्थ लिखा है, यहाँ आने के एक दिन पहले आपके पास भेजा था, लखनऊ से। साथ 'सरोज स्मृति' मेरी लम्बी कविता थी।[1] पत्र आपको मिला होगा।

यद्यपि मैंने उत्तर दस पन्द्रह दिन ठहर कर लिखने के लिए लिखा है जब तक मैं लखनऊ लौटूं, फिर भी आपकी राय जानने की इच्छा हो रही है कि उस श्लोक का वह अर्थ आपको जँचा या नहीं। लिखियेगा।

मैं यहाँ दस दिन के करीब रहूँगा। प्रसन्न हूँ। एक फार्म 'प्रभावती' का छपना बाकी था, लौटकर दोनों किताबें—सखी + प्रभावती'—भेजूँगा। यहाँ निरुपमा दे रहा हूँ। ३/४ महीने में यहाँ से भी दो पुस्तकें निकल जायँगी।

१७ २ ३६

आपका
'निराला"

---

१ निराला की हस्तलिपि में वह उतनी बड़ी कविता और बड़ी लगती थी। विधि की विडम्बना ऐसी कि होस्टल में मैं एक बनजारे की जिन्दगी गुजारता था। ऊपर बचपना ऐसा कि ऐरे गरे नत्थू खैरे किसी को भी ललक कर निराला के पत्र दिखलाया करता था। किसी की दुरभिसन्धि को ताड़ जानेवाली दूरदर्शिता कहाँ थी? फिर क्या, एक दिन उसे पढ़ते-पढ़ते नींद आ गई और लक्ष्य से न चूकनेवाला कोई हाथ उसे उड़ा ले गया।

'सरोज स्मृति' पर विद्वद्वर श्री दामोदर ठाकुर ने 'The ANIMA figure in the poetry of Nirala"—शीर्षक निबन्ध में अपना अभिमत यों प्रकाशित किया है

" I have intentionally not spoken of a poem like सरोज स्मृति That would show the highest level at which per onal feel ing and the classical imagination fuse in his poetry because one should speak of it singly The daughter image becomes an angelic guide a brief existence whose the meaning shines forth from it But even in shorter, simpler less powerfully felt and less commandingly expressed poems, it is the union of traits found together only in the best poets that characterises Nirala's poetry

—The constant pursuit
Page, 52.

६

58, Nariyalwali Gali
Lucknow
31 3 36

प्रिय जानकीवल्लभ जी

मैं २७ मार्च को प्रयाग से लौटा। इसलिए आपको प्रतीक्षा का कष्ट अधिक उठाना पड़ा होगा। पर अब जल्द जल्द आपको लिखने की कोशिश करूंगा।

अभी मैं यहाँ के कामों से फुर्सत नहीं पा सका। पत्र तीनों देखे और सर सरी दृष्टि से श्रीहर्ष-कालिदासवाला लेख।

कटु आलोचना मेरा उद्देश्य नहीं। हो भी जाय अगर कहीं कटुत्व तो उसे रंग मानता हूं। कहने के लिए दुनिया है।—'मुंह स्वाने हजार'—मेरे आविर्भाव में पन्त की रचना है।[1]

---

१ १६ [illegible] फरवरी महीने में निराला ने मतवाला-सम्पादक श्री रामशङ्कर [illegible] को लिखा था

[illegible] जी [illegible] और [illegible] आपको [illegible] मुंह [illegible] । [illegible] आप दूसरों को [illegible] [illegible] [illegible] आपने [illegible] और [illegible] मेरा कुछ भी [illegible] मैं [illegible] । [illegible] आप [illegible] मैं [illegible] आप [illegible] बताता।

[illegible] आप [illegible] ! [illegible] ?

[illegible] ?

—"निराला"

---

२ जनवरी, १९३१ को अल्मोड़े से श्री सुमित्रानन्दन पंत ने निराला को ब्रजभाषा में लिखा था —

छमहु बन्धु, अपराध !
दरसन को कछु मान तुम्हें, प
हमें मनावन साध !!
व्याध भयो तव रोष, मौन चिर
लागत शर सौं गात,
मो मन को कुरङ्ग सुम समुत्सत,
प यह कोमल गात !

कुशल मेरो मानव मन,
जग जीवन अगम, अगाध,
कौन स्नेह सौं पार लगहै
मो लगि सोच असाध !
क्षुद्र हृदय को नारो मेरो,
अहंकार भयो बाँध,
कसे मिलिहै प्रेम सिन्धु मे,
बहि बहि मुक्त, अबाध !
तुम्हें मनावन बन्धु ! पठाई
मृदु ब्रजबाला आज,
चतुर बतावत सब जग याको,
समुत्सुक दूती-काज,
पातो पाइ तुम्हारो देहौं
याको आदर दान,
देखौं, या जुग को राधा को
मिटत पाइहै मान ?

इसका उत्तर निराला ने लखनऊ से ६ जनवरी, १९३१ को बँगला में दिया था —

बन्धु हे—

भालो बासी, भालो बासियाछो,
नूतन किछु करो नाइ,
आमि मने-मन जपियाछि,
द्वारे तुमि आसियाछो ताई !

सहियाछि आमि जतो व्यथा
  तोमाय वासिते गिया भालो,
तोमार हृदये उठियाछे
  ततोइ होइया ताहा कालो।
आमि करि नाइ कृपणता
  तोमाय करिते सब दान
जानियाछि यदिओ जीवने
  मोर चेये तुमिइ महान।
तोमार नयने राखि आखो
  जीवनेर सुधा करि पान,
छाड़ाये सकल दिक सीमा
  तोमाते मिलाये जाबो प्राण।
    पथ जाहा जानि आमि, बोलि,
      आगुन द्विगुण मने जालो,
    जतोइ जलिबे देह मम
      ततोइ पाइबे तुमि आलो।
गाहिया उठिबे तव प्राण
  प्रभातेर आलोकेर गान,
सकलेर जीवनेर धारा
  तोमाते लभिबे अवसान।

बंधु

आमि एइ भाषाय प्रथम कविता लिखिया छिलाम,
ताइ इहातेइ तोमार अभिनन्दन करिलाम।

तोमार—

सूर्यकान्त।

मैं उन दिनों एक छात्रमात्र था। इस स्तर के दर्प और दम्भ का एक अनाम आतंक तो छा जाता था मेरी सुकुमार मति पर, किन्तु मुझे यह उच्चता की ग्रन्थि बहुत अच्छी नहीं लगती थी। मैं तब तक भवभूति और पण्डितराज के दर्प को भी नहीं समझ सका था।

गाने में सँभलने की कोशिश करूँगा।[1] पर सत्य और सुंदर रूप से प्रकट होता रहता है, यह एक उक्ति है, अतः "तब प्रभु मोसम आन बने हैं" मुझे अच्छा लगता है।

रवीन्द्रनाथ की नकल बनूँ, मेरी इच्छा नहीं, मैं मैं हूँ सूर्यकान्त रवीन्द्रनाथ नहीं,—वास्ते 'इन्द्र' और 'नाथ' की गुरुता चाहेगा ?

उन्हीं दिनों आचार्य सनेही के 'सुकवि' में गोरखपुर कचहरी के किसी महेशप्रसाद मुख्तार 'रसिक' का छायावाद पर लिखा हुआ एक धारावाहिक लेख प्रकाशित हो रहा था। रसिक मुख्तार ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदीवाला रास्ता अख्तियार किया था। वह भी कविता नहीं समझते थे, आलोचना लिखकर अपने पाण्डित्य की बखिया ही उधेड़े जा रहे थे, किंतु निराला उसे नजरअंदाज न कर सके। सनेही जी को पत्र लिखकर मना किया कि उस बकवास का प्रकाशन बंद हो। गधा घोड़ा नहीं हो सकता।

इस मुहावरे पर मुख्तार साहब ने तिनककर निराला पर मानहानि का मुकदमा दायर करने की धमकी दी। सनेही जी के सुपुत्र पं० मोहन प्यारे शुक्ल ने निराला को सूचित किया। निराला ने जवाब में एक लम्बा-सा खत लिख भेजा। दोनों पत्र 'सुकवि' में प्रकाशित हुए थे।

+ + +

निराला को पत्र लिखते समय अवचेतन में कुछ ऐसी ही पूर्वस्मृति की क्षीण रेखाएँ थीं, फिर तुरत-तुरत 'पल्लव' और 'पन्त' पन्त या, आचार्य चन्द्रबली पाण्डे व दो भक्त (गोरखपुर, आजमगढ़ के) छात्रों की करतूतों से उत्तेजित होकर मैंने लिख दिया था कि लोग कहते हैं आप बहुत कटु आलोचना लिखते हैं।

१ सूर, मीरा और चण्डीदास के कुछ पद उद्धृत कर मैंने पूछा था आप ऐसे गान क्यों नहीं लिखते ? मैं उन दिनों सेवा और मोहिनीमारथ के गीत गुनगुनाता रहता था अज्ञानवश ढिठाई कर बैठा आपकी कल्पना रवीन्द्रनाथ के समान क्यों नहीं है ?

आपने कविता[illegible] लिखा है—कैसे लिखा जाता है [illegible] आता है? Strict grammar के अनुसार [illegible]वाचक [illegible] (को ?) भाववाचक [illegible] लिए [illegible] है।

[illegible] कवि [illegible]वाचक है, कविता [illegible] भाववाचक। कवियों ने कविता कुमारी को personify किया है [illegible], पर [illegible] कविता [illegible] भाव [illegible] है? [illegible] गलत [illegible]। [illegible] पर [illegible]। (—[illegible] आदत से आती है।)

आपका

निराला

बहुत नहीं लिख सका। क्षमा [illegible]।

नि०

---

१ संस्कृत में काव्य और कविता का समानार्थक प्रयोग सर्व विदित है। वहाँ काव्य या कविता कवि का भाव नहीं कवि का कर्म है। पातञ्जलि के— गौः शुक्लः चलो डित्थ इत्यादि चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः के विवरण के क्रम में मम्मट ने मीमांसकों का मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि गौ की भांति शुक्लत्व चलत्व और डित्थत्व की भी जाति ही व्यवहार का कारण है। नैयायिक लोग तो घटत्व [illegible] का घड़ेपन से प्रयोग करते ही हैं। मैंने संस्कृत के संस्कारवश ऐसा लिख दिया होगा। संस्कृत में अंग्रेजी व्याकरण का अनुसरण ढूंढना व्यर्थ है। हिन्दी में संज्ञाओं का भेद अंग्रेजी व्याकरण के अनुकरण पर है।

१०

58, Nariyalwali Gali,
Lucknow
17 4 36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आप पर मेरी पूरी नजर है। सखी और प्रभावती मेरे पास रखी हैं, पर मैं भेज नहीं सकता। क्योंकि कांग्रेस भर में मेरा अर्जित अर्थ खर्च हो गया है। आप आठ आने के टिकट भेजिये या मुझे वरक्ष भेजने के लिये लिखिये।[1]

आपका
निराला

---

१ 'कला की रूपरेखा' नामक कहानी में इन्हीं दिनों की चर्चा है—

एक मनुष्य, उम्र पैंतालीस के लगभग, भौंरे का रंग, खासा मोटा तगड़ा, एक लंगोटी से किसी तरह लाज बचाये हुए उतने जाड़े में नंगा बदन दौड़ा हुआ, निराला के पास आया और एक साँस में इतना कह गया कि वह कुछ न समझे। जब टूटी फूटी हिंदी में पूरे उच्छ्वास से वह फिर बोला तब मतलब उनकी समझ में आया कि वह हर तरह लाचार है, दिन तो किसी तरह धूप खाकर भीख माँग कर पार कर देता है, पर रात काटे नहीं कटती। जाड़ा लगता है। और निराला अधिक विचार न कर सके अपनी एक मात्र मोटी खादी की चादर उतारकर उसे दे दी।

वही सन् ३६ के मार्च महीने में होने वाले कांग्रेस के लखनऊ वाले अधिवेशन के अवसर पर स्वयंसेवकों में भरती हो गया था।

कांग्रेस खत्म हो गई। निराला शाम को कैसर बाग में टहल रहे थे, तभी वह तेज कदम आता देख पड़ा, निराला खड़े हो गए। पास आकर उसने कहा

अब गरमी बहुत पड़ने लगी है। देश जाना चाहता हूँ। रेल का किराया कहाँ मिलेगा? पैदल जाना चाहता हूँ।

निराला ने बीच में बात काटकर कहा—

क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी भी मदद नहीं कर सकते।'

उसने कहा—'नहीं कांग्रेस का यह नियम नहीं है। मैं मिला था। मुझे यह उत्तर मिला है। खैर मैं भीख माँगता खाता पैदल चला जाऊँगा। पर गरमी बहुत पड़ती है पैर जल जाते हैं अगर एक जोड़ी चप्पल आप ले दें।'

निराला पर जैसे वज्रपात हुआ। वह लज्जा से वहीं गड़ गए। तब उनके पास केवल छह आने थे। उससे चप्पल नहीं लिए जा सकते थे। उन्होंने अपने चप्पल देखे जीर्ण हो गए थे। लज्जित होकर कहा

आप मुझे क्षमा करें इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं।

११

58, Nariyalwali Gali
Lucknow
30 4 6

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

काशी के पते पर सखी और प्रभावती आपको मिल चुकी होंगी। छाप की भूलें हुई हैं खास तौर से प्रभावती में। 'निरुपमा' छप रही है। 'गीतिका' और 'निरुपमा' गरमियों की छुट्टी भर में प्रकाशित हो जायेंगी। किताबें आप को कैसी लगीं लिखियेगा स्पष्ट मेरी दूसरी रचनाओं के मुकाबले।

आपका गीत माधुरी के मुखपृष्ठ पर निकला है आपने देखा होगा।

आप पर मैं लेख लिखना चाहता हूँ 'काकली' का सम्बन्ध ले कर और निकालना भी चूँकि माधुरी में है इसलिये अपने इस लेख (मेरे गीत और कला) के निकल जाने पर देना उचित समझता हूँ। माधुरी से प्रकाशन ज्यादा अच्छा होगा।

'सुधा' को मैं आपके लेख-कविताएँ देता पर सुधा-सम्पादक कुछ दूसरी तरह के आदमी हैं फिर मेरी घनिष्ठता भी अब वैसी नहीं रही। फिर भी मैं पूछूँगा। वे चाहते हैं लेखक या कवि स्वयं उनसे पत्र व्यवहार करे। मैं आपका जिक्र उनसे करूँगा। आपको सूचित करने पर आप स्वयं उन्हें लिखियेगा।

कविता के sense में मेरा वही मतलब था जो आपका है। Personified कविता से मेरा मतलब है वहाँ। यद्यपि आपका व्याकरण वह न्याय नाम से सूचित करता है कि वाक् को उस form की जरूरत हुई और यह ठीक भी है अब भी हम कविता-तत्त्व लिखते समय मालूम होता है फिर भी मेरा खयाल है कि नये फैशन में अब कवितात्व नहीं चल रहा, बंगला साहित्य से तो इसका बहिष्कार हो ही चुका है मुमकिन नव्यदीपवालों ने न्याय से संस्कृत में भी किया हो मैं ठीक नहीं कह सकता आप पता लगाइयेगा।

मैंने (जयदेव का) —

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके

तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके —को प्रिय अर्थ में लगा

लिया है और फिर वेदान्ततत्त्व मे इसका घटाव। बात यह कि समय नहीं मिलता। कितना काम पड़ा हुआ है! क्या-क्या किया जाय!

मैंने फिर से संस्कृत अंग्रेजी पढ़ना शुरू किया है अगर तार बँधा रहे।[1]

अपने स्वास्थ्य-समाचार दीजिएगा। और अगर मजा देखना हो तो 'महतो'[2] (पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी') से मिलकर कहियेगा कि निराला जी आप को अपना चेला कहते थे, कहते थे कि दिल्ली मे उन्होंने मुझसे अपनी कविता शुद्ध कराई थी। देखिये फिर क्या रूप देखने को मिलता है।

आपका
निराला

---

१ 'गीतिका' बनारस के सरस्वती प्रेस में छप रही थी। निराला जी नवाबगंज महल्ले में पं० वाचस्पति पाठक के साथ रह रहे थे। मैं प्रायः प्रतिदिन आठ-दस घंटे साथ रहता था। उन दिनों 'वन्दी-मन्दिरम्' नामक एक राष्ट्रीय खण्ड-काव्य लिख रहा था। सुनाता, तो कहते मैं फिर संस्कृत पढ़ूँगा। एक दिन हम सबके साथ प्रो० राम अवध द्विवेदी के यहाँ गए तो उनसे 'मरुवेद' के कुछ आरम्भिक पृष्ठ पढ़ डाले। द्विवेदी जी के कमरे मे निराला का एक अत्यन्त सुन्दर चित्र टँगा हुआ था। चाय-जलपान और काव्यपाठ के बाद जो वहाँ से लौटे तो फिर कभी नहीं गए। संस्कृत का भी लगभग यही हाल रहा।

२ 'साहित्यिक सन्निपात' वाले हुड़दंग मे वियोगी जी भी पं० बनारसी दास चतुर्वेदी के साथ मदारी निकाल रहे थे। 'छ' जोड़कर निराला की कृति को वह भी शोध का मल सिद्ध करने पर तुले हुए थे। उन्होंने उस जमाने मे सौ रुपए का नकद पुरस्कार भी घोषित किया था। यदि कोई 'साहित्य का फूल अपने ही वृन्त पर' नामक निराला के निबंध का अर्थ उन्हें समझा देता तो उसे वह नकद इनाम मिल जाता। एक दफा मेरी गरीबी ने मुझे उकसाया भी था मगर दुष्ट मित्रों ने मना कर दिया कि सारी मेहनत मिट्टी में मिल जायगी, वह समझने से इन्कार कर देंगे, प्रोपेगैण्डिस्ट बनारसीदास जी नाम का ढिंढोरा न पिटे होने से, तुम्हारी 'भाषा भणिति' को 'सधन्यवाद' वापस कर देंगे।

१२

58 Nariyalwali Gali
Lucknow
11 5 36
6 P M

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। प्रभावती पर आपकी जो राय है वह मेरी भी है। कुछ दूसरे मित्रों ने भी यही सम्मति दी है। पर कुछ की राय है यह अप्सरा से बढ़कर है। ये लोग ऊँचे विद्वान हैं। आज मिस्टर मालवीय जो कान्यकुब्ज कालेज के अध्यापक हैं यहाँ प्रभावती की बड़ी तारीफ करते थे और अप्सरा से बढ़कर बताया।

निरुपमा बड़ी सीधी भाषा में भीतर से है। जिन्होंने पाण्डुलिपि पढ़ी है वे सब (अभी तो) प्रभावती से बढ़कर कहते हैं। मेरा विचार है अभी रोचकता में अप्सरा ही सबसे अच्छी है।

इस बार फिर आपकी कविता माधुरी के मुखपृष्ठ पर है। बधाई।

पन्त जी पर अंगरेजी का प्रभाव पड़ा है जो लोग कहते हैं उन्होंने अंगरेजी में सिर्फ परीक्षाएँ पास की हैं।[1]

---

१ मैं अपने ही सपनों की सेज पर खुर्राटे लेने का आदी था। जगने पर ताजगी और तन्दुरुस्ती का गुमान होने लगता। किसी के झँझोड़ने पर आँखें न खुलतीं तो किसी न धूल झोंकने पर झिलमिलाती भी न थीं।

दरअसल यह बात लोगों की कही हुई न थी। मेरी ही औंधी खोपड़ी की उपज थी। संस्कृतवाली शैली से मैंने 'गोल्डन ट्रेजरी' लगभग घोट डाली थी। पन्त जी की एक कविता पढ़ी

बाँसों का झुरमुट,
सन्ध्या का झुटपुट,
हैं बोल रही चिड़िया—
टी० वी० टी० टुट्-टुट !

तो सुने T Nash की—

Spring the sweet spring is the year s pleasant
Then blooms each thing then maids dance in a ring
Cold doth not sting the pretty birds do sing
Cuckoo jug jug pu we to witta woo !

मुझे लोग नही मानते, इसीलिए इस साहित्य मे मैं आया हूँ। जिन्हें मानते हैं, वे साहित्यिक होते तो मेरे आने की जरूरत न होती।'

कलावाला लेख जून मे निकलेगा। विशेष फिर। आप प्रसन्न होगे।

आपका

निराला

याद आ गई। फिर शेक्सपियर के 'विंटर' की पंक्तियाँ—

Tuwhoo !

Tuwhit ! towhoo !—माथे मे लरजने लगी, और मैंने गोगो के नाम पर अपना ही पुलकित कुतूहल पत्र मे प्रकट कर दिया और कहना न होगा उसी धूमिल वह्नि मे से निराला का यह कर्पूर सौरभ उडा था।

१ सन '२२ मे प्रकाशित 'अनामिका' का पहला विज्ञापन निकला था

इस कवितापुस्तक (अनामिका) ने हिंदी ससार म खलबली मचा दी है, क्योंकि इसके प्रतिभाशाली लेखक खडीबोली के कवियो की तरह सनातन भेडियाधसान के पीछे नही पडे हैं बल्कि उन्होने अपने लिए एक ऐसा मुक्त मार्ग निश्चित किया है जिस पर केवल वही चल सकता है जो स्वभावत भावुक कवि है और जिसके मुख से अनवरत धारावाहिक रूप से ललित भावमयी कविता निकलती है तथा स्वच्छन्द भावावेश म मग्न होकर जो अपने साथ ही साथ पाठको को भी कल्पना की अगाध तरङ्गिणी मे दबोच लेता है।

हिन्दी साहित्य ससार के प्रसिद्ध महारथी पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी और साहित्याचार्य पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री—ऐसे विद्वानो की राय म यह पुस्तक हिंदी म युगान्तर उपस्थित करनेवाली है।

—मतवाला प्रथम वर्ष, प्रथम अक
२६ अगस्त '२३

\+ \+ \+

सन् '२४ मे मुशी नवजादिक लाल जी श्रीवास्तव ने लिखा था

'निराला जी की कविताएँ उस हिंदी की सम्पत्ति हैं जो हिंदी राष्ट्रभाषा होगी।

'मैं पहले भी लिख चुका हूँ और अब भी लिखता हूँ कि निराला जी किसी समाज या किसी प्रात के कवि नहीं वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रथम महाकवि हैं।

—मतवाला, ९ अगस्त '२४
प० ६७४ ९५

१३

58, Nariyalwali Gali
Lucknow
3 6 36

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

मैं शीघ्र आपको नहीं लिख सका। आपके गीत पसन्द आये। दो-तीन अधिक। आज वीणा सम्पादक को भेजता हूँ।

आप मेरी प्रसिद्धि की ओर ध्यान न दें। हिन्दी वाले जैसा समझते हैं लिखते हैं। केवल तारीफ से कुछ नहीं होता साथ समझ चाहिये।

मैं जल्द प्रयाग जा रहा हूँ। कब लौटूंगा, ठीक नहीं। 'निरुपमा-गीतिका' के प्रकाशन से सम्बन्ध है। बाकी पुस्तकें मैं लिख पाया तो समय-असमय निकल जाएँगी।

सब तरह विपत्तियाँ हैं—यत्र गच्छति भाग्यरहितस्तत्रव। आदमी यथा शक्ति लड़ता है, मैं भी जीने के लिए लड़ता हूँ। साहित्य अपना रास्ता आप निकाल लेता है। मैं उसका एक बहुत ही छोटा करण-कारण हूँ। अब उसका काम आगे आप लोग करेंगे।

अगर मई का 'भारत' पूरा देखने को मिले तो देखिये। मेरी पन्त जी की लिखी विवेचनाएँ हैं।[1]

---

१ मैं समझता हूँ पन्त का प्रथम कवि परिचय निराला ने ही लिखा था। सन् २४ के वसन्त में 'राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रथम महाकवि' निराला पन्त के लिए लिखते हैं

'हिन्दी में जब से खड़ीबोली की कविता का प्रचार हुआ तब से आज तक उसमें स्वाभाविक कवि का अभाव ही था। जो पौधा लगाया गया था उसे कुसुमित करने के लिए अब तक के कवियों को सींचने का श्रेय जरूर दिया जा सकता है परन्तु वे उस पौधे के माली ही हैं कुसुम नहीं।

'पौधे में फूल एकाएक नहीं लग जाते वे समय होने पर ही आते हैं। खड़ी बोली की जिस कविता का प्रचार किया गया था जिसके प्रचारकों और कवियों को कितनी ही गालियाँ खानी पड़ी थीं, उसका स्वाभाविक कवि अब इतने दिनों बाद आया है और हिन्दी का वह गौरव कुसुम श्री सुमित्रानन्दन पन्त हैं।'

—मतवाला ३ मई २४

आपने अपने गीत में[1] कहीं विषमता दिखाई है, स्मरण आता है। असङ्गति, अधिकादि जो हो, मैंने समझा, ध्यान नहीं दिया। और कुशल है। इति।

आपका
निराला

---

१ वासर विभावरी
जीवन की लहरों से घिर घिर
तिरती स्वर्ण-तरी!

निज निश्वास—समीरण से क्या भीति?
जगत-जलधि परिमित परिचित तल-गीति,
क्यों ऐसी उत्कट उस तट से प्रीति?—
बढ़ती ही जाती,
अपिम-मुख उन्मुख,
मुख सिहरी!
वासर विभावरी!!

पहुँच सकेगी क्यों न लक्ष्य पर? —पार
निर्मल जीवन! कहाँ भवर? —मझधार?
अपनापन कि सुमन-सौरभ सभार!
तिरते को क्या डर
श्यामल जलराशि कहाँ गहरी!
वासर विभावरी!

—रूप-अरूप

१४

C/o Pandit Vachaspati Pathak Esqr
Nawabganj
Benaras City
19 6 36

प्रिय जानकीवल्लभ जी

वीणा सम्पादक के पत्र से लखनऊ में ही आपकी 'अविनाश'[1] के छपने की मंजूरी के साथ साथ मालूम हुआ कि उन्होंने आपको यथालिखित पत्र भेज कर धन्यवाद दिया है।

मैं आजकल काशी ऊपर के पते पर हूँ। गीतिका छप रही है सरस्वती प्रेस में भारती भण्डार द्वारा निरुपमा भी लीडर प्रेस में। १५ २० दिन रहूँगा।

'चाँद' में आपका लेख देखा। खुशी हुई। आपको 'माधुरी' में मेरा दूसरा अंश 'मेरे गीत और कला' का कैसा लगा, लिखियेगा। और सब कुशल है। जल्दी में हूँ।

आपका
निराला

---

१ इतना सुख, मुख खोल न सकता !
अब्द-अब्द से सोच रहा पर—
एक शब्द भी बोल न सकता !
बेसुध कौतुक मेरा
सति में उसकी अनुसति करता आया
इतना पास रहा
कहा गया मैं उसकी हो जीवित छाया,
पथ भ्रम क्या, उसके पद क्रम से—
अलग तनिक भी डोल न सकता !

कब तक धरे धरोहर रहता !
दिया उसे अपना अपनापन,
सीमित गति विधि, शून्य मनोरथ
मेरा गत गौरव, नीरव मन,
इतना लघु जीवन, कोई भी—
कभी इसे अब तोल न सकता !

× × ×

चल रहे साँस के तीक्ष्ण तीर !
क्या सोच काल को ? —विलय का—
है अमल कमल-कोमल शरीर !
कैसा पुनीत वह था अतीत,
जो भी छल चलता बना मोह !
कैसा नीरस यह वर्तमान,
कैसा भविष्य का मधुर मोह !
बह-बह जाती क्या कानों में—
कलिका के, —पतझर की समीर ?
चल रहे साँस के तीक्ष्ण तीर !
तपती मरु भूमि तवा सी है,
तपने दो, मन नभ-चारी है,
तनु तन भी यदि टूटी कुटीर,—
रहने दो, प्राण प्रवासी है !
हो उषा उदय, ढलने को तो—
नक्षत्र सभी से है अधीर !

—'रूप-अरूप'

१५

C/o Vachaspati Pathak Esqr
The Leader Press
Allahabad
7 11 36

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ,

मुझे उत्तर देते हुए देर हो गई। पहले भी मैं बड़ी तत्परता करता रहा। प्रतिज्ञानुसार काशी ५/१० को जा रहा था, पर रोक दिया गया। कु० चन्द्रप्रकाश को चिट्ठी लिखी उत्तर मे तुम्हारा सवाद नही। उनका घर से पत्र मिला लिखा था, काशी छोडने के कई रोज पहले से मैंने जानकीवल्लभ जी को नही देखा। फिर मि० शर्मा (डा० रामविलास शर्मा) का पत्र मिला। लिखा था

जानकीवल्लभ जी नारियल वाली गली से यहाँ आये 'राम की शक्तिपूजा' पढकर प्रसन्न हुए[1] पञ्जाब गये थे काशी जा रहे हैं।

मुझे खुशी हुई पर काशी का नया रूम नम्बर भूल गया था। पुन छुट्टी के दिन हैं, घर जाना सम्भव है सोचकर सोचता ही रहा, फिर आपका पत्र मिला।

गीतिका कल तयार हो जायगी, निरुपमा हो चुकी है। कुवर चन्द्रप्रकाश दीपावली तक यहाँ आने वाले हैं। उनके हाथ दोनो पुस्तकें भेज दूगा।

आपके बन्दीमन्दिरम को (छपा हुआ) देखने की प्रबल इच्छा है। चार वाक्य सस्कृत मे लिखते मुझे दिक्कत न होगी।[2]

---

१ कुअर चन्द्रप्रकाश के डेरे म, मेरे सामने काशी मे ही 'राम की शक्ति पूजा' का पूर्वार्द्ध लिखा गया था।

२ बन्दीमन्दिरम् की प्रस्तावना लिखवाकर मैं यह चमत्कार प्रदर्शित करना चाहता था कि सस्कृत भाषा और साहित्य म भी निराला की कितनी गहरी पैठ है। काकली मे तो भारत भर के महामहोपाध्यायो की ऊँची से ऊँची सम्मतियाँ सकलित थी ही। महाकवि निराला लिखित प्रस्तावना उन्हें भी चौंकाती।

'त्रिशङ्कु' वाली दशा खूब रही। पर जब आप हठी नहीं, तब आपके लिए वह डर भी न होगा—स्वर्ग ही पृथ्वी पर उतरेगा।'[1]

मैं सचेष्ट हूँ। केवल आपके हिन्दी गीत मुझे यहाँ नहीं मिल रहे। आप कष्ट का विचार न कर कुछ भेज दीजिये, जल्द।

अंग्रेज़ी की पढ़ाई धीरे धीरे कीजिये। स्वास्थ्य पहले है।

आपका

निराला

---

१ संस्कृत से हिन्दी में आकर अपने तुतले प्रयोगों से संतुष्ट न था। डरता था कहीं गुरुभारती भी बेसुरी न हो जाए।

१६

C/o Pdt Vachaspati Pathak Esqr
The Leader Press
Allahabad
12 1 37

प्रिय शरण आचार्य

आपका पत्र मिला। 'सम्राट' पर वाली कविता औरों की तरह आपको भी अच्छी लगी। आपने संस्कृत की रुह से ठीक पकड़ पकड़ी है—स्त्रीणा स्पर्शात प्रियङ्गुर्विकसति ।[1] —और वह भी, जिसके लिए प्रियङ्गु' को कामाओं से बन्द किया है।

कविता तो मैंने यों ही एक दिन लिख डाली सम्राट के गद्दी छोड़ने से प्रसन्न होकर।

इधर काम करना बन्द कर दिया है। पैर की अवस्था उत्तरोत्तर खराब होती जा रही थी।[2] अब ३४ दिन से एक दवा अच्छी मिली है काफी फायदा हुआ है। आशा है ४० दिन के सेवन से अच्छा हो जाऊंगा। अपनी व्याधि के कारण ही मैं अभी तक आपकी पुस्तक की आलोचना नहीं लिख सका। जी नहीं होता।

---

१ स्त्रीणा स्पर्शात प्रियङ्गुर्विकसति बकुल सीधुगण्डूषसेकात
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम
मन्दारो नर्मवाक्यात पटु मदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात कर्णिकार ।

२ निराला साइटिका के पुराने मरीज थे।

माधुरी वाली बात तो जो हुई हो गई[1], आप अपने स्वास्थ्य की ओर पहले देखिये। मैं बराबर आपका आपकी तंदुरुस्ती की ओर ध्यान दिलाता रहा हूँ। अँगरेजी बँगला के लिए बहुत समय है। बेफिक्र होकर रहिये और इलाज कीजिये।

मैं एक हफ्ते के लिए लखनऊ जा रहा हूँ कविसम्मेलन। प्रकाशन की वहाँ बातचीत करूंगा—अलका आदि की। यहाँ प्रबन्धों का संग्रह जहाँ तक जा सकेगा, जायगा। इति।

आपका
निराला

---

१ 'भारती' वाले भुवनेश्वर ने निराला पर बहुत कठोर लिखा था। 'वन म निराला की तुलना की थी। मुहतोड़ जवाब देन के लिए मुझे 'वन' पढ़ना ही था। उधर १८३६ को निराला अपनी पनी हुई गोर्की-ग्रन्थावली' अंकि रञ्जित वाचिक आशसाओ समेत भेंट कर गए थे Presented to Sri Janakivallabha Sahityacharya Shastri by Nirala/1 8 36 लिखकर।

महान् के गहनतम समीक्षा-साहित्य के कलाप में घोर परिश्रम के साथ यह सब भी पढ़ना रहता था। बीमार होना लाजिमी था।

१७

C/o Pdt Vachaspati Pathak Esqr
The Leader Press
Allahabad
9 2 37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

कुछ देर से उत्तर दे रहा हूँ। लखनऊ तो वास्तव मे मैं जाना ही नही चाहता था। प० नन्ददुलारे जी ने बुलाया था फिर कविसम्मेलन का आमन्त्रण आया। कुछ प्रदर्शनी देखने का लोभ भी था।[1] इसलिए चला गया। पर फिर भी १०१) सम्मेलनवालो से लेने की बात लिखी थी। यह भी पेशगी। अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए, आदमी भेजकर, यही उन्होने २५) किराय और केवल एक रोज दस मिनट पढने के लिए प्रार्थना की। इस तरह मैं गया। और दूसरे दिन पाँच मिनट दो कविताएँ पढी। असली बात, प्रदर्शनी देखना था। वहा १५) फिर दुलारेलाल जी से लिये थे। खर्च इस तरह पूरा हुआ।

आपका व्यय खर्च होगा इस विचार से नही लिखा। कुवर चन्द्रप्रकाशजो को खबर देने के लिए लिखकर आमन्त्रित करके भी शायद उन लोगों ने खर्च नही दिया पढने के लिए भी नही पूछा कारण भगवान जानें।

मैं तो दलच्युत होकर दूसरी जगह एक विद्यार्थी के यहाँ रहा था। पुन लखनऊ के मित्र मुन्न प्रतिदिन दावत दे रहे थे मेरे साथियो का मेरे साथ दावत मे शरीक होना अपनी अब तक की आदत छोडना या जान पर खेलना था।

आपके स्वास्थ्य के समाचार से प्रसन्न हुआ। शेष फिर। अभी भी मैंने नये जीवन से लिखना शुरू नही किया। पूरा पता लिखा करें।

आपका
निराला

---

१ प्रसाद जी ने भी यही आखिरी मेला देखा था इस मायापुरी का। फिर तो—

Forgot the cry of gulls and the deep sea swell
And the profit and loss
A current under sea
Picked his bones in whispers
As he rose and fell
He passed the stages of his age and youth
Entering the whirlpool —T S Eliot

१८

११२, मकबूल गंज, लखनऊ
२४ ३ ३७

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ !

प्राप्त प्रियपत्र तव । समधिगताश्च सन्देशा । प्रयागादद्यवागतोऽह प्राप्त पत्र । सत्य यल्लिखित त्वया, परन्तु, मतेऽपि प्रतिकूलता कार्ये कारणे वा कस्मिश्चित न विरोधोऽधुना कथ्यते । नैतद् दृष्टिमात्रमपि कस्यचित । प्रकाशान्तरमेव दर्शनस्यालोचनस्य च ।

सर्वे पुरो गच्छन्ति, मन्ये, सर्वत्रास्ति नवीनता । तथापि, जानामि, जना परिहसन्ति कमप्युडुपवाहि सागरपारकामिनम ।

लिख यथा यदिच्छसि साधुचरित स्वान्त सुखाय स्वच्छन्दतया ।

गोरक्षपुरे कविजन स्थापिते ह्यस्माक हिन्दीनवयुगसङ्घे समागच्छ । पठ 'भारत' मम लेखम प्रकाशिते ।

स्वस्थोऽस्मि । चिन्तयाम्यनागतमुख साहित्यम । इति शम् ।[1]

तव
सूर्यकान्त

पता नही, कितनी गलतियाँ
हुई । फिर विस्तृत लिखूगा ।
—नि०

---

१ किशोर कुतूहलवश मैं उन्हे भिन्न भिन्न भाषाओ म पत्र लिखा करता था। यह मेरे संस्कृत म लिखे हुए पत्र का उत्तर है। मेरी बँगला उन्हे कभी न जची एक खाँटी बगाली की तरह उन्होने हमेशा मेरे बँगला पत्रो का हिन्दी म ही उत्तर दिया।

मेरे खुरदुरे अँधेरे को केवल एक बार चौड़ी मुँडेर की रोशनी की चोट लगी थी। श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित पर उन्होने एक बँगला-कविता लिखी थी। उन दिनों दारागंज के पण्डेवाले कच्चे मकान मे रहते थे। मुझसे उसे लिख लेने को कहा। वह टहल-टहल कर बोलते गए मैं उनकी कौंधी दृष्टि के उलझे हुए साए म मुंशी वैशम्पायन की तरह अपने ही गुच्छ-गुच्छ केशो के पौधो म दुबका हुआ चंगुलनुमा धाराधारा म, बगैर सोच हिलाए, जल्दी लिखता रहा कि लिखावट की कच्ची गन्ध से खीज कर जैसे उन्होंने चपल कर कलम छीन ली और अपने सधे हाथ स अन्तिम तीन पंक्तियाँ लिख डालीं। यक्षायुगी हस्तलिपियों की वह कविता-सरस्वती अभी तक मेरे पास गुप्त है।

१६

डलमऊ, रायबरेली
२७ ५ ३७

प्रिय जानकीवल्लभ जी

मैं फिर दीघ काल तक आपको नही लिख सका। मेरा घर मुझे बहुत विपद्ग्रस्त किये हुए है।

एक रोज माधुरी आफिस गया था, आपकी आलोचना स्वीकृत हो गई थी, मुझे पाण्डेय जी ने पढने के लिये दी थी सरसरी निगाह मैंने उसे देख लिया। शायद उसे वे एक ही बार म छापेंगे।

आलोचना आपकी निष्पक्ष तो है पर मैं ऐसी प्रशसा नहीं चाहता न ऐसी उदारता मुझे प्रिय है। इससे तो पन्त जी के वे प्रशसक मुझे भले मालूम देते हैं, जिन्हे पन्त जी के सिवा हिन्दी मे कवि ही नहीं नजर आता।

मैं जिस कला कहता हूँ उसका आपने जिक्र नही किया।[1] फिर भी मैं आपके आलोचक का अदब करता हू। साथ ही एक मित्र की हैसियत से सलाह देता हूँ सत्य न घट कर है, न बढ कर।

आप पर कालिदास का जो रग है वह मेरी धारा का बाधक है, मुझे एसा जान पडता है। जिसे मैं दुबलता मानता हूँ वह आप लोगो की निगाह मे सौन्दय बन जाता है।

मैं जानता हूँ आप बुरा न मानेंगे। मैं ससुराल म हू। लिखिये — प्रेमा होटल अमीनाबाद लखनऊ।

एक जगह इतिहास जन्य भ्रम मैंने ठीक कर दिया है।

—निराला

---

१ मैं निराला की मान्यताओ को आधार मान कर नही लिख सकता था। मेरे उस विशाल लेख का एक अकिञ्चन ऐतिहासिक महत्त्व जो प्राप्त होने वाला था। तब तक उस आकार प्रकार का कोई भी लेख निराला पर नहीं निकला था? निराला की मान्य कला ऐसे सौ सफेद प्रबन्ध का लेखक महज बीस साल का था और वह हिन्दी म अभी बस साल डेढ साल पहल से लिखने लगा था। अभी उसकी दृष्टि अधिक-से-अधिक तुलनाओ तक ही कलती थी। उस कवीन्द्र रवीन्द्र की अच्छोद सरसी-तीर की विजयिनी पढ़ते समय—

Beauty sat bathing by a spring
Where fairest shades did hid her
The winds blew calm the birds sing
The cool streams ran beside her —Tony

की याद आने लगती थी। निराला की कला का मोह वह एम आँकता था—
सार-धनिर मनि गुन-गन असे।

२०

प्रेमा होटल, अमीनाबाद
लखनऊ
२३ ६ ३७

प्रिय जानकीवल्लभ जी

आपका मधुर पत्र पढ़ा। आपके लिखने का ढग बड़ा अच्छा है। आप ही लोग हिन्दी के भविष्य विद्वान हैं, आपको अनादृत करूँ मेरा ऐसा उद्देश्य नहीं था, मैंने जो कुछ भी लिखा, सीधे ढँग से लिखा।

कालिदास के प्रति आपकी जो धारणा है उस पर मुझे विश्वास है। किसी को समझने-न समझने का गव और विनय भी कुछ नही, समझ की सनद तो आपके पास ऊँची है ही।[१] इस परीक्षा म मैं तो समझदारो म बहुत पीछे हूँ।

मैं कल यहा आया और आपका आया हुआ पत्र पढ़ा। आज माधुरी-आफिस गया था। पाण्डेय जी नही मिले। मेरी समझ मे उसे जाने दें आप, जसा लिखा है। अन्तिम परिच्छेद का मुझे स्मरण है। आवाज कमजोर है इसलिये मधुर है।

मैं एक तरह अच्छा हू। फिर से कलम उठाया है। दो गीत सुधा' मे निकले हैं मे-जून की सख्याओ म।

'सुकुल की बीवी' एक कहानी दी है कुछ वैसी नही बन पडी, पर कुछ

---

१ जान क्यो निराला ही नही, प्रसाद जी भी कालिदास से खिचते थे। उन्हे भारवि पसन्द थे, इन्हे श्रीहर्ष। अब तो कोई उपाय नही निराला ने मरा लेख खो दिया, वह छपा होता तो निराला के तिनकने का रहस्य मालूम हो जाता। मुझे अब तक ऐसा कोई न मिला जो अपने तन्त्र-मन्त्र से मेरे सर पर चढ कालिदास के अमलगरल को उतार दे। मैं कालिदास को भारत का न भूतो न भविष्यति' कवि मानता हूँ।

अंश पसन्द आयेंगे आपको। आपका गीत बड़ा भावपूर्ण है।[२] मैं 'सुधा' सम्पादक को दूंगा।

मैं अभी तक मानसिक बल नहीं प्राप्त कर सका पर मैं असस्कृत नहीं। देखिये।

सविनोद फिर।

आपका
निराला

२ आँखें ही तो हैं भरी हुई,
सूने प्राणों में आ जा रे!
गिरियों से घिरा हुआ, निर्जन,
मेरा निष्फल, जड़, जीवन वन,
इसमें मैं नित रोता रहता,
तू एक बार तो गा जा रे!
कुहरा है भरा अँधेरा है,
पर जब यह भी घर तेरा है,
क्या रत्नदीप? मिट्टी का ही
दीपक तो एक जला जा रे!
—रूप-अरूप

२१

112 Maqbool Ganj
Lucknow
5 8 37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र होटल में मिला था। मैं इधर ८० दिन ससुराल रहा, एक महीने पहले तक। होटल में आया हुआ आपका पत्र आकर प्राप्त किया था। आपका आधा लेख माधुरी में छप गया है। कहीं-कहीं कुछ अशुद्ध छपा है। मैंने सिर्फ 'मोगल दल' 'हरहर' का अर्थ सीधा सीधा लिख दिया है। बाकी कुछ बना बिगड़ा होगा तो उसके लिए पाण्डेय जी उत्तरदायी होंगे। माधुरी ३-४ दिन में निकल जायगी। आधा लेख अगले महीने में छपेगा। आपका उपसंहार भी मैंने घटा दिया है। आपके गीत[1] के लिए सुधा-सम्पादक से पूछा था। उन्होंने छापने के लिए कहा है। मैंने अभी दिया नहीं। मकान बदलते वक्त अगर ले आया हूँ याद है कि ले आया हूँ, तो अवश्य उन्हें भेज दूँगा। पं० रामविलास जी इस मकान से गये, मैं आया। और सब कुशल है।

'वनबेला' का प्रूफ भेजता हूँ साथ।

---

१ मैं स्वर हूँ, तू है शब्दकार !
सूखे आँसू का मलिन राग मैं,
तू सुंदर, सुकुमार प्यार !
तेरे वियोग से, बिछुड़न से—
है बना विश्व यह दग्धमान,
इसलिए तो यहाँ तड़प टीस—
उच्छ्वास विकल हैं सकल प्राण !
मैं कटु अनुभव वञ्चित जग का,
तू मधुर कल्प कल्पनाधार !
साँसों से कसे कसे उर में
उमड़ी सुरसरि सी सुचित व्यथा
जीवन के उड़ते क्षण से खग
मुड़ मुड़ कर कहते मम कथा
क्या कहूँ—नहीं तो कुछ भी,
पर तू भी निर्गुण निराकार !

—रूप अरूप

गीत

(कवि नद की उक्ति)

पथ पर मेरा जीवन भर दो।
बादल हे अनन्त अम्बर के,
बरस सलिल गति उर्मिल कर दो!

गीत

बादल, गरजो!
घेर घेर घोर गगन धाराधर ओ!
ललित-ललित काले घुँघराले
बाल कल्पना के से पाले
तप्त धरा, जल से फिर शीतल कर दो—
बादल गरजो!

यह गीत माधुरी में गलत छपा है। 'बाल-कल्पना के से' हो गया है!!! अन्त में 'बादल गरजो' की जगह मैंने ही 'धाराधर ओ' कर दिया था।[2]

---

२ सन् '३७ की बरसात के ये ऋचाओं से रचे हुए गीत ईलियट की याद दिलाते हैं

So here I am in the middle way having had twenty years
Trying to learn to use words, and every attempt
Is a wholly new start

कौन विश्वास करेगा सन् '२३ तक छपने वाले अवश्य किसी भी कविता पुस्तक में असंकलित ये गीत भी कभी इसी महान कलाकार की कलम से निकले थे —

गये रूप पहचान!
सुनी राष्ट्रभाषा की जब से भव्य मनोहर तान
मिटी मोह माया की निद्रा गये रूप पहचान!
छिपी छुरी नीचों के छल में,
देख दम्भ दुष्टों के दल में,
बढ़ आगे, हो सजग मेट तू क्षण में नाम निशान!
चूम चरण मत चोरों के तू
गले लिपट मत गोरों के तू
झटक पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ में मान!
खल-दल बल दलदल में धसका
गा गौरव-गरिमा गुण-यश का,
क्या किसका गर तू उकसाता अपना प्राण महान?

आपके 'तरन्तीवाङ्गानि स्खल्दमललावण्यजलधौ' के मुकाबले—
'अङ्गे अङ्गे यौवनेर तरङ्ग उच्छल
लावण्यर मायाम ये स्थिर अचञ्चल' कैसा है ?

आपका
निराला

आप आप कर अब न अपर को,
बना आप मत बचक नर को,
अगर उतरना पार चाहता लिखा शक्ति बलवान !
मिटी मोह-माया को लिखा गये रूप पहचान !!
मतवाला (वर्ष १, संख्या ३) —'निराला'
८ ६ २३

गरीबों की पुकार

हमारे ईश हैं बस वे खड़े मैदान में जो हैं,
न बदलेंगे कभी हमसे अड़े इक शान में जो हैं,
नहीं वे ईश कहलाते, बड़े अभिमान में जो हैं,
चढ़ें, पर वे गिरेंगे ही पड़े अज्ञान में जो हैं।
कहीं निस्तर, निपट वर्षा सलिल-संचार में पड़कर
प्रलय का-सा अनय जो कर गया संसार में बढ़कर,
तड़पता है पड़ा, सूरज उगलता आग जब उस पर,
कलेजा थाम कर कहता, 'गरीबों पर रहम अब कर'!'
+ + +
लगावेंगे वही बेड़ा हमारा पार दुनिया में
हमें जिनका, हमारा भी जिन्हें, है प्यार दुनिया में।
मतवाला (वर्ष १, संख्या ७) — 'निराला'
६ १० '२३

३ 'निराला की काव्यकला' नामक प्रबन्ध में 'उपचारमनोज्ञता' के क्रम में मेरे द्वारा उद्धृत पद्य

तरन्तीवाङ्गानि स्खल्दमललावण्यजलधौ
प्रथिम्न प्रागल्भ्य स्तनजघनमुन्मुद्रयति च
दृशो र्लीलारम्भा स्फुटमपवदन्ते सरलता—
महो सारङ्गाक्ष्यास्तरुणिमनि गाढ परिचय !
—वक्रोक्तिजीवितम द्वि० १२०

निराला के—'घेर अङ्ग-अङ्ग को लहरी तरङ्ग वह प्रथम तारुण्य की !' से तुलनीय।

मैं नहीं जानता महात्मा गाँधी के सत्यार्थी को (Show them truth first and they will see beauty afterwards) इस सौंदर्य-सागर का एक धारा कतरा भी प्यारा होता या नहीं, किन्तु टगोर और निराला ने तो—तिर जिन बूडे सब अग की ही साधना प्रदर्शित की है।

२२

112 Maqbool Ganj
Lucknow
12 8 37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। आपके मधुर गीत भी। आपकी प्रत्यालोचना माधुरी को दे दी। गीत देने की सोच रहा हूँ।

आपने तोडती पत्थर' का उल्लेख नही किया, कही भी किसी पत्र मे। यह सुधा म पहले छपी है।

आपने मेरे लिय जो कुछ लिखा है सब ठीक है। पर अभी आप लडके है, जब भी अपनी और पन्थी की समझ से समझदार।

मैं जो कुछ लिखता हूँ साहित्य समझ कर। नही बन पडता, मेरी कमजोरी है। लोग क्या चाहते है लोग जानें। मैं क्या देता हूँ मैं समझता हूँ।

आज परिमल के व गीत आप चाहते है, जिन्हें पहले (उन गीतो के जमाने म) लोग नही चाहते थे। मुमकिन फिर आज की चीजें आपको अच्छी लगने लगें —मेरा मतलब 'आप' से लोग है।—क्योकि आप उसी तरफ से कह रहे हैं।

रही लीडर' की जसी आलोचना की बात, इस—ऐसी के लिये मुझे कभी ज्यादा परेशान नही होना पडा। एक दफा आलोचक को देखा एक दफा समझा साहित्य गुना, रह गया।

सीधी चीजें अच्छी हैं। मैंने नहा लिखी—आप कह सकते हैं?—यह तोड़ती पत्थर कसी है?

लकिन इसकी कुल कला समझकर आप इसे सरल कहय मुझे विश्वास नही।

जो गहन भाव सीधी भाषा—सीधे छन्द म चाहता है वह धोखेबाज

है उसे भाषा का ही ज्ञान नहीं, वह भाव क्या समझेगा ?[१]

कला के सम्बन्ध में पत्र में क्या लिखूं ? उसके विकास और सौंदर्य की बातें लाखों तरह की हैं दो चार आपको बताई थीं आप भूल गये हैं जरूर।[२] एक देखिये —

कोई न छायादार
पेड़ वह, जिसके तले बैठी हुई, स्वीकार, (स्वीकार सी)
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्मरत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार बार प्रहार,—
सामने तरुमालिका अट्टालिका, प्राकार।

---

१ सन '३० के सितम्बर में 'भाव और भाषा' पर लिखते हुए निराला ने अपना अभिमत बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रकट किया था।

"'विशाल भारत' ने जिस तरह पत्रकारों की सफरमैना की पल्टन निकाली है अगर कुछ दिन भी साहित्य में यह साहसिकता जारी रही तो भाषा की सफाई तो होगी ही, भाव भी साफ हो जायेंगे। फिर साहित्यिकों का साहित्य से भी कोई मतलब रहेगा या नहीं हम नहीं कह सकते सेवा अवश्य रह जायगी।

'भाव शून्य कला वैसी ही है जैसे बल शून्य दांव। इससे प्रतिपक्षी गिर नहीं सकता। कला अपने आसन पर सम्राज्ञी के अनुरूप वैभव तथा ऐश्वर्यमयी शक्ति से तभी बैठ सकती है जब वह पार्वती की तरह भाव के शिव की अर्द्धांगिनी बन रही हो। उसका रूप तभी मनोहर है उसमें तभी चमत्कार है जब याद किए हुए दाव-पेंचों की तरह अपने वक्त पर वह भाव के आवेश में आप निकल गई हो।

"गवैया कितने ही कलाविद हों, हर गाने की जान से परिचित हों वक्त की चीजें गाते हों, पर यदि भाव का माधुर्य गले में नहीं तो सारी कला चक्की की पीसाई और संगीत सिंह नाद है।' —निराला

२ निराला ने कहा था—

कि मैं दूसरे कवियों की तरह उन्हें खण्ड-खण्ड करके नहीं समग्रता में देखूं, कि उनकी प्रत्येक रचना संश्लिष्ट है एक पंक्ति दूसरी से, एक दूसरे से सम्बद्ध है जैसे तन से डाल, डाल से डंठल, डंठल से फूल। मूल चमत्कार के लिए कविता में दो पंक्तियाँ निकाल कर गोष्ठी प्रदर्शन या सौन्दर्य विश्लेषण करना निराला की काव्यकला से खिलवाड़ करना है।

यहाँ सीधा वर्णन होने पर भी, हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने पर भी, देखिये, किस तरह अट्टालिका पर पड़ती है, लेखक के वर्णन प्रकार के कारण और निर्देश से।

ऐसी बहुत सी बातें इसमें हैं।

वह जहाँ बैठी है वह पेड़ छायादार नहीं, अट्टालिका तरु मालिका है।—अट्टालिका भी तरु मालिका है फिर आदमी कितनी छाँह में है!

किन्तु आलोचक भूलने की गुस्ताखी न करने पर भी अपनी और अपने पाठकों की सीमाओं को भी याद रखने के लिए विवश था। तब तक वह किसी दोषपूर्ण पंक्ति के दोष पर खीझना और किसी सरस पंक्ति की भावुकता कल्पना या अनुभूति पर रीझना ही तो जानता था। अवश्य उस खीझने या रीझने की प्रक्रिया में उसकी वैयक्तिक अभिरुचि के अतिरिक्त शास्त्रीयता की सुदृढ़ भित्ति भी होती थी।

फिर उसे वाद या समुदाय की प्रवृत्तियों के वर्गीकरण और वस्तु एवं शिल्प के सामान्य विश्लेषण एवं शैलियों के वर्णन वाली ऐतिहासिक आलोचना से चिढ़ भी कम न थी। वह उसे कला की शव-परीक्षा ही समझता था। उसकी मान्यता थी कि कला के मामले में भी—

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्य
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्"

वाली उक्ति ही सच है।

और सब से बढ़कर उसे निराला की प्राथमिक कविताओं की भी सुधि थी —

दिव्य प्रकाश

रोकते हो क्यों उसको?
क्या अनुरागमूर्ति वह प्यारे—
नहीं किसी के सुख शैशव की जननी गौरव अनुपम?
और लगाना गले इन्हें
जो धूलिधूसरित खड़े हुए हैं—
कब से प्रियतम हैं भ्रम?
अगर द्वई में हुई कभी पहचान,
तो क्या रस है?
है नीरस वह अनुमान,
अपने ही हित पर उसका रहता है सारा ध्यान,
गँवाया जड़ से उसने ज्ञान,
किन्तु है चेतन का आभास—
जिसे देखा उसने जन जन में—
प्रियतम ही का दिव्य प्रकाश!

—निराला
(मत० प्र० व० स० ५)

'बँधा यौवन' छलकता नहीं कसी पवित्रता है !

'मैं तोड़ती पत्थर' अन्त का स्वभावन शायद समझ में आ जायगा 'मैं तोड़ती पत्थर हृदय ।'

आप अवश्य बुरा न मानेंगे, मेरे लिखने में रुखापन भले हो, वैमनस्य नहीं ।

मैं इतवार को—इसी इतवार को—१३ १४ क्या तारीख होगी, प्रसाद जी के यहाँ मिलूँगा सुबह आऊँगा । कुवर चन्द्रप्रकाश जी को भी ले आइयेगा ।

आपका
निराला

२३

112 Maqbool Ganj
Lucknow
30 8 37

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका प्रिय पत्र मिला।

काशी में 'पागल' जी से मिलने पर बड़ी प्रसन्नता हुई। डा० बाडथ्वाल जी के यहाँ रात भर रहा काफी साहित्यिक चर्चा हुई अपने आट पर मैंने बहुत कुछ कहा।

पागल जी की मिठाई और चाय खा पीकर प्रसाद जी को देखने के लिये चला।

आपकी अनुपस्थिति रात को ही मालूम हो चुकी थी, जब आते ही तांग से उतर कर गया था—डा० बाडथ्वाल के साथ। कुवर चन्द्रप्रकाश वाजपेयी परमानन्द और नरेश से मुलाकात नही हुई।

प्रसाद जी को बहुत दुबल देखा। दु ख और शङ्का हुई।

उसी दिन दुपहर को भगवती प्रसाद जी सकलानी और उनके दो मित्र आये। ३/४ घंटे काव्यचर्चा हुई। फिर शाम को मैं प्रयाग चला आया।

आपका अभाव खटका, पर सवाद सुखकर था।[1] यात्रा बडी अच्छी रही। खूब बादल थे।

सस्कृत की रचनाओ म आप आसानी से कामयाब होगे, यह तो मानी बात है। वहाँ मैंने यही पूछा था कि इम्तहान म आपका नतीजा कही न बिगडे, उत्तर पागल जी से बडा सन्तोषजनक मिला।

आपकी रचनाएँ मैं सुधा को दे रहा हू। आपकी अस्वस्थता अब दूर हो गई होगी।

---

१ आर्थिक विपन्नता के कारण मैं पढना छोडकर रायगढ, राजकवि बनने—चला गया था, यही वह सुखद सवाद था। छायावाद शब्द के प्रथम प्रयोक्ता कविवर श्री मुकुटधर पाण्डेय मुझे काशी से अपने साथ रायगढ ले गये थे।

मैं 'किसान' लम्बी कविता लिख रहा हूँ। वर्णनात्मक है। कह नहीं सकता, कैसी होगी?

हालत वैसी ही है। कहीं आता जाता नहीं। काम मैं जानता हूँ, मैं थोड़ा ही करूँगा, बहुत के लिए आप लोग हैं।[2]

आपका
–निराला

---

२ ऊँचे ऊँचे मुजरिमों की पूछ होगी हश्र में,
कौन पूछेगा मुझे, मैं किन गुनहगारों में हूँ।

× × ×

I have fought my fight
I have lived my life
I have drunk my share of wine
From Trier to Coln there was never a knight
Led a merrier life than mine

२४

112 Maqbool Ganj,
Lucknow
11 9 37

प्रिय आचार्य

बहुत व्यस्त हूं। आपके दोनों पत्र मिले। फोटो आपको अवश्य दूंगा। पर देर होगी।

आप पर इधर तो कोई व्यङ्ग्य मैंने नहीं किया। मैंने सीधे तौर से लिखा था मैं थोड़ा व्यङ्ग्य करूँगा आप बहुत। आपका सत्य-स्नेह ही मुझे आपमें मिलाकर आपको महत्तर करेगा।

निर्मल जी ने क्या लिखा है नहीं मालूम। अभी किताब भी नहीं छपी।

मैंने कल सुधा-सम्पादक को लिख दिया है कि निर्मल जी से पूछकर मुझे निकाल दें[1] वह मुझे ठीक समझेंगे, मुझे विश्वास नहीं।[2]

आपका
निराला

---

१ नवयुग काव्य विमर्श नामक आलोचनात्मक सकलन से।

२ कौन किसे समझता है। पाच वर्षों (—सन '३२) से देख रहा हूँ काशी में जयशंकर प्रसाद की प्रतिमा तो पुजती है, किन्तु पुजारियों को पता ही नहीं, प्रसाद वितरण से शकर का रहस्य नहीं उजागर होता।

निराला तो ऐसा भी लिखते थे कि सब समर्थ —

(१)

लहर रहा नभ चूम चूम आने वह सागर,
जल भरने कवि सरल चला ले छोटा गागर,
मचल गया मन देख निरा छोटा घट अपना,
उधर उमड़ता प्रबल जलधिजल, इधर कल्पना,
घट छोटा था उसका सही मन का वह छोटा न था
उच्चाकांक्षाओं से भरे भावों का टोटा न था।

(२)

झरने की अविराम झड़ी सी रहे लगाते—
कवितामय कविनेत्र सदा आँसू बरसाते,
धोकर युगल कपोल हृदयकन्दर से होकर
मरुस्थल को प्रकट व्यथा सो मानो रोकर,
वह उतरा प्राकृत भूमि में छोड़ कल्पना-वेदना,
था नयन सलिल से घट मिला पूरित और सुहावना।

(३)

भरा हुआ यों सरस सलिल से गागर पाया,
और समाया विमल उसी में सागर पाया।
भाव भरा घट छलक छलककर रह जाता था,
कविता के पद मधुर न जाने, कह जाता था!
घन मण्डल की छाया न थी उसमें श्याम पड़ी हुई,
काले बालों को खोलती कविता आप खड़ी हुई।

(४)

(क्या केवल वह सलिल ? नहीं, कवि का दर्पण था,
बिम्बित जिसमें सब चराचर का जीवन था)
जलदजाल को चीर झरोखे में से शशधर—
झाक रहा था चञ्चल चितवन से जनमन हर,
या चन्द्रमुखी घटपट उलट कवि चकोर को मोहती
था कवि भी उसको जोहता, वह भी कवि को जोहती।

(५)

जल की बूँदें गूंथ उसे पहनाई माला
मोती का सा साज सभी लड़ियों में आला,
बदले में ले अधर सुधारस सिंचित प्याला,
जीवन भर वह अमृत पिया बनकर मतवाला।
हाँ एक बिन्दु में ही उसे सुधासिन्धु दिखला दिया
उसने जो कहलाती सदा कविता कवियों की प्रिया।

— निराला

कविप्रिया २० अक्तूबर सन् '२३

२५

112 Maqbool Ganj
Lucknow
17 1[illegible] 37

प्रिय श्री आचार्य

आपकी विजया लिपि मिली। आपकी रचनाएँ और फोटो मैं कल या परसों अवश्य अवश्य भेजता हूँ। रचनाएँ देखकर भेजते हुए विलम्ब हुआ। अब न होगा। बड़ा दीर्घसूत्र हूँ। भेज चुका होता, जरा दो एक गीत कुछ ठीक करने लगा, फिर काम छोड़ ही दिया। परसों अवश्य भेजूंगा। फिर देर न होगी।

अत्यावश्यक है—१६ शृङ्गार क्या क्या हैं श्लोकोद्धार करके भेजिये जल्द।

कालिदास को नीचा दिखाना मेरा अभिप्राय नहीं। वे मेरे दैहिक मानसिक—दोनों प्रकार के सर्वोत्तम भोज्य हैं।

एक गीत इधर लिखा था[1] —

'उक्ति'

कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल
पास तुम रहो!
मेरे नभ के बादल यदि न कटे—
चन्द्र रह गया ढका,
तिमिर रात को तिरकर यदि न अटे
लेश गगन भास का,
रहेंगे अधर हँसते, पथ पर, तुम
हाथ यदि गहो!

७ ८ ३७
Note —
अटे—अट्=पहुँचे (देहाती प्रयोग)

आपका
निराला

---

१ टैगोर के 'जीवनदेवता' की तरह यह 'तुम' भी एक अपार्थिव प्रेरणा सी प्रतीत होने वाली दिव्य पार्थिवता ही है। एक फूल के खिलने पर भी जैसे वसन्त ऋतु का आगमन व्यर्थ नहीं, कुछ उसी प्रकार इस 'तुम' में भी उपस्थिति मात्र में निराला को सारी दुनिया का सुख सारे संसार की समृद्धि देने की शक्ति है। वस्तुतः मन के विष का पान इसी अमृत चेतना में संभव है। 'तुम' की चाँदनी सी मौजूदगी मन की त्रिविध ज्वालाओं पर शीतल अमृत छिड़कती है, नहीं तो व्यक्तित्व का तत्क्षण त्रिपुर-दाह हो जाए।

२६

112, Maqool Ganj,
Lucknow
25 10 37

प्रिय आचाय,

आपका पत्र मिला। मैं इधर एक हफ्ता बुखार से बडा परेशान रहा। अब अच्छा हूँ।

आपकी रचनाएँ+तस्वीर इसीलिये क पर नही भेज सका। क्षमा। अब भेजूगा, २ ३ दिन मे।

दीघसूत्रता तो मेरे स्वभाव मे आ गई है। रवि बाबू बहुत काम करते रहे हैं करते हैं, मैं तबियत से जो कुछ कर सकता हूँ मैं रवि बाबू नही।

रविबाबू का आदश मैंने नही अपनाया। वे 'अर्कचिगु रलडपने' वाले हैं, मुझे रोज गुरु-लङ्घन करने पडते हैं तरह-तरह के।

मैं वैसा बठा बनिया नहीं कि जिन्दगी भर इस कोठे का घान उस कोठे करता रहूँ।

काव्य मे काम अवश्य करना है, करता हूँ। पर आप लोग तो कल्पना से मुझसे काम लेते हैं। पर बात यह, काम से काम करते थकान आती है, तबियत बिगडती है, आइडिया नही मिलता, कल्पना के घोडे तो उडते ही रहते हैं।

तुलसीदास आपको बहुत अच्छा लगता है, मुझे नही, तो क्या करूँ? लिखूगा दो चार वैसी चीजें और यथासमय आप लोगो की मनस्तुष्टि के लिये, फिर कालिदास को पढकर।

'सुधा मे मेरा बहुत ज्यादा कुछ न जायगा। एक कहानी लिखी है— श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी। प्रसाद जी पर अभी लिखा ही नही।

काव्य म हर मनोभाव की छाप रहनी चाहिये, इसलिए आजकल एसा लिखता हूँ।

'मैं हूँ केवल पल्लव—आसन' कर लीजिएगा। किसलय ठीक नहीं जब भी गम्भीर इसमें अर्थ है। इसमें आइडिया की आगे [illegible] नहीं थी।

आपका
निराला

---

१. १९३७ का [illegible] गुप्ता [illegible] प्रति [illegible] की रचना हुई थी। निराला का दुर्लभ [illegible] लिपि में कविता मेरे पास आई तो मैंने [illegible] की दृष्टि से कुछ शब्दों की ओर [illegible] संकेत किया। 'सुमन' (पुष्प और सहृदय) के [illegible] में किसलय की [illegible] कामना [illegible] प्रतीत हुई थी। 'यदि [illegible]' के [illegible] से प्रेरित होकर मैंने पल्लव [illegible] दिखाई थी, क्योंकि पल्लव (पद + लव) का [illegible] divided [illegible] विस्तार कर अर्थ गौरव [illegible] करना था। जुही की कली का लिखित प्रयोग भी इसी [illegible] से [illegible] है। अस्तु !

अनामिका में न किसलय आसन रहा न पल्लव आसन, उन्होंने पतदल आसन कर लिया। इस [illegible] में फिर भी कुछ [illegible] था।

अनामिका में छपी हुई कविता विराम चिह्नों के अभाव में दुर्बोध हो गई है। यों भी कुछ हेर फेर है। मेरे पास उसका यह आदि मूल रूप है

मैं जीर्णसाज बहुछिद्र आज
तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन,
मैं हूँ केवल किसलय—आसन
तुम सहज विराजे महाराज !
        ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
        मैं हूँ वसन्त का अग्रदूत,
        ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत
        मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि !
तुम मध्य भाग के, महाभाग,
तरु के उर के गौरव प्रशस्त,
मैं पढ़ा जा चुका पत्र, न्यस्त,
तुम अलि के नव रस रंग राग।
        देखो पर क्या पाते तुम "फल"
        देगा जो भिन्न स्वाद रस भर,
        कर पार तुम्हारा भी अन्तर
        जब निकलेगा तरु का सम्बल ! —
फल—सर्वोत्तम नायाब चीज
या तुम बाँधकर रँगा धागा
फल के भी उर का, कटु त्यागा,
मेरा आलोचक, एक, बीज !

२७

C/O Pdt Ramdhani Dwivedi,
Sherandaz Pur, Dalmau
(Rai Bareli) U P
28 11 37

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र लखनऊ से मुझे यहा मिला। आपकी पूरी आलोचना 'माधुरी' म निकल चुकी है १३ पृष्ठो मे अन्तिमाश नवम्बर के अक मे। पाण्डेय जी का पाथ्य पुत्र सख्त बीमार था, इसलिए उन्होने आपके पत्रो की तरफ ध्यान नहीं दिया शायद। एक और भजिये।

मैं प्रयाग होकर यहाँ आया। पाठक जी नौ महीने स बीमार, अस्थिशेष रह गये हैं। इधर प्रसाद जी का सवाद आपने पढा ही होगा। पहले की तरह चुपचाप रहता हूँ।

आपका उतना सा काम भी गीता का नही कर सका।[1] ज्वर के बाद जो कमजोरी आई वह अब तक है। और बहुत-सी बातें हैं जो पत्र म सकुचित

---

१ मैंने प्रेस मे देने से पहले 'रूप-अरूप' की पाण्डुलिपि अवलोकनार्थ भेज दी थी। ताल की दृष्टि से मेरे कुछ गीत उन्हे अगेय जान पडे थे। मैं गाता हूँ

Because the road was steep and long
And through a dark and lonely land,
God set upon my lips a song
And put a lantern in my hand

बजा छिन्न तार,
सुनी जो न, मधुर वही वीणा झकार!
मरु का मग, लगती है, पग पग पर प्यास
अजलि भर मिला नीर जो, वह तो क्षार!
पिया जो न वही बिन्दु सुधा सिन्धु धार!
वह पतझर जो मर्मर भरता मन मे,
विजय फल कहाँ कि गले पडे फूल हार'
वही जो न, बस वही वसन्त की बयार!
आँखों देखा अपनो जो था सपना,
पाया क्या माया का मधु हाहाकार!
ज्ञान दग्ध प्राण छेड प्यार का मल्हार!
—रूप-अरूप

होती है। फिर मैं यहाँ भी भजनों के उद्देश्य से, ले आया हूँ। पर चूँकि यह सिन्-बोर्ड से लगा हुआ है इसलिए भय है कि डाक से भेजने पर दबाव से टूट जायगा। आप लिखें तो भेज दूँ अगर आप को लेने में चिन्ता न हो तो रहा दें। और, गुरु से अमीर तक पूरे आप भेजें तो देखने की जरूरत होगी। जैसा आपको जान पड़े। मैं यहाँ पन्द्रह दिन और रहूँगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस बार के पुरस्कार का निर्णय—इस बार भी दो हैं मंगलापुरस्कार—मेरी 'गीतिका' अपनी ओर से प्रतियोगिता में रखने का विचार किया था। मुझे चिट्ठी लिखी थी। पर मैंने प्रतियोगिता में जाने से इनकार कर दिया है।

पिता की मदद न मिलने से कुँवर चन्द्रप्रकाश जी की एम० ए० फाइनल की पढ़ाई रुक गई।

और कुशल है। इति।

आपका
निराला

कितना निठुर यह उपहास !
जो अजाने हो गया,
वह था मधुर मधुमास !
कितना निठुर यह उपहास !!
अश्रु कण बहकर जिस
मैंने बहाया हाय !
सुमन रूप धरे वही था—
हृदयहारी हास !
कितना निठुर यह उपहास !
स्वप्न सुख की आस में
सोया रहा दिन रात
बह गया नित लौट—
शत शत बार आकर पास !
कितना निठुर यह उपहास !!

—रूप अरुण

२८

श्री हरि

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला।

आपको निश्छल होकर कहता हूँ, आप सत्य कवि हैं। आपकी रचना मुझे पूर्ण आनन्द देती है।

आप मेरी परख को नहीं जानते मैं किसी एक ढर्रे की पसन्द रखने वाला व्यक्ति नहीं।

इसकी अनेक कलात्मक बातें हैं—आप संस्कृत से ही जानते हैं—भिन्न प्रान्त का कवि भाषा और प्रकाशन में किसी भिन्न प्रान्त के कवि से पार्थक्य रखता हुआ भी उसी की तरह श्रेष्ठ और मौलिक है, आनन्द देने वाला। आपमें भी मुझे ऐसी बातें मिलती हैं। आपकी यह चीज भी बड़ी सुन्दर है।

अब तक जो मैंने आपकी रचनाओं को देखा नहीं—वास्तव में देखना बहुत थोड़ा है सुधार के लिये,—सिर्फ वहाँ जहाँ एक-आध पद में संगीत की तान ठीक करनी है इसका कारण कुछ तो—

यार से छेड़ चली जाय असद
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही

—है, कुछ मेरी बीमारी और लापरवाही, कुछ प्रसाद जी के प्रयाण का गहरा प्रभाव।

मैंने इधर कुछ नहीं लिखा। 'शास्त्रिणी' गर्मियों की और अस्वस्थ क्षणों की रचना है। अब काम शुरू किया है। ३ ४ छोटी बड़ी चीजें लिखी हैं। आपका काम भी आज ही कल कर रहा था। चित्त एक ओर लगा। दोनों एक साथ में वहीं भेज दूंगा मावूली से बँधाकर। दूसरा अभी तैयार हो रहा है, छोटा है, पर कुछ को अच्छा लगा है।

आपकी अड़चनें क्या आपके आचार्य भी दूर नहीं कर सकते—उपस्थिति-वाली? बाकी तो आपको ही हटानी हैं।

बाहरी जीवन में परीक्षा फल रवि रश्मि की तरह फलित है, यह सत्य है पर मेरी आँखों में तो वहाँ चकाचौंध ही चकाचौंध है, कुछ देख ही नहीं पड़ता। आप यथोचित करें। पर परीक्षा फल स्वास्थ्य फल से अवश्य अधिक स्वाददार किसी के लिये न होगा। उचित संयम और साधारण अध्ययन ही मेरी दृष्टि में विधेय है।

'कला' के पेपर पर पत्र ऐसे ही लिख लिया उस आफिस से उठा लाया था आपकी यह रचना, 'कला' को दे दूँगा। माधुरी आप ही मगा लें।

मेरी दृष्टि में हाँ, आप पराजित हैं, पर वहाँ 'परा' उपसर्ग नहीं, विद्या है।

११३ मकबूल गज
लखनऊ
१२ १-३८

आपका
निराला

चटुल चरण धर मलिन पुलिन पर री,
मधु-संध्या उतरी,
नवल नील द्युति, अमत मधुर स्मिति री
गति शिंजन सिहरी !
अघन गगन, घन-नखत मगन मन
तरल नीर पर धीर समीरण री,
सरि-उर भर लहरी !
रख अशक रस-कलस अक मे
नमित नयन ऋजु अयन बक में री
लौटी ग्राम परी !
—रूप-अरूप

२६

C/o Pdt Vachaspati Pathak Esqr
The Leader Press,
Allahabad
14 3 38

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। बड़ा दुःख यह हुआ कि मैंने आपके इससे पहले वाले पत्र का उत्तर ३५ नं० फाय होस्टल भेजा था—वह पत्र आपको नहीं मिला, उसके भीतर मेरा इधर का लिया अब तक के चित्रों में सर्वश्रेष्ठ चित्र था (फोटोग्राफ)। वह पत्र मुझे वापस भी नहीं मिला। इससे मालूम होता है, किसी विद्यार्थी ने लेकर चित्र के लोभ में पत्र आपको नहीं दिया।

मैंने सोचने की गलती की। सोचा, आपने ३५ नं० फाय होस्टल को मङ्गलाश्रम बना लिया है, जैसा कवि लोग करते हैं।[1]

उस पत्र में मैंने लिखा था, आप इम्तहान देकर लखनऊ चले आइये। कापी दिखा जाने पर प्रेस दीजिये। पर, अच्छा है, 'तनिमा' के दो फार्म छप चुके हैं देखने की कोई बात थी ही नहीं।[2] जैसा कुल्ली भाट में मैंने लिखा है दर्शन एक है, व्यक्तिभेद होता है। आपकी मेघ पर रचना[3] मिली तो देखूँगा।

---

१ मङ्गलाश्रम लङ्का पर एक लॉज था।

२ पहले 'रूप अरूप' का नाम 'तनिमा' रक्खा था। हिन्दी में यह शब्द अपरिचित विदेशी-जैसा जान पड़ा तो छपे फर्मों से तालमेल बनाए रखने के लिए अनछपे फर्मों वाले भाग को 'नीलिमा' नाम दे दिया। इस प्रकार भीतर 'तनिमा' और 'नीलिमा' नामक दो भागों में मेरे एक सौ एक गीत संकलित हुए। ऊपर आवरण पृष्ठ पर ही 'रूप अरूप' नाम जा सका।

३ मेघ रन्ध्र में मन्द्र सान्द्र ध्वनि—
डिम डिम डिम उन्मद मृदङ्ग की !
मन्द्र-समुद्र मन्द्र रव रसना,
नाच रही कस दस दिशि-वसना,
रिमझिम रिमझिम झनझुन झनझुन,
छुनकिट तत्थम रन रन रुन रुन,
छुमछुम छननन झननन झुनझुन,
मुक्तकेश सरसा नीलाम्बर !
हरित-सस्य-अञ्चल चञ्चलतर !!

आजकल आप रवि बाबू को पढ़ रहे हैं, अच्छा है।

मैं कुल बातों में अलग, अकेला रहना चाहता हूँ।

रवि बाबू के-जसे निबन्ध, ठीक है लिखूँगा, हो सका तो। अभी तो ऐसा ही चलेगा।[४]

एक कविता भेजता हूँ। देखिए। मैं अच्छा हूँ। ३/४ दिन बाद लखनऊ जाऊँगा

ये किसान की नई बहू की आँखें
नहीं जानतीं जो अपने को खिली हुई—
विश्व विभव से मिली हुई,—
ये किसान की नई बहू की आँखें
ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बन्द कर पाँखें,
भीत पकड़ जाने को हैं दुनिया के कर से—
बढ़े क्यों न वह* पुलकित हो कैसे भी वर से।

६ ३ ३८

*वह—वर, हाथ।

आपका
निराला

ताल ताल पर उच्छल-उच्छल—
चल जल छलछल टलमल टलमल,
कुलकुल कुलकुल कलकल कलकल,
प्रति पदगति मति जल तरङ्ग की!
तड़ित भङ्गिमा भङ्ग अङ्ग की!! —मेघगीत

मुकुल मुख फूलो ना, फूलो ना!
देखो रेख सुनो धुनि पग की
भूलो ना भूलो ना!
छुटपन के छोटे दिन रीते
आँखमिचौनी के दिन बीते
परछाईं-सी पास खड़ी मैं,
छू लो ना, छू लो ना!
रिमझिम फुहिया लोचन घन की
—जीवन में बहार सावन की,
प्यार-चपल उर के झूले पर—
झूलो ना झूलो ना! —मेघगीत

४ तब ललित निबन्ध या व्यक्तिगत निबन्ध जैसे शब्दों का प्रचार नहीं हुआ था। मेरे पाठ्यक्रम में या बेकन से स्टीवेंसन तक के निबन्ध थे, किन्तु रवि बाबू के जैसे निबन्ध मैंने उसी वय में लिखा था।

३०

C/o Pdt Vachaspati Pathak Esqr
The Leader Press,
Allahabad
18 3 38

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। आपकी दोनों रचनाएँ बहुत पसन्द आईं। मेघगीत बड़ा सुन्दर है।

काशी की तरह यहाँ भी दंगे की आग भड़की है जोरों से। पचासों हताहत हो चुके हैं। कल मैं हिन्दुस्तानी अकेडमी की मीटिङ्ग थी, अब क्या होगी? लखनऊ २१ को जाने का विचार था अब दो एक रोज रहकर जाऊँगा। आप लिखिये आपकी परीक्षा कब समाप्त होगी।

चित्र का एनलार्ज्ड रूप भी है पूरे कमरा साइज का लिया गया था, यह भेजा हुआ छोटा किया हुआ रूप है। और बड़े आकार में एनलार्ज कराया जायगा।

रवि बाबू की तरह के अनेक अर्थ हैं। लिखता भी हूँ जब वैसी तबियत होती है, कुछ। पर रवि बाबू अब जमाने के विचार से दूर हो गये हैं, यह आधुनिक साहित्य के विचार से लिख रहा हूँ।

मेरी दृष्टि में रवि बाबू एक श्रेष्ठ कवि और साहित्यिक हैं, बस। उनमें कमजोरियाँ भी अपार हैं। आपको अच्छे इसलिए लगते हैं कि रवि बाबू भी 'कालिदासो विलास' हैं। फिर बातें करूँगा इस सम्बन्ध में मिलने पर।

मेरी कई चीजें और हैं काव्य में, नई। फिर देखियेगा। बहुत बहिर्मुख न हूजिये। जो कुछ होता जा रहा है देखते जाइये, नस जैसे निकलता जाय। अभी तो 'अनामिका' और 'तुलसीदास' निकल रहे हैं। फिर 'गाथा' कथा की कहानी का ही रूप होगा।

आपको और अधिक करना है पर विजयी धय और अध्ययन होना है।

ठूठ

ठूँठ यह है आज!
गई इसकी कला गया है सकल साज!

\+ + +

केवल वृद्ध विहग एक बैठता कुछ कर याद![1]

—निराला

११ ६ ३८

---

1 Defeat rebellion and the barren bleak feeling of the modern world are in line A deep sense of tradition places the modern in contrast with the ancient sources of vitality and finds its peculiar strength in this very power of contrast We may think of the Waste Land in this connexion

—The Constant Pursuit

३१

112 Maqbool Ganj,
Lucknow
16 5 38

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र कल हस्तगत हुआ। कल ही मैं कलकत्ते से यहाँ लौटा सात रोज रह कर। देहरा से गया होकर जाते और आते आपकी याद की। आप अस्वस्थ हैं पढ़कर बहुत चिन्तित हूँ।

ईश्वर की इच्छा से आप स्वस्थ हो जायँ, प्रार्थना है। इम्तहान की मिहनत तथा चिन्ता से चित्त उद्विग्न होकर रोग की वजह बनता है। कुछ भोग है, आपको ईश्वर नीरोग करे। यथासमय आपके अन्य कार्य भी पूरे होंगे, किताब भी निकलेगी।

इलाहाबाद से अब तक मैंने आपकी बहुत याद की। फैजाबाद यू० पी० हिन्दी साहित्य सम्मेलन में आपको बुलाना चाहा लेकिन सफल न हो सका कारण मैं स्वयं बहुत उलझा हुआ हूँ काम में।

लड़के की शादी है रामकृष्ण की। विवाह एक मित्र की कन्या से कर रहा हूँ। लड़की मेरे गाँव की ही है बंगाल में पदा हुई वहीं साधारण बँगला पढ़ी और रही। इस समय वह और उसके अभिभावक लखनऊ में हैं। शादी, मुमकिन, आषाढ़ में हो। फिर लिखूँगा आपके स्वास्थ्य समाचार लेते समय।

कु० चन्द्रप्रकाश, सुना है यहाँ हैं। आपके समाचार मिलने पर उनसे कहूँगा। राम विलास जी मसूरी गये हैं प्रोफेसर सिद्धान्त के साथ।

इधर कुछ लिखा है, पर नकल करने तक की फुर्सत नहीं फिर भेजूँगा ऐसा ज्यादा कुछ लिखा भी नहीं, कारण उलझन में रहा।

आप इलाज करायें और चिन्ता छोड़ दें ईश्वर अच्छा ही करेगा।

आप ही लोगों की तो हिन्दी को जरूरत है।

—सस्नेह

आपका
निराला

३२

११२, मकबूलगंज, लखनऊ
२५ ५ ३८

प्रिय आचार्य

आपके पत्र का उत्तर लिख चुका हूँ। आप स्वस्थ हो रहे होंगे। जल्द अपने समाचार दीजिये। एक आवश्यक काय से आपको फिर लिखना पड़ा।

मुझे लखनऊ के रेडियो स्टेशन से हिन्दी और संस्कृत के नाटक और प्रहसनों पर पन्द्रह मिनट रेडियो में बोलने का आमन्त्रण मिला है। आप स्वस्थ हो तो पत्र पाते ही संस्कृत के नाटक और प्रहसनों की सूची, नाटककारों के नामों के साथ, भेज दें। जो मेरे न जाने हुए नाटक और प्रहसन (संस्कृत में) होंगे मैं मालूम कर तयारी कर लूंगा।

४ जुलाई बोलने की तारीख है शाम सात बजे। अभी मैंने स्वीकार नहीं किया। सविशेष आपका पत्र मिलने पर। इति।

आपका
—निराला

कवित्त

जला है जीवन यह
आतप में दीर्घकाल,
+ + +
किन्तु पड़ी व्योम उर,
बन्धु नील मेघ माल ![1]

१६ ५ ३८

1 In Nirala it does not take a great deal of allusions and implication to direct the mind to the experience—the experience is all there whether we look at it literally or metaphorically

जला है जीवन यह आतप में दीर्घ काल

The sense of defeat in the world which is so real a part of Nirala s real experience broadens into a sense of the hard the difficult the devoted the bare which must hold itself a little stiff and aloof

(continued on next page)

३३

११२, मकबूल गंज, लखनऊ
५-६-३८

प्रिय आचार्य,

आपके पत्र मिले। आप अब स्वस्थ हो रहे हैं अनुमान है। आपने साफ-साफ नहीं लिखा।

जल्दबाजी अच्छी नहीं। धीरे धीरे प्रसार होता ही है विद्वत्ता, अध्ययन और मननशीलता का।

मैं इधर बहुत दिनों से माधुरी-आफिस नहीं गया। 'कुल्ली भाट' का बाकी हिस्सा लेकर दो चार दिन में जाऊंगा।

रेडियोवाली स्पीच मैंने कैंसिल करा दी क्योंकि रुपये कम मिल रहे थे। यह तो बिजनेस है, बिजनेस में धोखा खाना ठीक नहीं। अगर मुझमें शक्ति होगी वे फिर बुलायेंगे मुझे चिन्ता नहीं फिर इसी साल यहां रेडियो-स्टेशन खुला है।

मेरे पुत्र चि० रामकृष्ण का पहली जुलाई को विवाह है। इसी उलझन में हूँ। मेरी 'नर्गिस' कविता आपने देखी होगी, 'भारत' में छप चुकी है। इधर

(continued from last page)

The idiom is by turn abruptly modern and graciously quietly traditional

बन्द हुआ गुञ्ज, धूलि धूसर हो गये कुञ्ज

and then the turn

किन्तु पड़ी व्योम उर बन्धु, नील मेघ माल

The impulse of this kind of poetry is in a delicate and genuine rightness of experience in images that are the directing modes of experience in poetry The complex contrast of पड़ी व्योम-उर नील मेघ माल *with all the rest* of the *poem* is an arresting symbol of the satisfactory world of beauty at the heart of defeat

The Constant Pursuit page 52

एक सात पक्तियो की लिखी है नासमझी—

समझ नहीं सके तुम,
हारे हुए झुके तभी नयन तुम्हारे, प्रिय ![1]

१५ ५ ३८

स्वस्थ होकर अपना निश्चय कीजिये, तदनुसार लिखिये। मैं साथ हूँ।

दिलबहलाव के लिए तो कुछ दिन यहाँ आकर रहिये। रूप-अरूप' निकल गया ?

आपका
निराला

---

१ मैं उन दिनो रामकृष्ण जी के विवाह म शरीक होने आकर उन्ही के साथ रह रहा था। जिस रोज यह कविता सुधा' मे छपकर आई, अमीनाबाद पार्क की ओर चाय पीने के लिए चलते हुए अध बीच मे बोले "कसी लगी तुम्हे ? देखा नही डायमड कट है ! मगर गवाहियाँ गुजरेंगी, दरबारी किस्म की पद्यबद्ध वक्तताओ की ओर से ! सब जज के चेहरे की तरफ टकटकी लगाए हुए हैं। सफाई मे मेरी बहस बेकार साबित हुई है !

कला की चर्चा छिडी घातक हमला हुआ। कुहराम मच गया कि निराला ने जितनी भी चोटें की, बाएँ हाथ से की।

'मुसल्मान की दुकान म पीना पसन्द करोगे ? हिन्दुओ से अच्छी बनाते हैं ये लोग।

अब एसी कविता पर दस रुपये भी मिलें तो हौसला बरकरार रहे। नही तो मरा क्या, हिन्दी

अभी तो सिफ चाय ही पिला सकता हूँ।'

३४

112, Maqbool Ganj
Lucknow
16 6 38

प्रिय आचार्य

माधुरी का भेजा आपका 'गीतिका' पर वाला लेख नही देख सका। वही उलझन है। मेरे चिरञ्जीव का आषाढ शुक्ला चतुर्थी पहली जुलाई का विवाह है। आपको निमन्त्रण देता हूँ।

विवाह बहुत साधारण रीति से कर रहा हूँ।

लडकी मेरे गाँव की है। कलकत्ते मे उसके माँ-बाप रहते थे। वही पैदा हुई वही पली और पढी लिखी। साधारण बँगला, हिन्दी और अँगरेजी जानती है सुलक्षणा और सुन्दरी है। पहले इस खानदान का अच्छा जमाना था, अब साधारण स्थिति है। दहेज के अभाव (न दे पाने) से लडकी के लिए योग्य वर न मिल रहा था मैंने दहेज छोडकर विवाह स्वीकार कर लिया मुझे लडके के लिय कई हजार का दहेज अन्यत्र मिल रहा था। तीन महीने से इसी चक्कल्लस में था।

फिर, आप आ सके तो बातें करूँगा। इति। आप स्वस्थ होंगे।

श्री गणेशाय नम

श्रीमन,

मेरे पुत्र चि० रामकृष्ण त्रिपाठी का शुभ विवाह मेरे ही गाँव के रहने वाले प० शिवशङ्कर जी शुक्ल की आयुष्मती पुत्री कुमारी फूल्दुलारी से, लखनऊ म, आषाढ शुक्ला चतुर्थी पहली जुलाई, १६३८ को होना निश्चित हुआ है। आपसे सविनय प्रार्थना है कि उक्त अवसर पर पधार कर आप वर और वधू को अपना स्नेहाशीर्वाद प्रदान करें। इति शम्।

सविनय
निराला

११२, मकबूल गज,
लखनऊ
४ ६ ३८

३५

मार्फत पं० वाचस्पति पाठक,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद
९-८-३८

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला। इससे पहले भेजा भी मिला था। उत्तर की कुछ सूझी ही नहीं, कहूँगा।

इधर दस बारह दिन हुए माधुरी-कार्यालय में आपका लेख गीतिका पर वाला, देखा था। कुछ अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा इसलिए नहीं कि उसमें मेरी काफी तारीफ नहीं है बल्कि इसलिये कि जमाना जितना बढ़ता जाता है लोगों की बुद्धि उतनी मन्द होती जाती है।

भले और बुरे का प्रभाव मनुष्य मात्र पर पड़ता है यह ठीक है कोई चाहे तो कह सकता है—चूंकि तुम्हारे मुआफिक कम ठहरा, लेख इसलिये तुम्हें पसन्द नहीं आया। पर मैं अपने को इतना कमजोर नहीं पाता तारीफ में भी नहीं।

आपने रवि बाबू के इस नीचे दिये छन्द के लिये जैसा लिखा है कि गीत सीधे उतर जाता है, बिना मिहनत के मन में वैसा ही आप बतला भी सकेंगे कि इन कारणों से उतरा। मुझे शङ्का है मेरे दिल में नहीं पैठता।

— को तुहुँ बोलबि मोय ?
हृदि हासि तव मधुऋतु धावल,
शुनयि बाशि रव पिक कुल गावल,
विकल भ्रमर-सम त्रिभुवन आवल
चरण-कमल युग छोंय !

इस छन्द में जिसका परिचय या नाम कवि जानना चाह रहा है, उसे सामने देख रहा है यह इस पहली पंक्ति से सूचित है बाद को और साफ हो जाता है, जब उसकी हँसी देखकर मधुऋतु दौड़ता है,—वंशी सुनकर कोयलें गाती हैं और विकल भौंरे की तरह तीनों लोक आकर चरण कमल युग छूता है।

आपने भी रवीन्द्रनाथ की तरह बात-की बात में देख लिया है इस मूर्ति को, अच्छा, पूरी तस्वीर न सही, ये पैर ही मुझे आप दिखा दीजिए।[1] अगर इन पैरों के देखने के लिये किसी विशेष दर्शन की[2] जरूरत हो तो वह भी बताइयेगा।

"तरन्तीवाङ्गानि स्खलदमल लावण्य-जलधौ" वाली आलोचना में भी यही हाल है, आपके लिये नहीं, मेरे लिये।

जब 'स्खलत्' 'लावण्य' है, तब वह "जलधि" कैसे होगा, यह आप समझ भले ही लें, समझा न सकेंगे।[3]

सोता, गड्ढी, गढ़ा झरना और नदी समन्दर नहीं।

मल' और 'जल' के अनुप्रास की भूख इसे कहते हैं।

फिर स्थिति की शङ्का है कि किस जगह (काव्य के स्थान में), अङ्ग समन्दर पर तरते-से हैं। जरा लिखियेगा।

---

१ पैर नहीं, चरण-कमल कृष्ण के कौन किसे दिखा सकता है? उपनिषद् कहती है यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्। हाँ, राधा की आलोकमयी दृष्टि ने उन अलौकिक सामान्य चरण कमलों के अवश्य दर्शन किए थे।

२ कोरे दर्शनशास्त्र की दुहाई मैं न दूंगा। अरूप के आग्रही रूप का रस क्या जानें? फिर भी नारद और शाण्डिल्य से सहायता की आशा की जा सकती है। भागवतकार के अतिरिक्त रूप और जीव गोस्वामी पथ प्रदर्शक हो सकते हैं। भक्तिरूपशान के अनन्य अनुभवी प्रह्लाद कह सकते हैं

या प्रीतिर विवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्माऽपसर्पतु।

३ मैं समझा सकता हूँ। स्खलत्' का अर्थ 'रिसता हुआ' नहीं, 'लहराता हुआ' है। स्वयं कुन्तक 'स्खलदमल-लावण्य-जलधौ' का पर्याय 'समुल्लसद्-विमल-सौन्दर्य सम्भार सिन्धौ" बताते हैं। यहाँ लावण्य रिस नहीं रहा, सौन्दर्य का सागर लहरा रहा है।

कवि ने वर्तमान काल की क्रिया में शतृ प्रत्यय का विधान जानबूझ कर किया है। वह बहुत कुछ उसी कोटि की अभिव्यक्ति दे रहा है जिस कोटि की अभिव्यक्ति वेदव्यास ने दी है

'आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।'

'खुलती मेरी शफाली' आपको याद ही है। नही तो देख लीजियेगा। वैसा एक-एक गीत तुलसी सूर कबीर और मीरा से उद्धत करके भेज दीजियेगा, यानी वैसे ही ढग का।

कवि कहता है सौन्दर्य का सागर निरन्तर लहरें ले रहा है। जिसमे उस (तरुणी) के अङ्ग अङ्ग तरते से जान पडते हैं। सागर हर घडी लहरा रहा है अङ्ग सब समय तर रहे हैं।

रवीन्द्रनाथ का—

अङ्गे-अङ्गे यौवनेर तरङ्ग उच्छल

मे यह सौष्ठव नहीं है। 'यौवन की उच्छल तरङ्ग' मे शील की भङ्गिमा नही—अनङ्ग रङ्ग है। व्यङ्ग्य कुछ भी नही सपाट रूप भर है। 'तरती वाङ्गानि' की बारीकी देखते ही बनती है।

आप मुझे कहने दें रवीन्द्रनाथ के—

'अङ्गे अङ्गे यौवनेर तरङ्ग उच्छल' की तुलना मे आपकी अभिव्यक्ति अधिक आवर्जक है

पर अङ्ग अङ्ग को
लहरी तरङ्ग वह प्रथम तारुण्य की।"

इसमे 'घेर' का कोई जवाब नही। तारुण्य उसके अङ्ग अङ्ग को घरकर तरङ्गित होता है। वह अपनी तरफ से मासूम है। चाह कर भी लहरो के थपेडे से नही बच सकती।

किन्तु यदि आप अमल और जल के अनुप्रास का लोभ संस्कृत कवि मे दिखलाते है तो पूछता हूँ—लहरी तरङ्ग क्या है? यह क्या अङ्ग अङ्ग के नाद साम्य द्वारा बिम्बात्मक सौन्दर्य को अधिक उद्दीप्त करने का लोभ नहीं है? लहरी लहर वह भी तो चल सकता था फिर इस अनुप्रास से क्यो न काम चला? लहर का लहराना मुहावरे मे है तरङ्ग का लहराना नहीं।

मेरी समझ से संस्कृत कवि ने नाद सौन्दर्य के अतिरिक्त 'जलधि' का लावण्य के साथ अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया है। 'जलधि' का कोई भी दूसरा पर्य्यायवाची शब्द तरति के सन्दर्भ मे लावण्य के साथ सटीक नही बैठता।

मेरा अहङ्कार पीछे है संस्कार की बात पहले। आप जानते हैं हिन्दी, बँगला मे मेरी एक-सी रुचि है। मुझे संस्कृत की सी कलात्मक पूर्णता कहीं नही मिलती मैं क्या करूँ? पन्त जी लिखते हैं —

सजा दीर्घ सासों को भरी सजा सटे कुच कलशाकार
पलक पाँवडे बिछा खडे कर रोओं मे पुलकित प्रतिहार
बाल युवतियाँ तान कान तक चल चितवन के बन्दनवार,
देव तुम्हारा स्वागत करती खोल सतत उत्सुक दृग द्वार!

"दिन दीनो' शब्द का प्रयोग महादेव के लिये गोस्वामी जी ने रामायण में किया है वह क्यों नही किसी को खटका, समझ में नही आता।" दिन दीन

अब इसके मुकाबले संस्कृत का यह पद्य देखिए, पंत जी की पंक्तियाँ जिसकी छवि की छाया भर हैं —

अत्युन्नत स्तनयुगा तरलायताक्षी
द्वारि स्थिता तदुपयानमहोत्सवाय
सा पूर्णकुम्भनवनीरजतोरणस्रक्—
सम्भारमङ्गलमयत्नकृतं विधत्ते ।

आप पहले कालिदास के 'पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता" की मेरी व्यन्जनात्मक विवृति पर अश्लीलता की बात लिखकर मुझे मौन कर चुके हैं, यदि यहाँ भी 'अत्युन्नतस्तन-युगा' आपको अश्लील प्रतीत हो तो मुझे सहज जिज्ञासु भाव से पूछना पड़ेगा

'सजा सटे कुच कलशाकार'

—पन्त

या

'उकसे ये अँबियों से उरोज'

—पन्त

क्या है? संस्कृत का अश्लील हिन्दी में श्लील कैसे हो जाता है? क्या कोई कालिदास से भी बड़ा कवि हो सकता है? अस्तु,

उक्त भाव को महाकवि अमरुक ने और ऊपर उठा दिया है —

दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता दृष्ट्यैव, नेन्दीवरैः
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो, नो कुन्दजात्यादिभिः,
दत्तः स्वेदमुचा पयोधरयुगेनार्घ्यो न कुम्भाम्भसा,
स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मङ्गलम्।

४ गोस्वामी जी का प्रयोग लोगों को अन्ध भक्ति के कारण नहीं खटका। दोष युक्त तो वह है ही। मम्मट ने इसे 'अवाचक' दोष कहा है। तद्विच्छेदरुजाऽधकारितमिदं दग्धं दिनं कल्पितम् का उदाहरण देकर बताया है—'अत्र दिनमिति प्रकाशमयमित्यर्थं वाचकम्।

मैं यह मानता हूँ, यहाँ वह दोष नही। रात में खिलनेवाली दिन में दीन दिख रही है। किन्तु 'दिन दीन' के तत्पुरुष ने शब्द और अर्थ की शक्ती पर चोट की है। दूसरे के लिए यह दोष न भी हो—

"आओ आओ मृदु पद
मेरे मानस की कुसुमित वाणी !'

लिखने वाले निराला के लिए है। इसमें गम्भीरता की कमी नही, प्रसन्नता नहीं है।

म तो और बहुत-सी बातें जान-बूझकर रक्खी होगी लिखने वाले ने। "बजी री मैं बीन" गाने उसे देर न होगी, जबकि 'री रे' मे यह अक्सर प्रयोग लाता है।

इसी से 'स्पष्ट ध्वनि' वाले पद के मुकाबले 'मधुऋतु पावल' को रखने से साधारण लोग भी कुछ रस लेंगे, अगर सीधे न उतार कर कुछ बाद की भी बात होगी।"

---

५ स्पष्ट ध्वनि आ धनि, सजी यामिनी भली
मन्द पद आ, मन्द कुञ्ज उर की गली
मञ्जु, मधु गुञ्जरित अलि दल समासीन।
के मुकाबले 'मधुऋतु पावल' को मैं नहीं रख सकता। कारण,

हेरि हासि तव मधुऋतु धाओल,
शुनयि वाँशि रव पिक कुल गाओल
विकल भ्रमर-सम त्रिभुवन आओल,
चरण कमल युग छोंयें।
की तुँहु बोलवि मोय?

इन दोनो के शिल्प और कथ्य म असाधारण अन्तर है। निराला के कठिन ताल वाले गम्भीर सङ्गीत की तुलना म टगोर का सङ्गीत यात्रा पार्टी वाला है। बाउल या कीर्तन या भाटियाली म सुरों की गतिमती दर्दीली टेर प्राणों के पर्दे पार करने वाली होती है लय ताल की मन्थरता लिए हुए उस्तादी नही होती।

फिर हेरि हासि' वाली उक्ति म मार्मिकता चाहे जितनी हो ऋजुता उससे भी कही बढ़कर है। राधा की मुग्ध विशृंखलता साकार हो उठी है।

निराला वाले गीत म एक अजब सा बाँकपन है, अनोखी नाटकीयता है। दोनो दो स्तर की प्रेयसियाँ हैं। वयोभेद भी है। उसका (निराला वाली का) उदगार प्रौढ़ि प्रकंप लिए हुए है।

फिर भी तुलनात्मक विवेचन करने पर कला का निखार निराला म दर्शनीय है।

कैसी बजी बीन?—धुन सुनकर बावरी हुई सी पहले वह चिहुकती है कि यह ऐसी कैसी बाँसुरी बजी जो दिन भर दीन दिखने वाली मैं सहसा सज गई!

'वह कौन है जो प्राणो म बाँसुरी छेड़ रहा है—मिलन का मधुर सुर सुना रहा है कि जिसके अमित उल्लास के कारण अभी यह मायावी ससार चादनी-चादनी हुआ दिख रहा है—उसकी तामसी ईर्ष्या घुल गई कठोर दम्भ धुल गया है? कोई मेरी ओर तर्जनी उठाने वाला न रहा और उस सजल स्वर म मैं मछली की तरह डूबकर किलोल रही ■?

इसी तरह आपकी कुछ बातें हैं उनके ही विस्तार से। "उत्तानपाद" पंक्तियों को ब्रजभाषा बनाकर देखिये, बात बन जायगी, फिर सीधे उतरने में दिक्कत न होगी।

"कारण महाकारण' को निष्कारण कर के चुप की साधना कर रहा हूँ इसलिए पत्र लिखने की रुचि नहीं होती—आपके असफल का क्या अर्थ है ?"

'हाँ हाँ मैं साफ साफ सुन रही हूँ, सुरीली बाँसुरी टेर रही है सखी आ कैसी नशीली चाँदनी रात है यह ! होले-होले चली आ, डर की कुञ्ज गली बन्द है। डरा सहमन की कोई बात नहीं इस ओर ताकने झाँकने वाला कोई नहीं है। सुन्दरि, देखती नहीं जरा-सी मीठी गूंज सुनकर वह कली कैसे फूल पर विराज गई !"

"व्यतिरेकी अन्तर्ध्वनि है "और एक इधर तू है जो टेर पर टेर दिए जा रही है मगर हिलने का नाम तक नहीं ले रही है ! अब भी उधेड़-बुन में पड़ी है, अब भी मीन-मेख निकाल रही है ? अरी, अब आ भी जा !"

कली जैसे चित्त की सहनायिका है जो अपने दल (मानवीकृत) से मिल चुकी है वह भी खुशामदी भौंरों की मीठी मीठी गुनगुनाहट सुनकर ! कैसी नर्मदिल है कली जो जरा सी प्यारी गूंज सुनते ही उमग उठी झटपट अपने दल से मिल गई और इधर एक यह एसी न जाने कैसी है जिसे सुरों का स्पर्श चंचल नहीं कर रहा, रूप की चोट नहीं लग रही !

कली को दल-समासीन' दिखलाने का तात्पर्य तीव्र उद्दीपक वातावरण सिरजना ही हो सकता है। फिर वह तो नन्ही-नादान कली भर है जो भौंरों की चाटुकारिता की विवेकिनी नहीं महज मीठी धुन सुनकर पल भर में पुलक उठी है, और यह ? यह तो बाँसुरी के सुरों की मर्मज्ञा है, स्वर क्या कहते हैं खूब समझती है, फिर कैसे ठगी-सी क्यों खड़ी है ?

कली मधु-गुंजार से मानो तो अपने दल के पहलू में पैठ गई, यह इस सुर धुन की उत्तेजना से उन्मत्त होकर दुनिया की ओर से मुँदे हुए मन के मिलन मन्दिर में क्या नहीं जाती ?

अरे कहीं बाहर तो नहीं जाना जो चोर-पाँवों चलने पर भी हल्की फुल्की आहट होगी ! पुकारने वाला पहले ही प्राणों में पैठ चुका है द्वन्द्वों दुविधाओं का छोड़कर, हौले हौले, अपने ही अन्तर के वासरगृह में तो प्रवेश करना है ! फिर कैसी झिझक !

यह चाँदनी की धुली हुई वसन्त की रात, वह दल पर इठलाती हुई मस्त कली क्यों नहीं समझती है वह प्रकृति का कोई संकेत जबकि वह स्वयं भी अभी मधुमती कली ही है !

६ असफल का अर्थ कलाकार के रूप में असफल नहीं है। मैंने उसी लेख (गीतिका में निराला माधुरी अगस्त, १९३८) में लिखा था

"अलौकिक निराला की अभिमान के समान गुरु गम्भीर उत्तेजना के सदृश प्रबल जीवन की नाई जटिल गीति-जल धारा "

'भुवनमनोमोहिनी' के सम्बन्ध में औरों ने और रवि बाबू ने भी लिखा है। पर आपको बहुत मुआफिक रहा।

मुखरमधीर त्यज मञ्जीर रिपुमिव केलिषु लोलम

और

गिरिवर-गरुअ पयोधर पर सित गिम गज मोतिक हारा

की तरलतरङ्गमत्व' क्यों समता नहीं कर सकता यह तो अर्थों से ही साफ है पर आपने—

सौध शिखर पर प्रात मनोहर
कनक गात तुम अरुण चरण धर
सरणि सरणि पर उतर रहा भर
छंद भ्रमर-गुञ्जित मौलोत्पल।'

उसके मुकाबले क्यों नहीं रखा ?

कोई ब्रजभाषा (ग्रामीण भाषा) के लाडले अगर—

लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे !

का उच्चारण न कर सकें तो यह खड़ी बोली का कसूर नहीं कहा जा सकता।

आपका
निराला

प्रसाद का संयम निराला के गीतों में नहीं और निराला की उन्मुक्त उच्चभूमि प्रसाद की दृष्टि से ओझल। एक में दर्शन का प्रकाश है दूसरे में ज्योति के दर्शन। एक सबल है दूसरा बलिष्ठ।

आकर्षण पंत के गीतों का सबसे बड़ा गुण और दुरूहता निराला की सबसे बड़ी कमजोरी है। कला पर दोनों की जबरदस्त नजर है पर पन्त लक्षित नहीं होते निराला छिपा नहीं सकते। पन्त अधिक से अधिक शब्दों में व्याख्या करते हुए गाते हैं निराला कम से कम पदों में महत्तम का गान करते हैं।

महादेवी का आरम्भ और निराला की परिणति मन्नो की वस्तु है। महादेवी की नारी सुलभ सुकुमारता और निराला की पुरुष परुष प्रौढ़ि सत्य सृष्टि हैं।

—पृष्ठ ४२/४३

३६

भूमामण्डी, हाथीखाना लखनऊ
३० ८ ३८

प्रिय जानकीवल्लभ जी

आपका पत्र प्रयाग म मिला था। आप व्याकरण की तैयारी करेंगे, पढ कर प्रसन्न हुआ।[1]

मैंने हिन्दी मे जगह देखी थी सस्कृत से अधिक इसलिए लिखा था। मेरी जो किताबें छप रही हैं उनके नाम आप जानते ही हैं। गीत आपका सुदर है।[2]

रवि बाबू का तपित आँखि वाला छन्द भी वसा ही है। क्योंकि राधा की तपित आँखें जिसके मुख पर फिरती हैं, जिसके स्पश से वह सिहरती हैं और जिसके चरणों मे अपनापन खोकर हृदय प्राण भर लेती हैं उसके लिये 'को तुहुँ बोलबि मोय ?' की गुञ्जायश नही, वह आप और रवि बाबू की

१ मैंने चिढकर, व्यङ्ग्य से लिखा था जब हिन्दी म कलात्मक विश्लेषण कोई नही सहता, ऐतिहासिक चेतना और विशिष्ट प्रवत्तियों को प्रमुखता और रूप सौष्ठव को तरह दन की चाल है तो मैं ऐसे साहित्य से भर पाया अब व्याकरण का आचार्य बनूगा। मैं हाल और अमरुक और गोवधन से बिहारी को बडा सिद्ध करने या मानने मे असमथ हूँ। भुस भरी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मैं 'सरस्वती श्रुतिमहती' के अरविन्दासन म आग न लगाऊँगा। साहित्य साहित्य है—हिन्दी का हो, सस्कृत का। मैं तुलना करता हूँ आनन्द का तारतम्य दिखलाने के लिए।

२ कसे बद रखू चल लोचन प्रिय अतिसुन्दर हे !
कसे विरल कलश मे भर लू सकल समुन्दर हे ।।
जार विजन क्षण आता,
सजल नयन, सखि निरख न पाती तब तक निदय जाता !
ममर कर उठते तरु पल्लव सुन उसका रव हे !
बदल बदल यह रूप रग चलता नित नव नव हे ।।
चरण चाप पहचानी,
प्राणों का आवेग प्रबल, दुबल मेरा मन मानी !
वह, कसे अपना घर भर लू वह सब का धन हे !
कसे रोक रखू जब सब का वह अनिकेतन हे ।।
देता रहता फेरी,
कहाँ कहाँ, किस किसने उसकी राह आह ! भर हेरी !

हो तरह स्थूल रूप मे मनुष्य है और उसका नाम कृष्ण है, पहले के काव्यो से ऐसा ही प्रमाण मिलता है। फिर जिसके मुख है जो स्पर्श करता है और परो पर जिसके अपनापन चलता है वह अनाम ही क्यो होगा ? यह सब आपको अच्छा लगता है लगा।[3]

आपने जो लिखा यह होना है यानी मैंने जो प्रश्न किया वह एक प्रश्न ही नही। होता है तो हो मैंने होना है सुनने के लिये नही पूछा था कैसे होता है जानने के लिये लिखा था।[4]

अच्छा यह बताइये—

मुकुल हुए आ नेह के छितिज
रूप परस रस गन्ध-सबद घन',—

अब भी कविता उत्तानपाद है ?—मुश्किल है ?—गाई जा सकती है न ? क्या जी, सीधी कैसे हो गई ?

---

३ अच्छा इसलिए लगता है कि कवि ने—तुम कौन हो ?—कहकर अलौकिक अनुभाव का —विस्मय विस्फुरित आनन्द की अतिशयता का सजीव चित्र अङ्कित किया है। जैसे राधा पूछ रही हो कि तुम दिखाई तो देते हो ऐसे —एक अनिन्द्य सुन्दर पुरुष जैसे ही, फिर यह अलौकिक ऐश्वर्य कहाँ छिपा रक्खा है कि तुम्हारे एक एक इङ्गित से अकेली मैं नही अशेष प्रकृति तरङ्गित होने लगती है ?

'कैसी बजी बीन ?'
अथवा
किस समीर से कांप रही वह बंशी की स्वर-सरित हिलोर ?
किस वितान से तनी प्राण तक छू जाती वह करुण मरोर ?

आपकी इन पंक्तियो में कैसी और किस की सुन्दरता क्या दूर-दूरतर-गामी गूंज के कारण ही मोहक नही है ?

४ तब मैंने Stopford Brook नही पढ़ा था

Milton was a scholar and in his writings we continually find echoes of what we fancy we have heard before But the alchemy of his genius turns the ore of his predecessors into pure gold he borrows but to improve and give it back as his own It little matters where this and that came from the Poem as we have it in Milton s every line in thought in style in build in imaginative and moral power

यह क्या गीतिका के निराला के लिए ही लिखा हुआ नही जान पड़ता ?

अच्छा, रवि बाबू का 'कठिन है हृदय' और 'गलते हैं प्राण', इसीलिये रचना सार्थक है ?

और जब प्राण गले और पैर सँदे (फँसे) तब खुद ब खुद न निकलेंगे, यानी हमेशा हृदय में रहेंगे, यही सार्थकता है न ?

मैं जानता हूँ आप सार्थक कर देने की मिहनत कर सकते हैं, और मेरी रचना चूँकि आपको मिहनत नहीं दे सकी, इसीलिये असार्थक हुई।

उसने 'कृपा समीरण बहने पर क्या कठिन हृदय यह हिल न सकेगा' में लगाने के लिये कुछ नहीं रक्खा।

'दिल हिलने' का मतलब ही है हृदय में करुणा का आना फिर हवा के चलने से पेड़ पौधे हिलते ही हैं—सूखी लकड़ी टूट जाती है या नहीं हिलती—यह हिलना पेड़ का हरा भरा होना भी बतलाता है इधर कृपा की समीर से हृदय हिलता है—हृदय या दिल हिल कर करुणोद्रेक से, रस भाव पैदा करता है, जो पहले के बन्द हुए—

स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा ?

की सार्थकता में आता है। —यह सब पता होने के कारण ही असार्थक है—क्यों न ?'

मैंने आपको कोई कोई उत्तर देने की हिम्मत नहीं की। आप अच्छे हो जाइये। मानसिक अशान्ति ईश्वर दूर करें।

सुनता हूँ कोई-कोई आपको जवाब देनेवाले हैं कोई मौनिका की तारीफ में लिखने वाले हैं। यह सब अपनी तबियत की बात है।

मैं जैसा समझता हूँ, लिख देता हूँ। जब बहुत घिरता हूँ, तब जवाब देता हूँ।

---

1 मैंने उसी लेख में रवीन्द्रनाथ के—

'जानि आमार कठिन हृदय
चरण राखार योग्य से नय,
सखा, तोमार हाओया लागले हियाय
तबु कि प्राण गलबे ना ?'

से निराला के—

'जग के दूषित बीज नष्ट कर पुलक स्पन्द भर खिला स्पष्टतर
कृपा समीरण बहने पर क्या कठिन हृदय यह हिल न सकेगा ?

की तुलना की थी।

ही तरह स्थल रूप मे मनुष्य है और उसका नाम कष्ण है, पहले के काया से ऐसा ही प्रमाण मिलता है। फिर जिसके मुख है जो स्पश करता है और परो पर जिसके अपनापन चढता है वह अनाम ही क्यो होगा ? यह सब आपको अच्छा लगता है लगे।[3]

आपने जो लिखा यह होना है यानी मैंने जो प्रश्न किया वह एक प्रश्न ही नही। होता है तो हो मैंने होता है सुनने के लिये नही पूछा था, 'कसे होता है' जानने के लिये लिखा था।

अच्छा यह बताइय—

मुकुल हुए आ नेह के छितिज
रूप परस रस गन्ध-सबद धनं,—

अब भी कविता उत्तानपाद है ?—मुश्किल है ?—गाई जा सकती है न ? क्यो जी सीधी कसे हो गई ?

---

३ अच्छा इसलिए लगता है कि कवि ने—तुम कौन हो ?—कहकर अलौकिक अनुभाव का—विस्मय विस्फुरित आनन्द की अतिशयता का सजीव चित्र अङ्कित किया है। जसे राधा पूछ रही हो कि तुम दिखाई तो देते हो ऐसे—एक अनिन्दय सुन्दर पुरुष जसे ही फिर यह अलौकिक ऐश्वय्य कहाँ छिपा रक्खा है कि तुम्हारे एक एक इङ्गित स अकेली मैं नही, अशेष प्रकृति तरङ्गित होने लगती है ?

कसी बजी बीन ?'
अथवा
किस समीर से काँप रही वह बशी की स्वर-सरित हिलोर ?
किस वितान से तनी प्राण तक छू जाती वह करुण मरोर ?

आपकी इन पक्तियो म कसी और किस की सुन्दरता क्या दूर-दूरतर-गामी गज के कारण ही मोहक नही है ?

४ तब मैंने Stopford Brook नही पढा था

Milton was a scholar and in his writings we continually find echoes of what we fancy we have heard before But the alchemy of his genius turns the ore of his predecessors into pure gold he borrows but to improve and give it back as his own It little matters wh re this and that came from the Poem as we have it in Milton s every line in thought in style in build in imaginative and moral power

यह क्या 'मौलिक' म निराला क लिए हा लिया हुआ नहीं जान पड़ता ?

अच्छा, रवि बाबू का 'कठिन है हृदय' और 'गल्ते हैं प्राण', इसीलिये रचना साधक है ?

और जब प्राण गले और पैर खदे (फँसे) तब खुद ब खुद न निकलेंगे, यानी हमेशा हृदय म रहगे, यही साथकता है न ?

मैं जानता हूँ, आप साथक कर देने की मिहनत कर सकते हैं, और मेरी रचना चूंकि आपको मिहनत नहीं दे सकी इसीलिये असाधक हुई।

उसन 'कृपा-समीरण बहने पर क्या कठिन हृदय यह हिल न सकेगा' में लगाने के लिये कुछ नहीं रक्खा।

'दिल हिलने' का मतलब ही है हृदय मे करुणा का आना फिर हवा के चलने से पेड़-पौधे हिलते ही हैं—सूखी लकड़ी टूट जाती है या नहीं हिलती—यह हिलना पेड़ का हरा भरा होना भी बतलाता है इधर कृपा की समीर से हृदय हिलता है—हृदय या दिल हिल कर करुणोद्रेक से, रस भाव पैदा करता है, तो पहले के वह हुए—

रत्तच्च दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा ?

की साथकता मे आता है। —यह सब ऐसा होने के कारण ही असाधक है—क्यों न ?[५]

मैंने आपको कोई कोई उत्तर देने की हिम्मत नहीं की। आप अच्छे हो जाइये। मानसिक अशान्ति ईश्वर दूर करें।

सुनता हूँ, कोई-कोई आपको जवाब देनेवाले है, कोई गीतिका की तारीफ लिखने वाले है। यह सब अपनी तबियत की बात है।

मैं जरा समझता हूँ लिख देता हूँ। जब बहुत घिरता हूँ, तब जवाब देता हूँ।

---

५ मैंने उसी लेख म रवीन्द्रनाथ के—

'जानि आमार कठिन हृदय
चरण राखार योग्य से नय,
सखा, तोमार हाओया लागले हियाय
तबु कि प्राण गलबे ना ?'

से निराला के—

"जग के दूषित बीज नष्ट कर पुलक स्पन्द भर, खिला स्पष्टतर
कृपा समीरण बहने पर क्या कठिन हृदय यह हिल न सकेगा ?"

की तुलना की थी।

आपको उत्तर तो मैं दूंगा ही नहीं क्योंकि खड़ी बोली अपने आप खड़ी होगी अगर खड़ी होगी। फिर मैं प्रचारक नहीं।

आप लोग बड़े बड़े निबन्ध लिखियेगा ग्रन्थ लिखियेगा, बड़ी-बड़ी दोहाइयाँ दीजियेगा, मुझ भी, जितना समझूंगा, आनन्द आयेगा।

मैं तो कालिदास और रवीन्द्रनाथ से अपनी माँ का मुख ही अधिक पहचानता हूँ।[६]

आप लोग जब कहते हैं रवीन्द्रनाथ गधों म घोड़ हैं और कालिदास घोड़ा म उच्चश्रवा तब मुझे आनन्द आता है, क्योंकि समझता हूँ, इसलिये मेरी माँ का मुख बहुत साफ मुझे नजर आता है।

आपका
निराला

---

६ मैं इस मीत्म तक के आगे अस्त्र डाल दन की विनय ही मानता था। एक बार परिमल की प्रथम कविता— मौन पर चर्चा चली। निराला न टैगोर की पंक्तियाँ—

थाक थाक बाज नाइ, बोलियो ना कोनो कथा !
चेये देखो, चले जाइ, मने मने गान गाइ
मने मने रचि बोसे कतो सुख कतो व्यथा !

सुनाई, शिल्प समझाया और बोल संस्कृत म इस भाव पर इसी निपुणता स कुछ कहा गया हो तो सुनाइए। मैंने भवभूति का—

त्वं जीवितं, त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण ?

सुनाया, मा याहीत्यपमङ्गल वाला पद्य गुनगुनाया पर उन्हें यह सब कुछ खास अच्छा न लगा। हाँ प्राकृत की एक आर्या अपमान पर कुछ जँची—

किं भणिमो भण्णइ किंति अथ किं वा इमेण भणिएण
भणिहिइ तहवि अहवा भणामि किं वा ण माणिआणि।

कुछ इसलिए कि भावपक्ष के बारे उनका मानदण्ड यहीं भी राह रोककर खड़ा हो गया था।

३७

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
५-९-३८

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

अभी-अभी आपका पत्र मिला। हिंदी से आपको प्रेम होगा—कोई फज-अदायगी समझेंगे तो अपने आप लिखेंगे मैं एक पाठक की हैसियत से जितना आनन्द प्राप्त कर सकूगा आपकी चीजें पढकर प्राप्त करूगा मेरे लिये इतनी ही सुविधा है।

रही बात व्याकरण सीखने की यह आपकी तबियत पर है। विषय कोइ नीरस नहीं, इतना मैं कुछ-कुछ समझ सका हू।

मुझे अपनी चीजो की अनुकूलता प्रतिकूलता बहुत कम अनुकूल प्रतिकूल कर सकती है यो दूसरो की तरह कमजोरिया मुझमे भी हैं क्योंकि दूसरो की तरह आदमी मैं भी हूँ।

मैं देखता हू, चीज खुद अपने म कहाँ तक बन सँवर कर खडी हो सकी है। जिन लोगों ने उत्तर लिखने के लिए कहा है उन्होंने अपनी तरफ से कहा है न तो मैंने अपने भाव दिए हैं, न उत्तर देखने के लिए मुझे कोई औत्सुक्य है।

मैं जानता हूँ, रवि बाबू के (आपके द्वारा) उदधृत बन्द—हेरि हासि तव—स मेरा 'वजी बीन वाला—'स्पष्ट ध्वनि आ घनि''—बन्द बहुत तगडा है, इसी तरह 'जानि आमार कठिन हृदय' व 'जग के दूषित बीज नष्ट कर'।

जो लोग मुझसे लिखने के लिए कहते हैं वे दूसरी जगह यह भी कहते हैं कि चूकि निराला जी की इच्छा है, इसलिये लिखेंगे। उनमे कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ऊंचे दर्जे के हैं लिखने के लिये वे जो कुछ भी लिखें।

कुछ का कहना है, यह जो तुलसी-सूर आदि पर लिखा है यह अच्छा नहीं किया निराला जी ने। पर वे भूल जाते हैं निराला ने शेखी भी नहीं बघारी, उसी भूमिका म अपने संस्कार म ढलने की बात भी उसने लिखी है और पूरे तौर पर प्रभाव को स्वीकार किया है।

यह सब तो जो कुछ होगा होता रहेगा। आपने और नहीं तो इधर के विशाल भारत' और 'वीणा' के अङ्क तो देखे होंगे। उनमें लिखा है, रवि बाबू प्रमुख बङ्गालियों ने हिन्दी की मुखालफत करनी शुरू कर दी है—उनका कहना है, हिन्दी में तुलसीदास के सिवा और क्या रक्खा है सिर्फ बँगला राष्ट्रभाषा होने की योग्यता रखती है कांग्रेस हिन्दी का प्रचार बन्द करे।

क्या आप बता सकते हैं रवि बाबू प्रमुख बङ्गालियों की ऐसी स्पर्द्धा का क्या कारण है? क्या इसीलिए नहीं कि रवि बाबू के डङ्के की चोट ने हिन्दी की मूर्खमण्डली को विवश कर दिया है कि वह रवि बाबू के गू को भी सार देखे और खड़ी बोली के सार-पदार्थ को भी गू?

मेरी किताबें कब निकलेंगी मैं नहीं जानता। मुमकिन दो महीने में तुलसीदास और अनामिका' निकल जाय।

आपके प्रश्नों के उत्तर मैं अभी नहीं लिख सकूँगा।[1] क्योंकि बहुत काम पड़ा हुआ है पूरा करने में लगा हूँ। एक नया उपन्यास भी लिख रहा हूँ। इसलिये अभी यहाँ न आइए।

---

१ मैंने साहित्य से असम्बद्ध ढेर सारे प्रश्न पूछे थे —

(क) आप एक अदना आदमी के अदना से लेख पर इस तरह बिगड़ खड़े हुए क्या इसी कारण "जीवितव्यराशयो न वर्णनीय' उक्ति न चल पड़ी होगी?

(ख) सन'३५ में आपके दर्शन हुए थे। केवल तीन वर्षों में मैंने आप द्वारा निर्दिष्ट कवियों दार्शनिकों और संगीत शास्त्रियों का स्वाध्याय द्वारा साक्षात्कार मात्र ही तो किया है अभी मुझसे परिणत प्रज्ञा की क्या अपेक्षा करते हैं?

(ग) आप पर न लिखूँ तो किस पर लिखूँ? मुरारि ने क्या कहा है—

यदि क्षुण्णं पूर्वैरिति जहति रामस्य चरितं
गुणैरेतावद्भिर्जगति पुनरन्यो जयति कः ?
स्वमात्मानं तत्तद्गुणगरिमगम्भीरमधुर—
स्फुरद्वाग्ब्रह्माणः कथमुपकरिष्यन्ति कवयः ?

आज नहीं समझता तो कल समझने की चेष्टा करूँगा। मैं रुककर आपकी कृति पर ही तो लिखना चाहता हूँ। छायावाद गाँधीवाद की प्रतिक्रिया है'—अथवा छायावाद पलायनवाद है ऐसी थोथी राजनीतिक उक्तियों पर नहीं। आपने क्या लिखा किन परिस्थितियों में लिखा कितना लिखा—इस पर मेरे दूसरे मार्गी लिखेंगे। 'आपने क्या लिखा'—यही मेरा विषय होगा।

आप वीणा व तारा के लिए नौसिखुए लुहार के कठिन प्रयत्नों पर ही दृष्टि रखिए, रोह की दुर्दशा पर न जाइए।

'साहित्य' सभी का है। इसलिये अलग रहने की बात किसी 'साहित्याचार्य' की नहीं हो सकती। आपकी तरह मैं भी साधारण व्यक्ति हूँ। फर्क इतना ही है कि आपकी तरह असाधारण व्यक्तियों की ओर स्नेह मेरा कम बहता है। न असाधारण कोई कुछ मुझे नजर आता है, जब उत्कृष्ट और अपकृष्ट के दर्शन पर विचार करता हूँ।

कुछ काल बाद निश्चिन्त होकर मैं आपको अच्छी तरह लिखूँगा। आपके प्रश्नों के उत्तर दूँगा।

मैंने चाहा था, आपको नई हवा खिलाऊँ। कोशिश की थी। पर आपने एक स्थिति से दूसरी स्थिति को समझना चाहा। मेरी आदत किसी का बिगाड़ना नहीं। जब दर्द पैदा होता है, तब हर आदमी दवा के लिए दौड़ता है। सोचकर मैं चुप हो गया।[2]

आप रस सिद्ध ही नहीं, पाठ गीति और गति में भी अप्रतिभट हैं, गम्भीर और मधुर और उदात्त काव्य रचना में आज आपका कोई समकक्ष नहीं। आप महासत्त्व भी हैं, संवेदनशील भी। आपको सामान्य गुणग्राहियों के प्रति क्षमाशील भी होना ही चाहिए।

२ मुझे मेरी गरीबी ही नई हवा खिला रही थी। जब साथी संगी केरियर बनाने में लगे थे, मैं लिखना पढ़ना छोड़कर नौकरी कर रहा था। नौकरी के थका देने वाले काम से छुट्टी मिलने पर मैं पल भर भी विश्राम नहीं करता था। उस देशी राज्य में महज खादी पहनने के कारण मुझ जैसे एक अदने कर्मचारी की दुर्दशा होती थी। अथक श्रम के अलावा मेरी नई जिन्दगी ने वहाँ कुछ नहीं पाया था।

यों निराला का लिखा मैं पढ़ चुका था

"ग्रीक सभ्यता बहिर्मुख दशा विजय-कामिनी स्वामिनी बनने की लालसा रखने वाली थी। अरस्तू की महाप्रतिभा महावीर सिकन्दर को इसी तरह उत्तेजना देती है। भारत के महानीतिज्ञ चाणक्य चालों से उसे मात देते हैं या नहीं यहाँ हम यह नहीं कहेंगे। कहना यह है कि चाणक्य भारतीय साहित्य के कोई सर्वोत्तम विकसित रूप नहीं, परन्तु अरस्तू अपने साहित्य का है।

भारतीय साहित्यिक यान्त्रिक उन्नयन से संसार की यन्त्रणा का ही विस्तार देखते हैं। मय दानव बड़ा ही सुन्दर कारीगर था। पर भौतिक उन्नति करने वाला होने के कारण वह दानव कहलाया।

लिखना पढ़ना आपका धर्म है, और कोई धर्म मनुष्य के स्वभाव में घर कर लेता है, तब छूटता नहीं। लिहाजा, क्या कहूँ?

आपका
निराला

आप मुझ पर जो कुछ लिख रहे हैं मेरी राय में, अभी न लिखें। जिन्होंने मुझ पर लिखकर कृपा करने के लिये कहा है, उन्हें भी मैं रोक दूंगा, जो यहाँ हैं, अन्यत्र वाले दूर हैं और शायद वे जेनरल रूप से लिखेंगे अगर लिखेंगे।

पन्त जी 'रूपाभ' में शायद मुझ पर कुछ अनुकूल आलोचनाएँ लिखायेंगे। उन्हें एक स्कालर मिले हैं वे मेरे साहित्य के सबसे अच्छे जानकार हैं पन्त जी की धारणा और लिखना है। यहाँ के रामविलास जी को भी पन्त जी ने लिखा है आलोचना के लिये। रामविलास जी शायद आप पर नहीं लिखेंगे।

मैंने इधर कुछ गीत लिखे हैं। सीधे, साधारण हैं। एक—

मेरे नयनों में हँस बौं हर
वारिद-शर!

+ + +

अपनापन भूला
प्राण शयन भूला
बहीं तुम चितवन से सञ्चर
छाये घन अम्बर!

—निराला

'अंग्रेजी-साहित्य का जो विकास बहिर्मुख होने के कारण हुआ भारतीय साहित्य का वही अन्तर्मुख होकर हुआ था और इसी प्रकार फिर होगा।

"अपनी शक्ति का पता अपने ही भीतर है बाहर नहीं। साहित्य यहाँ अन्तर्मुख होने की शिक्षा दी गई।"

—निराला
['भारतीय और अंग्रेजी साहित्य'
फरवरी ३३]

३८

मूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
८ १२ ३८

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र अब तक निरुत्तर रहा। आपके प्रथम पत्र का उसी समय उत्तर लिखा था आपको नहीं मिला। यहा भी नहीं आया।

मैंने कुल्ली भाट सवा सौ सफे की किताब पूरी कर दी। छपने को गङ्गा पुस्तकमाला मे दी है। अगर वहाँ न छपेगी तो दूसरी जगह देखूगा। 'माधुरी' म उसका प्रकाशन बन्द करा दिया है।

आपकी किताब (रूप-अरूप) ओरछा म पुरस्कृत हो भी सकती है। आपकी तरह, लेकिन, रुपयों के अभाव में बहुतेरे हैं।[1]

इधर मेरी तबियत अच्छी नही थी। खासी, बोखार, जुकाम आदि कई व्याधियाँ थी। दुबल बहुत हो गया हूँ। माँ कुशल है। यहाँ अकेला रहता हूँ। महीने दो महीने म घर बदल दूँगा। बहू रामकृष्ण के यहाँ गई डेढ महीना हुआ। आप प्रसन्न होंगे।

आपका
सूर्यकान्त त्रिपाठी

---

१ 'रूप-अरूप' एक ऐसे कवि की रचना थी जो तब तक बिहार मे न रहकर भी हिन्दी का कवि नहीं, बिहारी कवि था। जिसकी कोई पृष्ठभूमि न थी जिसके काव्य रस से आलोचक उन्मत्त न हुए थे, जिसकी प्रशस्ति किसी ने नही गाई थी। फिर भी उसे विश्वास था, निष्पक्ष समीक्षक उसकी ताजगी को प्राथमिकता देंगे। उस वक्त तक के सुने स्वर से उसकी टेर निराली थी। पर यह सब कुछ न हुआ। पद हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते पुरानी उक्ति हुई, वह अब अपना अर्थ खो चुकी है,—निराला ने सावधान कर दिया था।

मैंने आर्थिक उत्पीडनो से तंग आकर पढने की उत्कट अभिलाषा से यह असामयिक प्रयास किया था। किन्तु निराला की दृष्टि म यह सब पोल था। उनके अनुसार पुरस्कार मिलने पर अर्थ लोभ से लिखने की ओर प्रवृत्ति बढती और मैं स्थायी और गम्भीर से हट कर आकर्षक और लोकप्रिय की ओर बढ जाता।

मैंने प्रतियोगिता म पुस्तक नही भेजी।

लिखना पढ़ना आपका धर्म है और कोई धर्म मनुष्य के स्वभाव में घर कर लेता है, तब छूटता नहीं। लेहाजा क्या कहूँ?

आपका
निराला

आप मुझ पर जो कुछ लिख रहे हैं मेरी राय में, अभी न लिखें। जिन्होंने मुझ पर लिखकर कृपा करने के लिये कहा है उन्हें भी मैं रोक दूंगा, जो यहाँ हैं, अन्यत्र वाले दूर हैं और शायद वे जेनरल रूप से लिखेंगे अगर लिखेंगे।

पन्त जी 'रूपाभ' में शायद मुझ पर कुछ अनुकूल आलोचनाएँ लिखायेंगे। उन्हें एक स्कालर मिले हैं वे मेरे साहित्य के सबसे अच्छे जानकार हैं पन्त जी की धारणा और लिखना है। यहाँ के रामविलास जी को भी पन्त जी ने लिखा है आलोचना के लिये। रामविलास जी शायद आप पर नहीं लिखेंगे।

मैंने इधर कुछ गीत लिखे हैं। सीधे साधारण हैं। एक—

मेरे नयनों में हँस दीं, हर
वारिद झर!

+ + +

अपनापन भूला
प्राण-शयन भूला
बहीं तुम चितवन से सत्वर
छाये घन अम्बर!

—निराला

'अंग्रेजी-साहित्य का जो विकास बहिर्मुख होने के कारण हुआ भारतीय साहित्य का वही अन्तर्मुख होकर हुआ था और इसी प्रकार फिर होगा।

'अपनी शक्ति का पता अपने ही भीतर है बाहर नहीं। इसलिए यहाँ अन्तर्मुख होने की शिक्षा दी गई।'

—निराला
[भारतीय और अंग्रेजी साहित्य'
फरवरी ३३]

३८

मूमामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
८-१२-३८

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र अब तक निरुत्तर रहा। आपके प्रथम पत्र का उसी समय उत्तर लिखा था आपको नहीं मिला। यहाँ भी नहीं आया।

मैंने 'कुल्ली भाट' सवा सौ सफे की किताब पूरी कर दी। छपने को गङ्गा पुस्तकमाला में दी है। अगर वहाँ न छपेगी तो दूसरी जगह देखूँगा। 'माधुरी' में उसका प्रकाशन बन्द करा लिया है।

आपकी किताब (रूप-अरूप) ओरछा में पुरस्कृत हो भी सकती है। आपकी तरह, लेकिन, रुपयों के अभाव में बहुतेरे हैं।[1]

इधर मेरी तबियत अच्छी नहीं थी। खाँसी, बोखार, जुकाम आदि कई व्याधियाँ थीं। दुबला बहुत हो गया हूँ। यों कुशल है। यहाँ अकेला रहता हूँ। महीने दो महीने में घर बदल दूँगा। बहू रामकृष्ण के वहाँ गई डेढ़ महीना हुआ। आप प्रसन्न होंगे।

आपका
सूर्यकान्त त्रिपाठी

---

१ 'रूप अरूप' एक ऐसे कवि की रचना थी जो तब तक बिहार में न रहकर भी हिंदी का कवि नहीं, बिहारी कवि था। जिसकी कोई पृष्ठभूमि न थी, जिसके काव्य रस से आलोचक उन्मत्त न हुए थे, जिसकी प्रशस्ति किसी ने नहीं गाई थी। फिर भी उसे विश्वास था, निष्पक्ष समीक्षक उसकी ताजगी को प्राथमिकता देंगे। उस वक्त तक के सुने स्वर से उसकी टेर निराली थी। पर यह सब कुछ न हुआ। 'पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते' पुरानी उक्ति हुई—वह अब अपना अर्थ खो चुकी है,—निराला ने सावधान कर दिया था।

मैंने आर्थिक उत्पीड़नों से तंग आकर पढ़ने की उत्कट अभिलाषा से यह असामयिक प्रयास किया था। किन्तु निराला की दृष्टि में यह सब झोल था। उनके अनुसार पुरस्कार मिलने पर अर्थ लाभ से लिखने की ओर प्रवृत्ति बनती और मैं स्थायी और गम्भीर से हट कर आकर्षक और लोकप्रिय की ओर बढ़ जाता।

मैंने प्रतियोगिता में पुस्तक नहीं भेजी।

लिखना पढ़ना आपका धर्म है, और कोई धर्म मनुष्य के स्वभाव में घर कर लेता है, तब छूटता नहीं। लिहाजा, क्या कहूँ?

आपका
निराला

आप मुझ पर जो कुछ लिख रहे हैं मेरी राय में, अभी न लिखें। जिन्होंने मुझ पर लिखकर कृपा करने के लिये कहा है, उन्हें भी मैं रोक दूँगा, जो यहाँ हैं, अन्यत्र वाले दूर हैं और शायद वे जेनरल रूप से लिखेंगे अगर लिखेंगे।

पन्त जी 'रूपाभ' में शायद मुझ पर कुछ अनुकूल आलोचनाएँ लिखायेंगे। उन्हें एक स्कालर मिले हैं जो मेरे साहित्य के सबसे अच्छे जानकार हैं पन्त जी की धारणा और लिखना है। यहाँ के रामविलास जी को भी पन्त जी ने लिखा है आलोचना के लिये। रामविलास जी शायद आप पर नहीं लिखेंगे।

मैंने इधर कुछ गीत लिखे हैं। सीधे, साधारण हैं। एक—

मेरे नयनों में हँस दीं हर
वारिद भर!

\+ \+ \+

अपनापन भूला
प्राण शयन झूला
उठीं तुम चितवन से सञ्चर
छाये घन अम्बर!

—निराला

'अंग्रेजी साहित्य का जो विकास बहिर्मुख होने के कारण हुआ, भारतीय साहित्य का वही अन्तर्मुख होकर हुआ था, और इसी प्रकार फिर होगा।

'अपनी शक्ति का पता अपने ही भीतर है, बाहर नहीं। इसलिये यहाँ अन्तर्मुख होने की शिक्षा दी गई। "

—निराला
[भारतीय और अंग्रेजी साहित्य'
फरवरी ३३]

३८

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
८ १२ ३८

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र अब तक निरुत्तर रहा। आपके प्रथम पत्र का उसी समय उत्तर लिखा था आपको नहीं मिला। यहाँ भी नहीं आया।

मैंने 'कुल्ली भाट' सवा सौ सफे की किताब पूरी कर दी। छपने को गङ्गा पुस्तकमाला में दी है। अगर वहाँ न छपेगी तो दूसरी जगह देखूँगा। 'माधुरी' में उसका प्रकाशन बन्द करा दिया है।

आपकी किताब (रूप-अरूप) ओरछा में पुरस्कृत हो भी सकती है। आपकी तरह, लेकिन, रुपयों के अभाव में बहुतेरे हैं।[1]

इधर मेरी तबियत अच्छी नहीं थी। खाँसी बोखार जुकाम आदि कई व्याधियाँ थीं। दुबल बहुत हो गया हूँ। यों कुशल है। यहाँ अकेला रहता हूँ। महीने दो महीने में घर बदल दूँगा। बहू रामकृष्ण के यहाँ गई डेढ़ महीना हुआ। आप प्रसन्न होंगे।

आपका
सूर्यकान्त त्रिपाठी

---

१ 'रूप-अरूप' एक ऐसे कवि की रचना थी जो तब तक बिहार में न रहकर भी हिन्दी का कवि नहीं, बिहारी कवि था। जिसकी कोई पृष्ठभूमि न थी जिसके काव्य रस से आलोचक उन्मत्त न हुए थे, जिसकी प्रशस्ति किसी ने नहीं गाई थी। फिर भी उसे विश्वास था, निष्पक्ष समीक्षक उसकी ताजगी को प्राथमिकता देंगे। उस वक्त तक के सुने स्वर से उसकी टेर निराली थी। पर यह सब कुछ न हुआ। 'पद हि सर्वत्र गुणनिर्घोषिण' पुरानी उक्ति हुई, यह अब अपना अर्थ खो चुकी है,—निराला ने सावधान कर दिया था।

मैंने आर्थिक उत्पीड़नों से तंग आकर पढ़ने की उत्कट अभिलाषा से यह असामयिक प्रयास किया था। किन्तु निराला की दृष्टि में यह सब थोथा था। उनके अनुसार पुरस्कार मिलने पर अर्थ-लोभ से लिखने की ओर प्रवृत्ति बढ़ती और मैं स्थायी और गम्भीर से हट कर आकर्षक और लोकप्रिय की ओर बढ़ जाता।

मैंने प्रतियोगिता में पुस्तक नहीं भेजी।

३६

मकामण्डी, हाथाखाना,
लखनऊ
२० १२ ३८

प्रिय आचाय जानकीवल्लभ जी

आपका प्रिय पत्र मिला। कविता बड़ी अच्छी लगी।[1]

आपने रायगढ छोड दिया, ठीक है जो पहले है आदमी जी की माग के सामने लाचार हो जाता है, बाहरी जसी भी मार्गे हो।

मैं रोज एक किताब क्यो नही लिख डालता, आप लोगों की ऐसी माँग का मन ही मन यही जवाब दिया करता था।

त्याग भोग भी इसी तरह जी की माग पूरी करना है, वस्तुत कुछ नही, दाशनिक महत्त्व इनका कभी कुछ नही रहा जो कुछ मैं समझा हूँ।

छोडकर भी आदमी ग्रहण करता है।

आधुनिक कला का तो आधार ही यह है पहले जो कुछ हाँ के रूप मे दिखलाया जाता है वह ना के रूप म परिणत किया जाता है आपके यहाँ—तदेजति तन्नजति—यही है।

---

१ तन चला सन पर प्राण रहे जाते हैं!
जिनको पाकर था वसुध मस्त हुआ म,
उगते ही उगते देखो अस्त हुआ म,
हूँ सौंप रहा निष्ठुर! न इन्हें ठुकराना
मेरे दिल के अरमान रहे जाते हैं!
किससे दुराव लूगा स्मृति चिह्न सभी स,
मर बढ़ा कहूँगा भूल गए न अभी स!'
—था सोच रहा अभिशाप भरे आ तब तक
—हे देव अमर वरदान रहे जाते हैं!
आओ हम सब मिल आज एक स्वर गाएँ
—रोते आएँ, पर गाते-गाते जाए!
म चला मृत्यु की आँखों का आँसू बन,
मेरे जीवन के गान रहे जाते हैं!

—रूप-अरूप

सम्मति[२] मैं कभी कुछ नही देता। मैं तो अकवर की नौकरी वजाता हूँ।
आप वह कहानी जानते होंगे।

कहते हैं, एक दफा अकवर ने वीरवल से पूछा —'वीरन, क्या तुम्हे भी कद्दू अच्छा लगता है, हमे वहुत पसन्द है।'

वीरवल ने कहा—'हाँ जहापनाह, कद्दू का क्या कहना है! खाने मे जैसा नर्म वैसा ही लजीज।'

अकवर ने कहा—

'लेकिन आलू वहुत अच्छा होता है।'

'हा खोदावन्द', वीरवल ने कहा, 'आलू लामिसाल है।'

अकवर ने कहा—

'क्या जी, अभी तुम कद्दू की तारीफ करते थे, अव आलू की करते हो।'

वीरवल ने कहा—

'गरीवपरवर, मैं न कद्दू का नौकर हूँ, न आलू का। हुजूर को जो अच्छा लगता है, वह मुझे हजार जान से पसन्द है।'

'कुल्लीभाट' बनता विगडता कुछ तो हो ही गया है, पब्लिक जैसा कहे।

'गोरा' विवेचन प्रधान है जी ऊव जाता है, ठीक है।

'शुद्ध-वुद्ध'—सव मजाक है अव ससार मे तेल लगाने के दिन नही रह हिन्दोस्तान मे हैं, लगाइये, पर मालिश अच्छी नही।

---

२ निर्धन का स्वाभिमान! रायगढ छोड तो दिया, किन्तु करूँ क्या? निराला को अभिभावक समझकर कुछ विकल्प लिख भेजे थे, उनकी सम्मति चाही थी।

३ जीवन म पहली वार इतने रुपए मिले थे कि मैंने प्राय सम्पूर्ण रवीन्द्र साहित्य खरीद लिया था। पण्डित मुकुटधर पाण्डेय के सामने रायगढ नरेश ने मुझे—

'जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।'

को सस्कृत पद्य मे रूपान्तरित करने कहा। मैंने—

मरा जो कुछ गेगा हागा। जि लिखना है और जो कुछ लि जाना है, विना मर भी लिखेंगे लिया जायगा।

यही है कि एक समय होनी है, वह प त साहित्य। यही मौलिक साहित्य पैदा करती है। बाकी सब पीछे लगे रहते हैं। मैं अपने मित्रो स यही कहता रहा हूँ। पर सब जगह परिणाम उलटा मिला है। ईश्वरेच्छा जगा आप भर लिय लिखते है!!!

अब चौथे होस्टेल म रहकर क्या कीजियगा? मैंने सोचा यहा साहित्य साधना यानी कविता लिखन के विचार स शायद आय हो क्योकि बहुत सी कविताए यहाँ लिखी हैं यहाँ सुविधा होती हो। मैं जब कोई नया मकान

प्रतिश्रीवाभङ्ग नयनसुखभङ्ग जनपति के रूप में उस तत्क्षण अनूदित कर दिया। यह प्रथम भाषान्तर था। उन्होंने पुलकित होकर पूछा

कलकत्ता देखा है?

या मैं प० मुकुटधर पाण्डेय के साथ उसी गाडी से कलकत्ता गया था जिसस रायगढ नरेश जा रह थे किन्तु हमारी मुलाकात कलकत्ता पहुचन पर हुई थी। मैंने समङ्कोच निषध सूचक सिर हिला दिया।

उन्होने कलकत्ता घूमन क लिए जो रुपए दिए उनस मैंन रवीन्द्र-साहित्य (बँगला और अग्रेजी म) खरीद कर वही सुख प्राप्त किया जो गणेश जी ने राम नामाङ्कित भूमि की परिक्रमा कर प्राप्त किया होगा।

बँगला का नशा यो भी कम उन्मत्त करने वाला नही फिर मैं तो अभी अभी इक्कीसवें वष म प्रवेश कर रहा था। कालिदास के बाद रवीन्द्रनाथ— दो पाटन के बीच साबित बचने का कोई उपाय न था।

[बात पद्मसिंह शर्मा पर ही नही समाप्त हो जाती कि सस्कृत प्राकृत के कलाकारो म कोई भी बिहारी जसा न हुआ। हिन्दी म यह परम्परा अभी तक बरकरार है।

किसी तुलसी-जयन्ती म हिन्दी के एक बडे विद्वान् (!) ने मुझे भी गुरु गम्भीर स्वर म यह सीख दी थी कि सस्कृत म तुलसीदास क जोड का कोई कवि नही। मैंने यो हसकर ही हामी भरी थी

होता भी कसे? हाँ नाना पुराण निगमागम यदि हिन्दी म लिखे गए होते तो मरा दावा है सस्कृत म भी (तुलसीदास जसा) कोई न कोई कवि अवश्य पदा हो जाता!

जो लडके नोट पढ कर इम्तहान पास करते हैं उनके आग टेक्स्ट की बडाई करना बकार है!

४०

112 Maqbool Ganj
Lucknow
30 12 38

प्रिय जानकीवल्लभ जी

पत्र मिला। इम्तहान दे कर यहाँ आइये।

यहाँ से लडके गये है आपसे मिले होगे या मिलेंगे। तस्वीरें भेज रहा था फिर एक का निश्चय बदल गया फिर मेरी अनुपस्थिति मे वह चला गया। खर एक दूसरी छोटी तस्वीर भेजता हूँ। यह मेरी अब तक की तस्वीरो म अच्छी मानी जाती है। बाकी यहाँ लीजियेगा।

पैर का दद बढा है। आपका लेख माधुरी म ७/८ दिन म प्रकाशित, निकल जायगा। इम्तहान अच्छी तरह दीजिये।

गुप्त जी (राष्ट्रकवि श्री मथिलीशरण गुप्त) न कहा था—हम उनसे (आपसे) मिलेंगे उनका पता क्या है। मैंने कहा था—मैं राय कृष्णदास जी के यहा आपसे मिलने के लिए लिखूगा, २७ फरवरी को अगर मिल सके। उन्होंने कहा—नहीं तो हम मिलेंगे, मालूम होने पर, कहाँ हैं। इति।

आपका
निराला

४१

भुसामण्डी हाथीखाना लखनऊ
२८ ३ ३९

प्रिय आचाय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र प्रयाग म भी एक मुझे मिला था। मैं इन दिनों कुछ उलझा भी हूँ और कुछ उदासीन। उलझा इसलिए कि मरे पास बङ्किमचन्द्र का पूरा साहित्य हिन्दी अनुवाद के लिए आया है—एक दो उपन्यास मैं अनुवादित कर

भी चुका हूँ, उदासीन इसलिये कि फिजूल की दस्तनिपोडी अच्छी नही लगती—मेरा अपना काम छपने को बहुत पड़ा हुआ है।

'तुलसीदास' और 'अनामिका' निकल गई। २०/२० प्रतियाँ बात की बात मे हर हो गइ जो मुझे मिली थी, मेरे पास भी नही कोई। आपको फिर भेज सका तो भेजूगा, हालाकि प्रतिया आप ही जैसे योग्य जना को देना चाहता था। बाजपयी जी को भी नहा भेज सका।

लखनऊ मे दो तीन किताबें निकलने को हैं—कुल्लीभाट वगरह उन्ही के फेर मे हूँ।

लीडर से भी अभी दो किताबें निकलनी हैं जिनका रुपया मैं खा चुका हूँ। ऐसी भी अडचन उत्पन्न है। इसीलिये कलकत्ते से उधर नही जा सका, प्रयाग चला आया।

'चमेली' के बाद 'बिल्लेसुर बकरिहा' 'रूपाभ' म मेरा निकलेगा इसी अङ्क से पढियेगा यह ज्यादा अच्छी चीज है।

'वमली' पर 'विशाल भारत' म खिलाफ आन्दोलन शुरू हो गया, अब तक आप पढ चुके होंगे।

क्षमा आदि सब अपशब्द हैं, इससे भले आदमी की तरह प्राञ्जल भाषा मे गाली देना अच्छा है।

आपकी पुस्तक (रूप-अरूप) के छपने की बातचीत वाजपेयी जी से सुनी थी। आपका पत्र भी देखा था, वाजपेयी (पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयी) जी को दिया। उसके सम्बन्ध मे क्या हो रहा है?

अनवानेक कारणा से मैं आपलोगो से दूर रह गया हूँ, जिससे अमस्कृत हो गया हूँ। आपका साथ कुछ दिन रह तो अच्छा हो। आप कब तक आते या क्या करते हैं? फिर कहाँ जायेंगे?

यहा, मैं अभी मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं। प्राय दो-तीन महीने मुझे स्वस्थ होने म लग जायेंगे। काम सुधरा हो जाय, तब आराम की साँस भी लोचूँ।

साहित्य म बहुत पिछड गया हूँ।

'पागल' महाशय को नमस्कार।

आपका
निराला

४२

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
१६ ४ ३६

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

उत्तर बहुत देर से दे रहा हूँ। आपका पत्र इस समय पास नहीं। पता लिखते वक्त खोजूँगा।

आपका अँग्रेजी का पर्चा अच्छा नहीं हुआ ध्यान से पढ़ा या देखा नहीं होगा। तैयारी एक की सी सब की है।

आजकल संस्कृत पढ़ा रहे हैं आनन्द आता होगा।

'रूपाभ' मेरे पास रह नहीं पाता। उसमें किन्हीं विष्णुस्वरूप जी ने (विशाल भारत के) आक्षेपों का जवाब दिया है। विशाल भारत में कुछ मुमकिन निकले।

आपको जो लोग मेरा चेला समझते हैं वे गल्ती करते हैं।[1]

और सब कुशल है।

इलाहाबाद से एक मासिक 'उच्छृंखल' निकला है रामविलास जी के लेख और कविताएँ बहुत अच्छी-अच्छी उसमें अब तक के दो अङ्कों में निकल चुकी हैं। इति।

आपका
सूर्यकान्त

४३

भमामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ

३० ५ ३६

रात ६

७ ६ ३६ को प्रेषित

प्रियश्री जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला।

आपके पिछले पत्र का उत्तर नहीं दे सका। आपकी कविताएँ मुझे बहुत अच्छी लगीं।

सुधार मैं कविता मे नहीं करता या नहीं कर सकता। सुधार से कविता मे सुधारक की छाप पडती है जो मुझे अभीप्सित नहीं।

रचना मे बहुत-सी बातें रहती हैं, आप लोग जिस तरह प्रान्त प्रान्त की भिन्न भिन्न संस्कृत का पता लगाते हैं, उसी तरह हिन्दी का भी लगता है, संस्कृति दर्शन, सामाजिक विचार, साहित्यिक प्रभाव मानसिक स्थिति शिक्षा आदि बहुत सी बातें रचना के हृदय मे रहती हैं—देश-काल कलाबोध-समन्वित, प्रादेशिकता तो रहती ही है। मेरे सुधार न करने या न पाने का यही कारण है।

रही बात सीख देने की, जो इस पत्र मे आपने लिखी है सो, मैं खुद जब कि दूसरों की सीख नहीं ले सका तब आपको क्या सीख दूँ?—अगर यह कोई सीख है तो यही देता हूँ।

आपकी प्रकाश्य पुस्तक की बात पढकर खुशी हुई। आपने उस पत्र मे 'हुङ्कार' (श्री रामधारी सिंह दिनकर') की तारीफ लिखी थी, किताब मैंने पढ़ी, पढ़ने पर बहुत दिनों का पता हु हु कराति याद आया, अब सोचता हू, अगर कोई बिहारी भाई 'टङ्कार' लिखें?

बंगालियो के पडोसी होने के कारण, शायद बिहारियो मे आज की मात्रा अधिक है। मुझे मे आन फूकना बुरी बात नहीं लेकिन जो निम्न हैं उनके लिए क्या होगा? क्या वे गुरुगपाडा पसन्द करेंगे?

बाँकीपुर पटने में मेरी अनामिका+तुलसीदास नहीं मिली। बिहार मे

मेरी किताबों की कम खपत है अर्थात लोकप्रियता नहीं, यह मेरी कामियाबी है।

आपकी पुस्तक का निकलना जरूरी है। दो एक किताब निकल जाने पर फिर अड़चन न होगी।

मेरा 'कुल्ली भाट' छप गया। चार छ दिन मे निकल जायगा। जून मे दो किताबें लीडर प्रेस मे लगने वाली हैं। बङ्किमचन्द्र का पूरा साहित्य अनुवाद के लिए मिला है। दो किताबें अनुवादित कर चुका हूँ, तीसरी कर रहा हूँ। कुल्ली भाट के बाद अब गंगा पुस्तकमाला मेरी लिखी ३००/३५० सफों की महाभारत छापगी।

रूपाभ सुना, बन्द होनेवाला है। इति।

आपका
निराला

४४

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
१६ २ ४०

प्रिय जानकीवल्लभ जी

आपका पत्र मिला। कुछ दिन हुए, पागल जी लखनऊ आये थे। अनामिका मैंने उन्हें खरीद दी है। उन्होंने आपको सूचित नहीं किया शायद इम्तिहान की वजह फुरसत नहीं मिली।

आपकी रचनाओं में (रूप अरूप में गाता मैं) कोई-कोई बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। पागल जी से बातचीत हुई थी।

इधर दुलारेलाल जी की कवयित्री श्रीमती सावित्री श्रीवास्तव बी० ए० में पास होने के निमन्त्रण में महाकवि मैथिलीशरण जी पधारे हैं, कल भर यहाँ आये थे, आपकी किताब देखी समर्पण देखकर बहुत खुश अब आपका प्राणा

होगी, फिर अपने पास भेजी प्रति की बातचीत करते रहे—बीमारी के कारण अभी पढ नही सके।

मेरे सम्बन्ध मे मेरी मन्द नही मिल सकती। 'एक सद्विप्र' वाला हाल मानता हू, जसा समझ म आय, लिखिये, सब ठीक है। यो मिलने पर वह दे सकता हूँ। कौन माथापच्ची करे?

अभी तीन दिन मे गुप्त जी से—'दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी' श्लोक चल रहा है।

गुप्त जी न कहा, तुम मूर्ख हो हठी हो, कालिदास का मतलब बडे बडे विद्वान नही समझ सके, मैं जो कुछ कहता हूँ वही सही है।

मैंने मन म कहा या तो कालिदास मूख थे या आप हैं, पण्डित मर्मदर्शिन तो हैं नही एक तरफ से 'गवि हस्तिनि' नजर आते हैं।

जो दूसरे की बात नही समझ सकता या जो भौगोलिक अण्डबण्ड वणन करता है, वही मख होगा।

जहा के समुद्र का वणन है वहा वह 'अयश्चक्रनिभ' है ही नही।[2]

आजकल मैं सिफ मक्खियाँ मार रहा हूँ। जगह जगह से अभिनन्दन मिल रहे हैं उन्हे इकट्ठा करके रख रहा हूँ। एक इस पत्र के साथ भेजता हूँ।[3]

---

१ रूप-अरूप महाकवि निराला को ही समर्पित है।

२ हे समुद्र, चिरकाल की तोमार भाषा?
समुद्र कहिल, मोर अनन्त जिज्ञासा!
किसेर स्तब्धता तव ओगो गिरिवर?
हिमाद्रि कहिल, मोर चिरनिरुत्तर!

३ थी
अभिनन्दन पत्र
श्रीमान् पण्डित सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला' की सेवा म—
हिन्दी के युगान्तरकारी कवि!
आपने हिन्दी कविता म नवीन प्राण प्रतिष्ठा की है। हमारा पुराना साहित्य अपने चरम विकास को पहुँच चुका था उसम नये परिवतन करने और समाज के साथ उसे आगे बढाने की आवश्यकता का आपने अनुभव किया था। साहित्य की प्रगति के लिए सामाजिक आदर्शों के प्रति और कविता की रूढियों के प्रति आपने विद्रोह किया था। इसके लिए आपको महँगा सौदा करना पडा

इससे पहले जो कुछ लिया है, उस पत्र पर आप चोटी कटा डालेंगे इस लिए नही भेजूगा।

लीडर प्रेस से लेखो का एक सग्रह ३५०/४०० पृष्ठो का निकल रहा है कम्पोज हो गया है छपना बाकी है नाम है प्रबन्ध प्रतिमा इसके बाद कहानियो का सग्रह लगगा।

इण्डियन प्रेस से, आपको मालूम है बङ्किम के दो अनुवाद निकल चुके हैं। मैं अब तक तीन और करके द चुका हूँ।

है। वर्षो तक आपने साहित्य और समाज के प्रतिक्रियावादियो का सामना किया है। हिन्दी की नवीन शक्ति को आपन पहचाना था उसन आपका साथ नही छोडा। इसीलिए हमारा विश्वास है युग की नवीन प्रगतिशील शक्तिया को आप अपनी ओर खीच सके हैं। धीरे धीरे आप एक विद्रोही मात्र न रहकर साहित्य मे नये युग के निर्माता और उसके नायक हुए है।

नवयुग के अग्रदूत!

आज आपकी वाणी नवीन साहित्यिको की वाणी है। आपने अपनी कविता म जो आजपूर्ण और गम्भीर भावधारा प्रवाहित की है उसन नय साहित्यिको मे आत्मविश्वास पैदा किया है और उन्हें आग बढने के लिए राह दिखाई है।

आपके साहित्य को पढकर हम हिन्दी पर अभिमान होता है आपको अपने बीच पाकर हम आप पर अभिमान होता है और हिन्दीभाषी होन के नात हम अपने पर अभिमान होता है।

अनेक विषम परिस्थितियो म रहते हुए भी आपन एक योद्धा की भाँति साहित्य की सेवा की है साहित्य के उद्यान को आपन अपने रक्त स सींचा है। त्याग निष्ठा तपस्या का आदश आपन साहित्य म हमारे सामन रखा है।

हे तपस्वी!

इतने दिन साहित्य सेवा करने पर भी आपका उत्साह अब भी अक्षय है आपकी क्षमता अब भी युवको जसी है। इसीलिए हम समझत है आप युग युग म युवको के लिए एक चिरवन्दनीय और अनुकरणीय आदश रहगे।

हम साहित्यप्रेमी जो आपकी अभ्यथना के लिए यहा पर एकत्र है अपनी भक्ति को प्रकट करन योग्य कुछ नही कर पाये—लाख चेष्टा करन पर भी नही कर सकते क्योकि आपकी सेवा अति महान है उसके आगे जनता का सम्मान कितना भी बडा हो, तुच्छ ही होगा। आप चिरकाल तक हिन्दी और हिन्दुस्तान की इसी भाति सेवा करत रहे यही हमारी आतरिक कामना है।

रविवार
११ फरवरी १६४० ई०
चौक लखनऊ

हम है
आपके स्नेहभाजन
दी कासिम्क सोशलिस्टस

आपकी बहन का समाचार बडा ही दुखद है।[1] लेकिन वीर तो वार झेल कर ही वीर और धैर्य रखता हुआ ही धीर होता है। मैं आपको किन सहानुभूतिसूचक शब्दो मे धैर्य दू नही समझ पा रहा।

अध्ययन निष्फल नही होता, कभी उसका फल मिलता ही है, आपके पिताजी का हाल अवश्य ही बडा बुरा होगा। ईश्वर उन्हे शान्त करें।

आप निकम्मे क्यो निकले ?—आप तो निकम्मेपन से बाहर निकल गये हैं।

बुद्धिभद्र मजे मे हैं, रेडियो स्टेशन, लखनऊ, म काम करते हैं बाल साहित्य अच्छा लिख रहे हैं।

न मिले पत्र मे शायद मैंने देश की परिस्थिति की ओर आपका ध्यान खीचा था और लिखा था कि तब तक संस्कृत के कवियो से आधुनिक हिन्दी कवियो की एक तुलनात्मक आलोचना २०० पृष्ठो तक की लिख डालिये पक्षपातरहित होकर, कोशिश करूगा कि छप जाय और कुछ पारिश्रमिक आपको मिले।[2] माधुरी के सम्पादक से पुरस्कार देने के लिये अनुरोध किया था।

मुझे आप लोगो के विकास से प्रसन्नता है। अगर म अपनी दुबलता के कारण कुछ कर नही सकूगा तो मुझे असतोष कम से-कम नही रहेगा। इति।

आपका
निराला

---

१ उसी समय मेरी छोटी बहन सुमित्रा का, प्राय बीस बरस की उमर म आकस्मिक निधन हुआ था। 'सुमित्रा की शेष स्मृति'—नामक शोकगीति (एलेजी) शिप्रा म सङ्कलित, उसी दुखद घटना स सम्बद्ध है।

२ मेरे 'कवित्व लेखा' में ऐसी तुलनात्मक आलोचना निराला देख चुके थे। निराला की कायकला' मे तो संस्कृत के अतिरिक्त बंगला और अंग्रेजी तक तुलनात्मक दृष्टि फैलाई गई थी। मैं ऐसी (निराला द्वारा प्रस्तावित जैसी) आलोचना अनायास लिख सकता था किन्तु यत्र-तत्र कलात्मक अभिव्यक्तियो म आंशिक समता देखना एक बात है निराला, प्रसाद और पन्त को कालिदास, भारवि, भवभूति की कोटि का कवि समझना दूसरी। अब की बात और है। तब यह मेरे लिए असम्भव था।

मैं वर्षों बेकार रहा, भूखों मरा, मगर आत्मा के प्रतिकूल यह अर्थ प्रद कार्य नही किया।

४५

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
१७ ६ ४०

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपको हृदय म बडी प्रतीक्षा थी। पत्र मिलने पर बडी खुशी हुई।

पहले आपके लेख के सम्बन्ध मे लिख दूँ। पाण्डेय जी से मैंने बडी विनम्रता से कह दिया था कि आपको माधुरी स पुरस्कार अवश्य दिया जाय। लख निकलने पर सोचा भी कि एक दफा पूछूँ लेकिन इधर महीने भर से होती हुई तरह-तरह की शिकायतो के कारण यानी अस्वस्थता की वजह जाना नही हो सका। अब आपसे पच्चा चिटठा मालूम हुआ। वास्तव मे हिन्दी के पत्र पत्रिकाओ के बडे बुरे उसूल है। मैंने इसीलिए इनम लिखना बन्द कर दिया है। साहित्य सन्देश जैसे बहुत से पत्रो को माँगने पर भी मैं कुछ भेज नहीं सका।

पन्त जी हाँ बहुत आगे निकल गये हैं। उनकी युगवाणी और ग्राम्या आदि नई किताबो के अतिरिक्त पल्लविनी भी निकलने वाली है। लेकिन अभी मेरी मौलिक किताबो की एक तिहाई से कुछ ज्यादा है और अनुवादित मिलाने पर चौथाई भी नही पहुचते। मरी प्रबन्ध प्रतिमा' निकल गई है।

मुझे बङ्किम का अनुवाद जो मिला था उसम (१) देवी चौधरानी (२) कपालकुण्डला (३) आनन्दमठ (४) चन्द्रशेखर (५) कृष्णकान्त की विल, (६) रानी (७) दुर्गेशनन्दिनी (८) राधारानी (९) युगलाङ्गुरीय कर चुका हू, इण्डियन प्रेस के लिय। प्रथम तीन अनुवाद निकल चुके है बाकी साल भर म निकल जायेंगे। पाच पुस्तकें और हैं, 'सीताराम' कर रहा हू।

बस अनुवाद करता हूँ और अंग्रेजी पढता हू। अकेला हूँ अपने हाथ ठोकता खाता हूँ।

इधर बँगला लिखना शुरू किया है। हिन्दी और बाङला प्रबन्ध थोडा थोडा करके यहा की नई पत्रिका 'वन्दना' के तीन अको से लगातार निकल रहा है।

यहा के बड-बड बगाली विद्वानो का एक समूह उसका सम्पादक मण्डल है।

डा० नन्दलाल चट्टोपाध्याय, एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट् ने आधुनिक हिन्दी काव्य पर एक लेख लिखा था, वन्दना की पहली संख्या में। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी, वियोगी आदि सभी आये हैं। लेख प्रशंसात्मक है। जरा वियोगी को बनाया है, चूंकि उन्होंने अपने को कहीं रवीन्द्रनाथ से बढ़कर लिख दिया है।

लेख का एक यह भी मतलब है कि हिन्दी के कवि बँगला जानते हैं। मेरी काफी तारीफ है, साथ मेरे बंगला ज्ञान का भी उल्लेख। लेख अच्छा है।

श्री रामविलास पी० एच० डी० हो गये। अब डाक्टर रामविलास हैं। आप वहाँ क्या करते हैं, कैसे हैं, लिखें।

वास्तव में आप ही लोग हिन्दी के आशा भरोसा हैं। अधिक योग्य जनों को बड़ा दुःख है समाजवाद का इसीलिये प्रसार बढ़ रहा है। युद्ध का भीषण रूप सामने है। देखिये, क्या होता है।

आपके गीत मुझे बहुत पसन्द हैं। मैं एक आलोचना लिखूंगा। हिचक इस लिये थी और है कि पुस्तक मुझे समर्पित है।

कहानियों का संग्रह (कानन) देखूंगा। भूमिका लेखों के संग्रह (साहित्य-दर्शन) की लिखूंगा।

मैं २६ सितम्बर को काशी में प्रसाद-परिषद् का सभापतित्व करूँगा। ११ अक्टोबर को दिल्ली के रेडियो स्टेशन में रात आठ बजे से ८-४५ तक होनेवाले कवि सम्मेलन में कविता पढ़ूंगा। २६ अक्टोबर को लखनऊ में होने वाले कवि सम्मेलन में कविता पढ़ना अस्वीकृत किया क्योंकि ४/५ मिनट के लिये यहाँ वाले सिर्फ ४०) चालीस रुपये मुझे दे रहे थे, यों दूसरे यहाँ के कवि २०) में जायँगे। बाहर वाले २०)+सेकेन्ड क्लास खर्चा पायेंगे। कई बड़े कवि आ रहे हैं।

नया अभी विशेष कुछ नहीं लिखा। हिन्दी की स्थिति बहुत नाजुक है। इत्यलम्।

आपका
निराला

४६

भूसामण्डी हाथीखाना,
लखनऊ
२४ ६ ४०

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला २२ ६ वाला। आप वेदान्तशास्त्री हो गए पढ़कर परम प्रसन्नता हुई।

अध्ययन के समय कष्ट होता है बाद को इसका मुफ्त अवश्य मिलता है। फिर आप ब्राह्मण हैं, त्याग आपका आदर्श है। ज्ञान से तो आप रिक्त नहीं?

सम्भव है माधुरी म अब पुरस्कार के लिए रुपया बहुत थोडा निकलता हो। आप अपनी सहज शिष्ट शैली से लिख कर उनसे पुरस्कार निश्चित कर लीजिये, तब लिखिये।

'प्रबन्ध प्रतिमा आपको मैं अभी नही भेज सकता, कुल पुस्तकें हाथ से निकल चुकी हैं। अगर मगाने की जल्दी न हो तो कुछ ठहर जाइये। अनुवाद मै भज दूगा जब दूसरी अनुवादित पुस्तकें छप जायेंगी, मुझे अनुवादक वाली प्रतियां मिलेंगी। दिल्ली से लौट कर 'प्रबन्ध प्रतिमा' भेजूगा, अगर वहां रेडियो प्रोग्राम अपसट न हो गया।

वन्दना सुन्दरबाग लखनऊ पता है। लेकिन वन्दना की अपनी प्रतियाँ अपने लेख वाली बाद को भेजूगा।

बहुत उलझा हूँ। बहुत से काम करने है। बनारस और दिल्ली की तैयारी म हूँ। दिल्ली नई रचना भेजनी है।

घट तो भर ही रहा है।[1]

---

१ मैंने पत्र के साथ एक उसी समय का लिखा गीत भी भेजा था —

सब घट भर भर कर लौट चले,
म हू पथ पर पछताता हो!
गत एक छडते ही जिनको
वीणा के तार-तार टूटे
उनने ही, देखो, एक एक कर
सकल पारितोषिक लूटे,
हो गई विसर्जित आज सभा,
अब यह, वह, सब तो चले गए,
सूना नभ लख, हू बिलख बिलख,
म नव नव तान सुनाता हो!

मैंने साल भर पहले एक रचना की थी—'रानी और कानी', 'तरुण' में छप चुकी है, आपने देखा होगा। सब याद नहीं, कुछ इस तरह है —

रानी और कानी

माँ कहती थी उसको रानी,
जैसा था नाम,
लेकिन था उल्टा ही रूप,
चेचक मुँह-दाग, काली, नकचिप्टी,
गंजा सर, एक आँख कानी।
रानी अब हो गई सयानी,
चौका बरतन करती,
घर बुहारती, काड़ती, कूटती, पीसती,
भरती थी घड़े घड़े पानी।
लेकिन माँ का दिल बैठा रहा,
एक चोर घर में पैठा रहा,
सोचती रही वह दिन रात,
रानी की शादी की बात,
मन मसोस रहती
जब आ पड़ोस की कोई कहती—
"रानी? औरत की जात,
ब्याह भला कैसे हो?
कानी जो है वह!"

लुक छिप कर जग जग के दृग से
मैं निशि निशि भर चलते चलते,
पहुँचा उन तक उन्मन-उन्मन
जीवन रात्रि के ढलते-ढलते
मैं चौंक उठा बेकल, बेसुध,
जिन जिन से बच पहले आया
वह सब उनके उर-कण्ठ लगे,
मैं खड़ा जोड़ता नाता ही!

—'तीर-तरंग'

सुन कर रानी का दिल हिल गया,
काँपे सब अंग,
बाँई आँख से आँसू भी बह चले
माँ के दुख से,
लेकिन वह बाँई आँख काानी
ज्यों की त्यों रह गई रखती निगरानी।

४७

भूसामण्डी, हाथीखाना
लखनऊ
१६-१० ४०

प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। इसके पहले आपका दूसरा पत्र जिस दिन मुझे मिला था उसी दिन आपको मेरे पहले पत्र का लिखा जवाब मिल जाना चाहिये था। पत्र लिख कर डाल रक्खा गया था, आपका पत्र न मिलने पर, पता भूल जाने की वजह। बाद को आपका पत्र (पुराना) मिला। वह पत्र मैंने भेज दिया।

वह लम्बा पत्र था। बहुत सी बातें थीं। पत्र मैं खुद पोस्ट करता हूँ। नहीं मिला आश्चर्य है। उसमें आपकी कहानियों की तारीफ थी। कहानियाँ मुझे बहुत पसन्द आईं।

इस समय मैं बहुत उलझन में हूँ। रामकृष्ण की स्त्री को (नहीं पढ़ा जाता) महीने से राजयक्ष्मा है। आजकल मैं ससुराल, डगा-डट भेज रहा हूँ, डाक्टरों की सलाह है, शुद्ध वायु सेवन कराने की।

बिहारी कवि और लेखकों का पता भेजिये जिनका जिनका मालूम हो। मैं रेडियो में दे दूँ। बुलाने के लिए भी कहूँ।

आप प्रसन्न होंगे।

आपका
निराला

४८

भूसामण्डी हाथीखाना
लखनऊ
७ ११ ४०

प्रिय आचार्य

दीपावली का सप्रेम।

आपका कानन मिला। दो एक कहानियाँ पढ़ीं। बहुत पसन्द आई। भावना हैं अलंकार हैं और कला भी है।

पहले सोचा था आप जैसा लिखते हैं कि कहानियाँ शिथिल हैं वैसा ही होगा लेकिन असलियत उलटी दिखी। सब कहानियाँ पढ़ूँगा। फिर राय दूँगा।

२६ अक्टूबर को लखनऊ रेडियो से भी कवि सम्मेलन में मेरी आवृत्ति हुई। दिल्ली से यहाँ अच्छा रहा। दिल्ली में मेरा गला बैठ गया था जुकाम था बहुत बिगड़ा नहीं पर लखनऊ वाला ज्यादा अच्छा पढ़ना रहा गला साफ रहने के कारण। रुपये भी इन लोगों ने मेरी माँग के अनुसार कुछ घटाकर काफी दिये। दोनों जगह २००) में अखीर किया गया। सुना है अभी दूसरे कवि को रेडियोवालों ने इतना नहीं दिया।

यहाँ एक दिन लखनऊ विश्वविद्यालय के एक एम० ए० मिले हिंदी के। यहाँ हिंदी संस्कृत विभाग से मिली है संस्कृत के प्रोफेसर मिस्टर अय्यर हिंदी विभाग के भी प्रधान हैं। हिंदीवाले अध्यापक संस्कृतवालों के ही कमरे में बैठते हैं। इसलिए बातचीत में संस्कृत वाले (अध्यापक) हिंदीवालों को दबाये रहते हैं—तनख्वाह ज्यादा पाते हैं और संस्कृत जानते हैं इसलिए। संस्कृत के एक अध्यापक डाक्टर हैं वे बहुत ऐंठते हैं। हिंदी में कुछ नहीं यह उनका प्रधान वाक्य है। मेरे पास आये हुए एम० ए० ने कहा तो मैंने कहा

आचार्य जानकीवल्लभ युवक हैं संस्कृत हिंदी दोनों के कवि और विद्वान हैं उनका लेक्चर और उस डाक्टर से उनकी बातचीत कराइये।

उनकी उस समय अनुकूल इच्छा थी। देखूँ क्या होता है।

आपका
निराला

इतने दिनों का लिखा पत्र पता न मिलने से रक्खा रहा आज पत्र पता प्राप्त होने पर भेजा—

निराला १४ ११ ४०

४६

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
१६ ३ ४१

प्रियश्री जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र तथा सभापति पद से दिया भाषण मिला। भाषण गद्य में पद्य है।[1] आधुनिक हिन्दी कविता भी बड़ी सुन्दर।[2]

वेदान्त में जल्द आचार्य की परीक्षा देंगे, बड़ी प्रसन्नता की बात है। आपका श्रम फल दे चुका है।

---

१ अखिल भारतीय स्तर पर यह मेरी प्रथम अध्यक्षता थी। संवत् १९९७ (ई० ४१) में बनारस के टाउन हॉल में फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी को यह सम्मेलन हुआ था। मैंने दण्डी की शैली में, ललित किन्तु लच्छेदार संस्कृत में अपना छपा हुआ भाषण पढ़ा था। उसमें आधुनिक पद्धति का एक गीत भी था मेरा—अधुना नयनयो न हि वारि। जिसे मैंने राग बिहाग में गाकर सुनाया था।

भाषण की भाषा थी —

आशैशवादासक्तोऽपि साहित्यशुश्रूषायां विरक्तोऽस्मि सम्प्रति सुरसरस्वत्या इति हिन्दीमन्दिरद्वारि मे प्रतिच्छायाम्प्रेक्ष्य घृणाविघूर्णितघोणाकोणानां नाप्रत्यक्षम्। रुचेरपरिवर्तनशीलता संस्कृतज्ञानधनयक्षेश्वराणां भवत्येव तावदुद्वेगकरी युगानुगानां प्रत्यह प्रतिदिशं नवनवप्रकाशोल्लासलीलालहरिकालालसानां मादृशामतादृशां कृते, तेनाऽहं सप्रश्रयमाशासे, नवयवनपलाण्डुपुञ्जभक्षणमिव क्षम्यं स्यादप्रियमप्यवमननीभरसर्वांध मदमस्तृतमुखदुर्निगतं हृतं वच।

२ यह पीर पुरानी हो!

मत रहूँ हाय, मैं, जग में मेरी एक कहानी हो!
मैं चलता चलूँ निरन्तर अन्तर में विश्वास भरे,
इन सूखी सूखी आँखों में तेरी ही प्यास भरे,
मत पहुँचूँ तुझ तक, पथ में मेरी चरण निशानी हो!
दूँ लगा आग अपने हाथों, मिट्टी का गेह जले,
पल भर प्रदीप में तेरे मेरा भी तो स्नेह जले,
जल जाए मेरा सत्य, अमर मेरी नादानी हो!
वह काम करूँ ही नहीं, न हो जिससे तेरी अर्चा,
यह बात सुनूँ ही नहीं, न हो जिसमें तेरी चर्चा,
जग उँगली उठा कहे कोई ऐसा अभिमानी हो!

—तीर-तरंग

मैं अपने मित्रो को विद्वान देखना चाहता था, देख रहा हूँ। हिन्दी को अधिक से-अधिक अलग अलग विषय के विद्वान् सेवक चाहिए थे, मिलते जा रहे है। साहित्य सबको लेकर है, इसलिए सबकी श्रेष्ठता जरूरी।

मैं आपको 'प्रव प्रतिमा', बकिम के अनुवाद, वन्दना कुछ नही भेज सका। वन्दना म थोडा-थोडा ३ अको मे लिखकर लेख बन्द कर दिया था। मुमकिन फिर लिखू।

आपके कुल लेख मैंने नही पढे। आरती और कमल मेरे पास नही आती। आकर बन्द हो गइ, तत्काल लेख भेजने की पाबन्दी पूरी नही की जा सकी।

दार्शनिक हो, अदार्शनिक चोट से सबको तकलीफ होती है। बहू की मृत्यु की बडी करुण कथा है।[१]

मैंने अत्याधुनिक धारा और समाजवाद का इधर कुछ अध्ययन किया है कुछ लिख रहा हू।

किसी तरह दिन कट जाता है। इति।

आपका
निराला

---

१ सरोज के निधन के बाद फूलदुलारी की बारी आई। बेटी और बहू दोनो चली गइ।

इन दोनो (बेटी और बहू) के ब्याह म निराला ने ठोस सामाजिक क्रान्ति की थी। इनकी मृत्यु जसे उसी क्रान्ति की मृत्यु थी। अब ग्रामीण रूढियो की नए सिरे से प्रतिष्ठा बढेगी कि निराला के क्रान्तिकारी कदम विफल रहे। मैं समझता हूँ निराला के अह को कुछ इसी प्रकार की दुहरी दुश्चिन्ता स, दूनी पीडा सहनी पडी होगी।

मैंने विश्वकवि कालिदास के विश्वजनीन शब्द ही लिख भेजे थे

'न प्रयग्जनवच्छुचो वश वशिनामुत्तम गन्तुमह सि
द्रुमसानुमता किमन्तर यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चला ?'

किन्तु दार्शनिक हो अदार्शनिक चोट से सबको तकलीफ होनी है —लिखकर निराला ने कालिदास को ही नहा दुहराया था

अभितप्तमयोऽपि मादव
भजते कव कथा शरीरिषु ?

५०

C/o The leader, Allahabad
26 6-41

प्रियश्री जानकीवल्लभ जी,

आपका पत्र मिला। मैं कितने ही बार दिल्ली में लाकर भी आपको नहीं लिख सका। कुवर चन्द्रप्रकाश मुझे मिले थे। आपका सम्वाद उनसे कहते हुए मैंने कहा था, आपके जो १८) मुझ पर बाकी हैं मैं जानकीवल्लभ जी को भेज दूगा। अफसोस, इधर मुझे कोई प्राप्ति नहीं हुई। दिल्ली वाले कविसम्मेलन का न्योता आया। मुझे रेडियोवाले हिन्दुस्तान के फस्ट क्लास कलाकारों का पेमेंट करते हैं। फिर भी मुझे कुछ एतराज था। मेरी शर्त वे मंजूर नहीं कर सके। मैं दिल्ली नहीं गया। १६ जुलाई को लखनऊ रेडियो में कविसम्मेलन है। न्योता आया था। मैं नहीं जा रहा। पहले भी लखनऊ वालों से आपको बुक करने के लिए कहा था, कल एक चिट्ठी प्रोग्राम डाइरेक्टर को फिर लिखूगा। कह नहीं सकता, लखनऊ स्टेशन बिहार के कवि को बुक कर सकता है या नहीं।

'अपराजिता' वाली बात ऐसी है कि जल्दी में मुझे याद नहीं आया वाजपेयी जी का 'रूप-अरूप' की भूमिका लिखना। वह लेख भी मेरे मन के अनुकूल नहीं, मुझे फिर लिखना पड़ेगा जब किताब में दूगा। यह किताब १०।१२ साहित्यिकों के नाम के शीर्षक से, व्यक्तिगत जीवन पर लिखा स्केच है—उनका मुझपर छायापात। इसमें आपकी भी साहित्यिक और व्यक्तिगत रूपरेखा है। इसका हिसाब किताब बिलकुल नया है। तब वाजपेयीजी वाले लेख की नयी सूरत होगी। आपका और 'रूप-अरूप' का नाम भी जुड़ जायगा।

हम लोगों पर की आपकी 'आरती' में निकली आलोचना प्रथम श्रेणी की है।[1] आपके प्रति मेरे साहित्यिक मित्रों की बहुत अच्छी धारणा है। एडवोकेट दयानन्द गुप्त, मुरादाबाद, नरेन्द्र बालेन्दु शमशेर, चन्द्रप्रकाश कुवर और अञ्चल के साथी, (अस्पष्ट) के साथ पढ़े अच्छे कवि, कहानी लेखक और आलोचक हैं, आपको बहुत पसन्द करते हैं सिर्फ आपकी कहानियाँ नहीं पढ़ीं।

मैं अधूरी पड़ी 'चमेली' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' के पीछे एक मुद्दत से पड़ा हूँ। अबके शायद लिख डालूं। एक चीज इधर मन की लिखी है—

---

१ हिन्दी काव्यालोचन का क्रमिक विकास
—साहित्यदर्शन पञ्चम संस्करण पृष्ठ—५० ६०

कुकुरमुत्ता"—४५० पंक्तियों की हास्यरस की कविता। पूरी हो चुकी है। जबान हिंदुस्तानी है। मैं 'तुलसीदास' की कोटि की मानता हूँ। शुरू की प्राय १५० पंक्तियाँ मई के 'हंस' में निकल चुकी हैं देख लीजियेगा। कुछ हास्यरस की चीजों की पूर्ति में लगा हूं। कुछ लिखा है।

और सब कुशल है। आप अच्छी तरह होंगे। आपके साथ रहने से मुझे भी बड़े फायदे थे। मुमकिन, किसी समय यह इच्छा पूरी हो। काम ठीक समय पर होता है। जवानी में कुछ झेलकर रहना बुरे वक्त काम देता है। आपकी संस्कृतज्ञता हिन्दी के लिए भूषण ही है उसकी एक सर्वांग पूर्ति।¹ दूसरे अधिकांश भी अगर आपके तरफदार नहीं तो इससे आपका कुछ नहीं बिगड़ता अगर अल्पांश समझदार है।

देखें 'अपर्णा' किस अर्थ में अपनी है।²

श्री जानकी वल्लभ शास्त्री, शास्त्राचार्य, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि आलोचक और कहानी लेखक हैं। अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता लेखन-कौशल और दिव्य व्यवहार से उन्होंने अनेक बार मुझपर अपनी गहरी छाप डाली है। हिन्दी के साहित्यिक उत्थान में बिहार की आधुनिक प्रतिभा को मानना पड़ता है। जानकी वल्लभ वहाँ के और समस्त हिंदी भाषी प्रान्तों के प्रतिभाशालियों में एक हैं। उनके संस्कृत और हिन्दी के भावपूर्ण छन्दात्मक कलामय पद्य और आलोचनाएं मैं पहले देख चुका था इधर 'कानन' में उनकी कहानियाँ देखीं। कहानियों की भाषा मँजी हुई वाक्य-न्यास संगीतमय, बातचीत स्पष्ट और घटनाओं का वर्णन उठान पूर्ति और परिसमाप्ति की कलात्मकता लिए हुए ध्वनि और अलङ्कारों से सज्जित है। आनन्द लेने और सीखने की इसमें बहुत सी सामग्री है। इति।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

---

१ आमानमर्णि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्
ध्याननिर्मथनाभ्यासात् पापं दहति पण्डितः।

२ 'कानन' के बाद 'अपर्णा' सन ४१ में प्रकाशित मेरा दूसरा कहानी संग्रह है।

५१

भूसामण्डी, हाथीखाना,
लखनऊ
२५ ७ ४१

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

आपके दोनों पत्र मिले, उत्तर में देर हुई।

यहाँ १६ जुलाई, रेडियो कवि सम्मेलन में मुझे आना ही पड़ा। तब से यहीं हूँ।

अभी महीने दो महीने मेरी अवस्था सन्तोष-जनक नहीं होगी। किताब आपको नहीं भेज सका।

पाठक जी (पं० वाचस्पति जी पाठक) से मेरे अच्छे व्यवहार नहीं। इस दफे मैं एक दूसरे मित्र के यहाँ ठहरा था। दूसरी किताबों का इन्तजाम मैं दो महीने के बाद ही कर सकता हूँ।

पाठक जी ने आपको पुस्तक लिखने के लिये कहा है तो आप उन्हीं से लिखा-पढ़ी कीजिये—अपने दूसरे प्रकाशन के सम्बन्ध में भी।

प्रबन्ध प्रतिमा उन्हें भेज देने के लिये लिखिये। मैं जब तक अपनी उलझनों से छुट्टा नहीं पाता तब तक कुछ कर नहीं सकूँगा।

यहाँ रेडियो में आपका नाम मैंने दिया है। पर कहते हैं अब प्रान्तवाला सवाल आ गया है। फिर भी एक तर्क है, बिहार में रेडियो स्टेशन अभी नहीं खुला।

कुछ दिनों बाद मैं अच्छी तरह आपके लिये सोच सकूँगा।[1] प्रसन्न होंगे। इति।

आपका
निराला

---

१ मैं मगर अपनी तरफ से यही सोचता था कि कोई मेरी बिना चप्पू की नाव को उमड़ते हुए नयन मन के संगम पर ले आकर 'अश्वत्थ' के तने से कस कर बाँध देता है। स्पर्द्धा और आकांक्षा पूर्ण होकर तृप्त नहीं होती नई-नई शिखाओं में और और लहक उठती हैं।

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।'

—मनु

—अश्वत्थ खड़ा है आज भी !
जितने पौदे समसामयिक रहे इसके,
वह एक एक कर अब सब के सब खिसके !

वह जुही, माधवी, बेला की फुलवारी—
महमह करती कुसुम कसर का क्यारी,
जो बाल रसाल, तमाल तरुण थे घेरे,
हर पंछी जिनकी डाल डाल से टेरे,
बखे जो उधर इधर, न नजर फिर फेरे,
घर घर जिनकी थी चर्चा साझ सवेरे,
जल्दी जल्दी जो बढ़े, चढ़े सुर सिर पर,
मुरझा मुरझा कर मरे, अरे, गिर गिर कर !

कारण, वह खुद न बढ़े थे, गए बढाए,
सींचा करते माली खाली मुह बाए,
लग जाए डीठ न वन पशुओं की उन पर
घेरे जाते तीख कांटे चुन चुन कर,
पड जाए धूल न मुकुल फूल पर उनके—
मालिक रखवाली करते पक्के धुन के,
होता प्रचार था उनका प्रदर्शिनी में,
उनकी सुगंध उड़ती अम्बर अवनी में,
अफसोस ! मौसमी हवा लग वे आए,
कुछ दिन इतरा इठला कर पल्टे खाए !
अश्वत्थ खड़ा है आज भी !

सह सकी न कदली बदली ऋतु की आधी,
प्रिय बाल वल्लरी बिछुड़ी तरु उर-बाधी,
वे मोड़ जो सहते झंझा के झोंके,
जो मीच-बीच जीते मृत्युञ्जय होके !
क्या कुंद कुसुम आतप में तप फूलेगा ?
या लोध्र विटप पावस में हँस झूलेगा ?
चांदनी शरद की देख कनेर हिले क्यों ?
सुख शिरीष को शिशिर-तुषार मिले क्यों?
कोमल कदम्ब क्यों भला आग से खेले ?
क्या अमल कमल हेमन्त हिमानी झले ?

अश्वत्थ किन्तु आंधी, झंझा या पवि क्या
वर्षा क्या हिम क्या आग उगलता रवि क्या,
सब सहता मुसका मुसका कर हँस हँस कर,
जब सब तरु कहते त्राहि-त्राहि बस-बस कर !

जब और-और पादप वन क्रीड़ा-वामन—
धसने-से जाते कम्पित-तन, व्याकुल-मन

तब और और अश्वत्थ उठाता है सिर
ज्यों स्वर्ग धरा सम्मिलन साधना में स्थिर।
सब फिसल गए स्वर्गीय सीढ़ियां चढ़कर
सब पिछड़ गए ऊपर उठ-उठ, बढ़ बढ़ कर।
अश्वत्थ खड़ा है आज भी!
"मुंह में कोमल कोंपल की सीटी ले लो,
बालक हो! आओ, घनी छांह में खेलो!'
"दुपहर में, डालों में झुक झूले डालो,
लो, सांझ हुई, बालाओ, दीपक बालो!"
"साध्वी सुहागिनो! रंगे सूत्र हंस बांधो,
कर प्रदक्षिणा, गार्हस्थ्य-साधना साधो!"
"पशुओं को दोगे? हरी पत्तियां तोड़ो,
हो श्रांत पथिक? मत शीतल छाया छोड़ो!"
"गायें चरती हैं ग्वालबाल, तुम आओ,
श्रम बिंदु पोंछ, टुक वंशी यहां बजाओ!'
"ईंधन की तुम्हें जरूरत? डालें काटो,
मत रार बढ़ाओ, भाग बराबर बांटो!'
"नटखट लड़के! हैं उधर घोंसले हर पग,
हां, सँभल सँभल कर चढ़ो, न हों पग डगमग!"
"भूखो, लघु लघु मीठे मीठे फल खाओ,
कुछ भी न रोक, वह टहनी और झुकाओ!'
तरु भी होता है क्या स्वार्थी मानव सा?
इससे जग बरते देव या कि दानव-सा।
इसका क्या अपना? है सर्वस्व तुम्हारा,
नर बढ़ा स्वार्थवश, घटा, न जीता हारा!
अश्वत्थ खड़ा है आज भी!
जाओ भी, क्यों भागे जाते जीवन से?
तन से मिलती है शांति? शांति जड़ मन से?
जीवन का अर्थ न आत्महनन हो सकता,
रो धोकर कैसे कोई दुख खो सकता?
यह वयोवृद्ध अश्वत्थ कहे क्या तुमको?
शिशु हो तुम, इसके आगे नाचो ठुमको!
दिन बीते बीते कितने पक्ष महीने,
देखे इसने जितने युग नहीं किसी ने।
इस दीर्घकालव्यापी जीवन ने जाना
कैसे जीकर पड़ता न कभी पछताना!
सबसे न रूठते, चुप होओ, मत चीखो!
अश्वत्थ-पदों के पास बैठ कुछ सीखो—

मत डरो किसी से और न कभी डराओ
सिर झुका झुका कर उन्नत हृदय बनाओ!
जो एक बार आया वह फिर फिर आया,
इसकी अचिन्त्य पावन प्रशान्त थी छाया!
होता स्थिर मन भ्रम कटते छँटती माया
संक्षिप्त मूल डालों न क्या फलाया!
अश्वत्थ खड़ा है आज भी!

—'शिप्रा'

बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुकुरमुत्ता' पुस्तिकाएँ निकल चुकी है। 'अणिमा' एक दूसरा पद्य सग्रह जल्द निकलनेवाला है। इधर कुछ गीत लिखे है, देशदूत', 'अभ्युदय' आदि मे निकल रहे है।

आपका नाम भारत के बडे बडे आदमियो के कानो तक मैंने पहुँचा दिया है जिनमे बिहार के भी प्रमुख राजनतिक हैं। अब स्वस्थ चित्त से संस्कृत की आधी कम से कम अँग्रेजी की योग्यता भी प्राप्त कर लीजिए। सविशेष फिर।

आपका
निराला

मिट्टी नहीं हुई ? मत हो नभ तो आलोकित !
यही कम हुआ हवा हो गई अहा, सुगन्धित !!
नई हो गई पुन, पुरानी अपनी संस्कृति !
छायापथ सी नई बन गई ज्योतिमय सति !!
नाडी ली है पकड ज्योति की क्या निदान है !
आसमान मे सभी हो रहा कीर्तिगान है !!
ज्योति जगाई है ! मजार क्या भला किया है !
कहता हो, लो इस मजार का दिया दिया है !!
× × ×
खिचता जाता तेज तिमिर तनता क्या फेरा !
अरे, सवेरा भी होगा या सदा अँधेरा ?
रहे अँधेरा ये समाधियाँ दिख जाएँगी—
घास पात पर शबनम से कुछ लिख जाएगी !
कभी पढ़ेंगे लोग—न सब दिन अपढ़ रहेंगे
सब दिन मूक व्यथा न सहेंगे, कभी कहेंगे —
अधकार का तना चँदोवा था जन भू पर
दीप उजाले जलते थे बस ऊपर ऊपर !
जीवित जले हुए कीडों की ये समाधियाँ
दीप जलाना मना यहाँ उठतीं न आँधियाँ !
× + ×
दीप जगाना अगर रसम भर इधर न आना !
दीप दिखाकर अधकार को क्या धमकाना !!

—मित्र

५३

C/o Rai Bahadur S N Chaturvedi, M A
Daraganj, Allahabad
23 1 43

प्रियश्री आचार्य,

आपका पत्र तथा पुस्तक (अपर्णा) मिली। बडी प्रसन्नता हुई। बहुत सुन्दर प्रोज लिखते हैं आप। All India Radio म मैंने आपकी सिफारिश भेज दी। एक कर्मचारी मुझसे बातचीत करने आये थे, वही के, उन्हे आपकी वह कहानी-पुस्तक दे दी। अब एक प्रति और मेरे पास भेजिए। तभी अच्छी तरह कुछ कह सकगा।

२।३ कहानियाँ पढी थी भाषा बहुत पसन्द आई, प्लाट भी अच्छे लगे। यहाँ के दो एक मित्रों न पढ कर किताब की तारीफ की थी।[1]

All India Radio, Lucknow के Director से आपकी सिफारिश President, All India Hindi Poets' Conference की हैसियत से कराई है, लिखित, खुद जबानी भी की है उनके कर्मचारी से और इस बार क कवि-सम्मेलन म बुलाने के लिए कहा है। अब के नही, तो अगले दफे बुलाएँगे।

हम कवि-सम्मेलन, रेडियो, नही जायेंगे। जब बुलावा आय, हमे पहले लिख—क्या दे रहे हैं।

—निराला

---

१ 'मैंने शास्त्राचार्य पण्डित जानकीवल्लभ शास्त्री जी की लिखी 'अपर्णा' पुस्तक देखी। कहानियाँ हैं, रोचक, सरल, काव्यमयी।

गद्य मे जानकीवल्लभ जी ने चार चाँद लगा दिये हैं। हिन्दी उनके हाथ म कली की तरह दल खोलती जा रही है।

पुस्तक भाव और भाषा—दोनो की दृष्टि से यथेष्ट बन पडी है। इसका अधिक प्रचार हिन्दी के सँवरने का साधन होगा।'

—निराला

५४

मूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ,
१३ ३ ४३

प्रिय आचार्य

आपका पत्र मिला। मैं बहुत चिंतित था। बड़ी प्रसन्नता हुई।

इधर विशेष काम मैंने नहीं किया। जी नहीं लगा। कुछ बड़ी बड़ी राजनीतिक सभाओं में आवृत्तियाँ की जिनका नेताओं पर अच्छा रङ्ग रहा।

वाल्मीकि रामायण पढ़ रहा हूँ बड़ी अच्छी लगी महाकवि की भाषा।

दो किताबें निकल चुकी हैं—एक बिल्लेसुर बकरिहा दो एक रोज में निकल जायगी कुकुरमुत्ता संग्रह भी प्रेस चला गया है। उक्त दो किताबों में चाबुक की प्रति मेरे पास है लेता आऊँगा, बहुत अशुद्ध छपी है। सुकुल की बीवी' का प्रूफ मैंने देखा था किताब अच्छी है पर प्रति मेरे पास नहीं।

मैं बराबर सोचता रहा रुपये काफी आ जाय तो आपको १०।१५ किताब एक साथ खरीद कर भेज दूँ पर प्राप्ति की जगह त्याग ही प्रबल रहा।

रेडियो जाना भी बन्द कर दिया हालाँकि रेडियो वाले मुझे लम्बा payment करते थे सम्मान भी काफी दिया था। इधर पुराने प्रकाशक मित्र भी मुँह फेर चुके हैं।

आप लिख रहे हैं पढ़ कर खुशी हुई। आपसे मिल कर, बातचीत करके और प्रसन्न हूँगा। मैं १५ को मुजफ्फरपुर पहुँचूँगा।

उनकी (सुहृद संघ की) विज्ञप्ति में आपका नाम नहीं देखकर दुःख हुआ। मैं अपने भाषण में आपका उल्लेख करूँगा।

भाषण सिर्फ विहार पर होगा संक्षिप्त क्योंकि मैं अपने विचार पूरी स्वतन्त्रता से अभी दे नहीं सकता।

पता लगा कर मुझसे मिलिए अवश्य।

कविताएँ सरस और मनोहारिणी हैं।[1]

मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। नमस्कार।

आपका
निराला

अगर मुझे देर हो तो सम्मेलन में मिलिए,
मिलने न पराइये यह लिखा दीजिए।

---

१ मैं गाऊँ तेरा मन्त्र समझ, जग मेरी वाणी कहे कहे !
पाकर तेरी ही स्वर्ण किरण मेरा राग अपना पर तोले

आए आह्वान जिधर से भी, उड उधर, निकट तेरे डोले,
कोई समझे या मत समझे, वह तेरी ही बोली बोले,
बरसाए तेरी सुधा धार, जग उसको पानी कहे, कहे।
आऊँ साधक हो पाकर तेरी आभा का आभास चरम,
मेरा मन निश्चल, एकतान हो भूल दिशा आकाश परम
हो मेरी कला वही, जिसमें हो तेरा निभृत निवास स्वयम,
म गढ़ूँ प्राण प्रतिमा तेरी, दुनिया पाषाणी कहे, कहे!
वह सुख न कभी भी मिले मुझे जिससे दुख ही होता दूना,
जिससे कि भोगमी आँखें हो रहता अतर भूना भूना,
जो सत्य नहीं, वह मिट जाए मेरा घर रहे रहे सूना
हो निशिदिन तेरा ध्यान विश्व मुझको अभिमानी कहे कहे।
इस जीवन मे जो मधुर और जो कटु, कषाय या तिक्त क्षार
चादनी रात की सजल हसी, निजल जि अमा दी अश्रु धार
चिर-अर्पित चरणों मे तेरे अतर क्या, यदि पाया न प्यार
म रहूँ साधना-लीन इसे दुनिया नादानी कहे कहे।
—तीर-तरङ्ग

मधु मास न तुम पतझार हो!
यौठार हँसी की नहीं अरे तुम तो आसू की धार हो!
म तुम्हे समझता था साकी म तुम्हें कह रहा था हाला!
पर तुम युग युग की प्यास लिए हो मिट्टी का सूखा प्याला
तुम क्षार क्षार हो चुके और म कहता था—अगार हो!
थी चमक तुम्हारे जलने की मने छवि का प्रभाव जाना,
था देख न पाया घन प्रहार मुडते जाना स्वभाव माना
तुम लोहे की जजीर, कहा मने—हीरे का हार हो!
मैं था राका की रूप राशि से अपन तम को माप रहा,
इस अभिनव निजन प्रातर मे बठा विहाग आलाप रहा,
तुम मृत्यु मुक्ता मने समझा—जीवन की झकार हो!
अपराध तुम्हारा नहीं किन्तु था मेरी ही आँखों का भ्रम,
अपने को भी क्या कहूँ सत्य से यही न हो परिचय का क्रम,
तुम खार चुभे मेरे दिल मे, मने समझा था—प्यार हो!
—तीर तरग

५५

C/o Prof Nanda Dularay Bajpeyi
Durgakunda, Benares
7 5-43

प्रिय आचार्य,

आपके पत्र और सूचनाएँ मिली। सम्मेलनों की आपसे शोभा बढ रही है, खुशी की पहली बात।

विनोद जी (प० विनोदशङ्कर व्यास) के लिए वाजपेयी जी की मार्फत एक रचना भेज चुका हूँ, पर शायद अभी तक छपी नहीं। वह यहाँ मिलने के लिए प्रतिश्रुत थे, नहीं आ पाये। एक रोज मुझे बुलाया था मेरी पहुँच नहीं हो सकी। आपवाली आलोचना इसी कश मन्कश मे दब सी गई। पर उसे 'ससार' म या किसी दूसरे पत्र म देकर ही, मुमकिन, यहाँ से दूसरी जगह के लिए चलूँ।

सम्मेलन ने १००) देकर बुलाया है। मेरी फी ५००) है मैं ३५०) तक सम्मेलन को छोड दूँगा लिखा है।

प्रो० नलिन विलोचन शर्मा जी तो श्रेष्ठ साहित्यिक, परम मित्र हैं। मुझे भी बुलाया था। बिहार मुझे बुलायेगा तो अपना गौरव तो समझते ही हैं। इति।[1]

आपका
निराला

प्रियवर,

आपके दोनो पत्र समय पर मिले थे। उत्तर म विलम्ब के लिए क्षमा कीजिएगा।

आपकी कविता आज मे अब तक नही भेजी जा सकी। कोई लेने वाला आया ही नही। अब किसी दिन मैं ही दे आऊँगा।

पुस्तकें पढ़ ली होगी। हरिद्वार आप भी चलें तो अच्छा है।

---

१ इस पत्र के शीर्षभाग के रूप म वाजपेयी जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं।

मेरी पुस्तक पर यदि लिखें तो इस बार 'साहित्यदर्शन' की सी सम्मति ही न दें व्याख्या और विवेचन भी करें।[1] शेष कुशल है।

आपका
नन्ददुलारे वाजपेयी

---

१ 'हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी' के प्रकाशन के पूर्व मेरा 'साहित्यदर्शन' प्रकाशित हो गया था। वाजपेयी जी की यह व्यवस्थित समीक्षा पुस्तक पहले देखने को मिल गई होती तो मैं अपनी पुस्तक में चलती-सी चर्चा कदापि न करता। छिटफुट लेखों के आधार पर अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया था। और क्या उपाय था? यही बात आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के साथ हुई। 'विशाल-भारत' में उनकी लिखी समीक्षाएँ प्रकाशित होती थीं। गीतिका की आलोचना पढ़ कर चकित रह गया था। वेद और भागवत में प्रायः प्रयुक्त 'नम्ण' शब्द से वह अपरिचित थे। उन्होंने प्रसाद जी पर आक्षेप करने का साहस किया था। मैंने उनके बारे में भी कुछ यों ही सामान्य विरोध लिख दिया था।

तब कौन जानता था—आगे चलकर यही दोनों किसी दिन शीर्षस्थ आलोचक होंगे?

५६

Prof Nand Dularay Bajpeyi,
Durgakunda, Benares,
11 5 43

प्रिय आचाय,

नमो नम ।

एक पत्र आपको लिख चुका हूँ । आपके पत्र और समाचार मिले ।

मैंने सम्मेलन का (१५०) खच मजूर कर लिया, भेजेंगे । आप अवश्य १५ की शाम या रात तक चले आइए। चिन्ता न कीजिए अगर उन्होंने खच देकर नही बुलाया या कारणवश आप तगदस्त हैं । वहाँ आपका परिचय बढेगा । यहाँ रमेश (डा० रमेश चन्द्र मिश्र, जबलपुर) आदि से निश्चय कर लीजिएगा । विस्तार से इसीलिए नही लिख रहा । यहा हाल मालूम हो जाएँगे ।

हम भरसक १६ की सुबह वाली गाडी से रवाना होंगे । वाजपेयी जी चलेंगे । उन्हें विवाद के लिए बुलाया है, काव्य मे जीवन' पर बोलें । डयोढे का खच देंगे ।

डा० रामविलास को भी चलने के लिए लिखा है । वहा बहुतो से आपका परिचय हो जायगा ।[1] इति ।

आपका
निराला

---

१ परिचय के काल्पनिक स्वप्न सारी रात (१४ ५ ४३) खुली आँखो म पख फडकाते रहे । पौ फटते फटते चेतना ने बडी सख्ती स मुझस प्रबोध' नामक एक कविता वसूली । सुर भी दाखिल हो गए कुछ रिआयत की तो यही कि भरवी गले लग गई ।

सब ठीकठाक हो चुकन पर महज पसे पर जान देनेवालो के हाथ आत्मा के न बिक सकने से मेरा जाना स्थगित हो गया ।

प्रबोध

जागो निद्रा तन्द्रा के कर बिके हुए बेमोल
उडे सुरभि सब ओर ओर क सरसिज-सम्पुट लोल ।
गत प्रसाद की निशा दिशाए नवप्रकाश मे निखरीं
स्वण वण की सजग रश्मियाँ फूटीं, फलीं, बिखरीं ।
हुआ विलम्ब छँटा कुहरा, भास्वर स्वर नभ उन्नीत
प्रात वात के प्रथम परस से टपके द्रुम दल पीत ।

गूँज उठा आह्वान एक अरुणाभ शिखर तक फैल
रोमाञ्चित हो गई धरित्री, पुलक-प्रकम्पित शाल,
सर-सरिता-सागर में शत शत हिल्लोलित कल्लोल।
जागो निद्रा-तन्द्रा के कर बिके हुए बेमोल।।

दो डग चले नहीं, माथे पर श्रमकण झलमल झलके,
शिथिल हुआ उत्साह, छाँह छूकर अलसाईं पलकें,
करवट भी बदली न, ली न तुमने तम मे अँगड़ाई,
तब किरणों के तीर छोड़ती प्रगति चेतना आई।
देश-देश से उड़-उड़ कर, जुड़ जुड़ कर सख्यातीत,
चहक चहक विहगों ने गाए अगवानी के गीत।
केवल तुम्हीं लुके अँधियारे मे, साए मे अपने,
डूबो रहे अभिनव भविष्य के रगबिरगे सपने।
पोंछ रहे ठिठुरे हाथों से अश्रु टटोल-टटोल।
जागो निद्रा-तन्द्रा के कर बिके हुए बेमोल।।

जागो जसे गरल-बुझे बाणों से बिंधा मृगेन्द्र,
फन फलाए व्याल-वृन्द लख चञ्चल चञ्चु खगेन्द्र।
जागो, आततायियों के सम्मुख ज्यों शतमुख क्रोध,
अवमानित, धूमिल आत्मा मे ज्वलित अनल प्रतिशोध।
जागो पतझर के ममर मे ज्यों पल्लव की लाली,
गुच्छ गुच्छ, तुम पुञ्ज-पुञ्ज हो, ढक लो सघन वनाली
आँख मूँद, धधक प्रकाश मे, कब तक पड़े रहोगे ?
बडवानलपायी, सुधा नहीं, क्षार ज्वार उगलोगे ?
खंडहर तो दो छोड़, डोलते हैं भूगोल-खगोल।
जागो निद्रा-तन्द्रा के कर बिके हुए बेमोल।

—अवि

५७

C/o Prof Nand Dularay Bajpeyi
Durgakunda Benares
18 5 43

प्रिय आचार्य,

आप नहीं आए। अच्छा हुआ। हमारा जाना स्थगित रहा। कई कारण आ गए। वाजपेयी जी आ गए थे। वह भी कहा न गया। सम्मेलन में कुछ ऐसी फूट आपसी धमासान चल रहा है। कुछ और भीतरी बातें हैं।

आपका बुलाया छायावादी है। कहाँ का है कैसा है, आपने नहीं लिखा।[1] मेरी फजीहत स्वयं के ही कारण हो जाती है या नहीं यह बात नहीं। सुहृद संघ में मैं सिर्फ खर्च लेकर चला गया था।[2]

आपने यह भी कहा है ५००) के नीचे आकर पर नहीं गया। अगर आपको मेरा सम्मिलित होना उचित मालूम हो तो उन लोगों का निमंत्रण लिखिए या जनता की सभा होने पर रुपये लेकर चले आइए। उस वक्त में दोनों आदमी चल चलेंगे। इससे अधिक सहूलियत शायद आप मुझसे चाहते भी नहीं। आपका आना मेरे मनोरंजन का साधन होगा—संस्कृत के श्लोक सुनता रहूँगा। यहाँ के हालात भी आपको मालूम हो जाएँगे। दिन अपनी तरफ से निश्चित कर लीजिए।

प्रसन्न हूँ। रमेश का इम्तहान समाप्त हो गया। आपके पर्चे कैसे रहे? वाजपेयी जी मजे में हैं। आपका समाचार मिलने पर मैं अपना दूसरा कार्यक्रम तैयार करूँगा।

आपका
निराला

---

१ जीवन की दु:खद स्मृतियों में एक यह भी है। मैंने मुजफ्फरपुर के एक संस्कृत के पण्डित के फेर में पड़कर निराला जी को बुला देने का जिम्मा ले लिया था।

मेरा पत्र पाते ही निराला जी ने स्वीकृति भेज दी। मार्गव्यय भेज दिया गया। फिर उक्त पण्डित जी (श्री भवानीदत्त शर्मा) ने तार द्वारा सूचित कर दिया कि सम्मेलन की तिथि बढ़ा दी गई। निराला जी को गाड़ी से उतर जाना पड़ा।

२ सुहृद संघ ने उनकी बड़ी उपेक्षा की थी। जयकिशोर बाबू साक्षी हैं। इलाहाबाद लौटने के लिए उनके पास टिकट के भी पैसे न थे। हम दोनों से वह पैसे लेने को तैयार न हुए। किसी तरह छपरा गए। वहाँ आचार्य शिवपूजन सहाय से कर्ज लेकर इलाहाबाद लौटे।

५८

C/o Prof N D Bajpeyi,
Durgakunda,
Benares
21 5 43

प्रिय आचार्य,

आपका कोई पत्र नहीं आया, सवाद भी नहीं। आशा है आप प्रसन्न हैं। अब तक आपका निश्चय हो चुका होगा। शायद आपका निश्चय नहीं हुआ। अब आप न आयें। कुछ भेजें भी नहीं।[1]

इधर मैंने कई नई रचनाएँ लिखी हैं।

विश्वविद्यालय के विद्यार्थी प्राय सभी चले गए। गरमी अधिक पड रही है। समाचार अब इस पते पर न लिखिए। नए समाचार के लिए प्रतीक्षा कीजिए। हमारा हाल बहुत अच्छा है। इति।

आपका
निराला

---

१ मैं तब तक मुजफ्फरपुर के प० भवानीदत्त शर्मा को निकट से नहीं जानता था। भारत की काव्य नाट्यकलाओं के हिमालय विन्ध्य जैसे निराला और पृथ्वीराज के सम्बन्ध में जब मैं आत्मबल से बोलता था, मेरी सतत साधना की एकान्त अकिञ्चन स्थिति, कोरे करियर बनाने वालों की नकली शिष्टता और जहरीली विनम्रता से डँसे हुए ऐश्वर्य के मुकाबले मुझे झुठलाती नजर आती थी प्राय श्रोताओं की मुखमुद्रा गहरी रेखाओं से ढक जाती थी। एक रोज ब्रह्मदेव शास्त्री के साथ दिल्ली से गाजियाबाद (शिवेन्द्रकुमार 'परिवर्तन' के यहाँ) जाते समय बस के कुछ मुसाफिरों से गालियाँ भी सुननी पड़ी थीं। मेरा कुसूर सिर्फ यही था कि मैं ब्रह्मदेव जी से अभी अभी कलकत्ते में पृथ्वीराज के साथ गुजारे हुए चन्द लम्हों की चर्चा कर रहा था।

कौन जाने पण्डित जी का उद्देश्य भी निराला को बुलाना न होकर मेरी परीक्षा लेना ही रहा हो कि सचमुच ही मेरे लिख देने भर से निराला आ सकते हैं।

५९

C/o Prof Nand Dularey Bajpeyi
Durgakunda, Benares.
26 5 43

प्रिय आचार्य,

वाजपेयी जी ने मनीआडर का नीचेवाला हिस्सा फाड डाला था, इसलिए मनीआडर लेना पडा। आना-जाना भी पडेगा।

२९ को यहाँ से रवाना हूगा, जो गाडी सीधी आपके यहाँ जाती है उससे। स्टेशन पर आ जाइयेगा अगर यहाँ न आये—पत्र के कारण न पहुँचने का निश्चय हो और मनीआडर की रसीद जल्द न पहुँचने के कारण विचार ने पल्टा नही खाया।

आपकी आज्ञानुसार[1] तैयारी छोड दी। यानी जो तैयारी की थी, उससे बाज आया।

---

१ अपनी ही भाव धारा को निराला अस्वीकृत करना चाह रहे थे। जब 'युगवाणी' निकली थी, वाजपेयी जी के स्वर मे स्वर मिलाकर निराला जी भी उसकी गद्यात्मकता की ओर सकेत करते थे। अब कुकुरमुत्ता और रानी और कानी ऐसी कविताओ की सफलता से प्रसन्न होकर वह छाया और रहस्य के निषेध म बहुत कुछ लिखना चाह रहे थे। मैंने विनम्र निवेदन किया था कि वे नई कविताए खूब लिखें, किन्तु उनकी अमरता 'राम की शक्तिपूजा' 'तुलसीदास' 'सरोज-स्मृति'-ऐसी क्लासिक कृतियो पर ही प्रतिष्ठित होगी। ऐसे कालजयी कृतित्व का विलोम होगा भी क्या ? बूढे इतिहास निर्माताओ तक को झख मार कर उन अमर रचनाओ की बदौलत निराला की मौलिक प्रतिभा स्वीकारनी पडी।

निश्चय ही यह मेरा तात्कालिक विश्वास था। अब तो नए-से-नए समीक्षको को आलोचना का मानदण्ड निर्धारित करने के क्रम मे निराला की बहुमुखी मौलिकता को मानते देखकर अपने बाल-सुलभ उदगार पर हँसी आती है।

'दृष्टिकोण' ने सम्पादकीय मे लिखा था

"बिना प्रचार के बिना तूलकलाम और फतूर के सबकी दृष्टि म कलम की नोक पर सम्मान और श्रद्धा के पात्र निराला ही उतरे। उदाहरण के लिए निराला को छोडकर दूसरे किसी कवि को आप सामने नही ला सकते, जिसके काव्य के प्रति सबकी समान उत्कण्ठा जाग्रत हो। उनके समानधर्माओ को ही ले लीजिए, वे प्रगतिवादी समालोचको की कलम पर रूढिवादी तथा परम्परा की कतार म खडे किये गए किन्तु मजाल नही कि निराला को वसे विशेषण अथवा कतार मे खडा करने की उन्होंने हिमाकत की हो ।"

ऐसे मे मुझे महिमभट्ट की याद आती है —

एक रोज दिल मे आया जो कुछ पद्य-साहित्य मे लिखा है, उसका उल्टा लिख डालूं। इति।

आपका
निराला

"युक्तो, यमात्मसदृशान प्रति मे प्रयत्नो
नास्त्येव तज्जगति सवमनोहर यत्
केचिज्ज्वलन्ति विकसन्त्यपरे निमील—
न्त्यन्ये यदभ्युदयभाजि जगत्प्रदीपे।"

—व्यक्तिविवेक, प्र २।

५६

C/o Prof Nand Dularey Bajpeyi
Durgakunda Benares.
26 5 43

प्रिय आचार्य,

वाजपेयी जी ने मनीआडर का नीचवाला हिस्सा फाड डाला था, इसलिए मनीआडर लेना पडा। आना-जाना भी पडेगा।

२६ को यहाँ से रवाना हुआ, जो गाडी सीधी आपके यहाँ जाती है उससे। स्टेशन पर आ जाइयेगा अगर यहाँ न आये—भय के कारण न पहुँचने का निश्चय हो और मनीआडर की रसीद जल्द न पहुँचने के कारण विचार ने पल्टा नहीं खाया।

आपकी आज्ञानुसार[1] तयारी छोड दी। यानी जो तयारी की थी उससे बाज आया।

---

१ *अपनी ही भाव धारा को निराला अस्वीकृत करना चाह रहे थे। जब* 'युगवाणी' निकली थी, वाजपेयी जी के स्वर मे स्वर मिलाकर निराला जी भी उसकी गद्यात्मकता की ओर सकेत करते थे। जब कुकुरमुत्ता और रानी और कानी ऐसी कविताओं की सफलता से प्रसन्न होकर वह छाया और रहस्य के निषेध म बहुत कुछ लिखना चाह रहे थे। मैंने विनम्र निवेदन किया था कि वे नई कविताएँ खूब लिखें, किन्तु उनकी अमरता राम की शक्तिपूजा' 'तुलसीदास' 'सरोज-स्मृति'-ऐसी क्लासिक कृतियो पर ही प्रतिष्ठित होगी। वसे कालजयी कृतित्व का विलोम होगा भी क्या? बूढे इतिहास निर्माताओ तक को झख मार कर उन अमर रचनाओ की बदौलत निराला की मौलिक प्रतिभा स्वीकारनी पडी।

निश्चय ही यह मेरा तात्कालिक विश्वास था। अब तो नए-से-नए समीक्षको को आलोचना का मानदण्ड निर्धारित करने के क्रम म निराला की बहुमुखी मौलिकता को मानते देखकर अपने बाल-सुलभ उदगार पर हँसी आती है।

'दृष्टिकोण' ने सम्पादकीय म लिखा था

"बिना प्रचार के बिना तुल्कलाम और फतुर के, सबकी दृष्टि म कलम की नोक पर सम्मान और श्रद्धा के पात्र निराला ही उतरे। उदाहरण के लिए निराला को छोडकर दूसरे किसी कवि को आप सामने नही ला सकते, जिसके काव्य के प्रति सबकी समान उत्कण्ठा जाग्रत हो। उनके समानधर्माओ को ही ले लीजिए वे प्रगतिवादी समालोचको की कल्म पर रूढिवादी तथा परम्परा की कतार म खडे किये गए, किन्तु मजाल नही कि निराला को वसे विशेषण अथवा कतार मे खडा करने की उन्हान हिमाकत की हो ।

ऐसे मे मुझे महिमभट्ट की याद आती है —

६०

C/o Prof N D Bajpeyi,
Durgakunda,
(Benares)
31 5 43

प्रियश्री आचार्य,

मैं शनिवार को गाडी पर चढ गया था, उस समय आपका तार लेकर बाजपेयी जी का भेजा हुआ एक आदमी पहुँचा। तार म लिखा है Date extended see letter। पत्र अभी तक आपका नही मिला।

रहस्य कुछ समझ म नही आ रहा। अब आपकी दूसरी तारीख पर हमारा जाना गैरमुमकिन है। २ ३ दिन म यहाँ से सब लोग चले जायेंगे।

बरसात म या पूजा के समय हम आपके यहाँ आयेंगे अगर सही सलामत रहे। जनता तथा स्थानीय जनो को आवृत्ति सुना देंगे।

इस प्रसग म हमे बडा कष्ट उठाना पडा। स्टेशन से गाडी से फिर वापस आये।

आप चिन्ता न कीजिये। चुपचाप अपना काम कीजिए। यह सब धीरे धीरे समझ मे आयेगा।[1]

आपका
निराला

---

१ सौ बात की एक बात, मेरी समझ पर पत्थर पड गए खाक कुछ पल्ले न पडा अब तक ! हाँ, जिन महान गुणों ने निराला को सरनाम किया उन्हे कौन हँसी मे उडा सकता है ?

"देख रहे चाँदनी ?—दूध की धुली चाँदनी !
क्या कहते हो,—लगती मीठी मदिर, मादनी ?
तो देखो, वह ठोस भूमि पर उतर चुकी है,
कटकर, जुडकर, धँसकर, फिर फिर उभर चुकी है !
देखो सर को, सरि को, कल्लोलित सागर को,
देखो मिट्टी को, जीवन-आगर गागर को।
पर ऊपर क्या ?—ऊर्ध्वचेतना ? क्यों हठ ठानो ?
भृकुटि कुटिल कर आँख मूद लोगो सच मानो।

म कलक से भरा, शून्य मे रहता आया,
नक्षत्रो के तट प्लावित कर बहता आया,
अध प्रहार अमा का गुमसुम सहता आया,

कुछ दिनों में बताऊँगा। आइएगा, फिर यहीं से मुजफ्फरपुर चला जायगा।

मसूरी कविसम्मेलन से रुपये आये थे, नहीं लिए, नहीं गया।

शरच्चन्द्र+उनकी पार्टी से मेरी बातचीत हुई थी, जब मेरा प्रारंभिक जीवन था, कभी लिखूँगा।

काशी से लिखा हमारा पत्र मिला होगा कि मुजफ्फरपुर चलते वक्त क्या आफत रही। आपका पत्र मिला था।

आपका
निराला

६१

112, Maqboolganj
Lucknow
21 6 43

प्रिय आचार्य,

इस समय हम लखनऊ में हैं। आपके यहाँ (मुजफ्फरपुर के सुप्रसिद्ध साहु परिवार में) प्रसिद्ध बँगला औपन्यासिक शरच्चन्द्र थे। श्रीमान महादेव जी सेठी[1] के यहाँ उनकी पहले की लिखी, तारुण्य की, कोई किताब रह गई है—वह छोड़ गये थे, जो अब नहीं मिलती। वह बनेली (राज्य, भागलपुर) में भी नौकरी कर चुके हैं। आप जानते हैं।

इधर प्रसन्न रहता हूँ। यहाँ भी पानी बरसा है। अणिमा अब निकल ही रही है। १०० सफे की पुस्तिका है। एक उपन्यास इसी लगाव लिख डालना चाहता हूँ।

अभी काशी फिर जाऊँगा। डा० रामविलास के छोटे भाई रामस्वरूप एम० ए० का ब्याह है, बारात में।

---

१ श्री इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है

एक दिन पिता से शरत की अनबन हो गई और वह घर छोड़ कर नागा संन्यासियों के साथ मुजफ्फरपुर चले गए। मुजफ्फरपुर में शरतचन्द्र एक बहुत अच्छे गायक के रूप में प्रसिद्ध हो गए। महादेव साहु नाम के एक बहुत बड़े जमींदार भी उनकी संगीत-कला पर मुग्ध हो गए और उन्होंने शरत को अपने पास बुला लिया।

शरतचन्द्र के कुछ जीवनी-लेखकों का कहना है कि शरतचन्द्र के 'श्रीकान्त' नामक उपन्यास में जिस राजकुमार की चर्चा आई है, जिसके साथ 'श्रीकान्त' की घनिष्ठ मित्रता हो गई थी, वह यही महादेव साहु हैं।'

—शरतचन्द्र व्यक्ति और कलाकार
पृ० १६०

मैं सन् ३६ के अन्त में पहली बार मुजफ्फरपुर आया था। तब भी यह घटना दो पीढ़ी पुरानी थी। फिर भी सुना था कलकत्ता—न्यू थियेटर्स में जो चन्द्रावती, कलावती आदि कई अभिनेत्रियाँ काम करती थीं वे मुजफ्फरपुर के महादेव बाबू से अनुबद्ध किसी बंगाली नर्तकी-गायिका की ही सन्तानें थीं। चन्द्रावती ने तो शरत् के भी कई चित्रों में काम किया था। ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं श्रीकान्त की राजलक्ष्मी ही चन्द्रावती की माँ थी। ऐसे कीचड़ उछालने वालों को कोई क्या करे?

६३

युग मन्दिर,
उनाव
१७ ६ ४३

प्रियश्री आचार्य,

आपकी पुस्तक 'साहित्य-दर्शन' मिली। साद्यन्त पढ़ूगा। आपकी शैली मुझे प्रिय है। पुस्तक आपकी आज ही मिली।

आपके लिए मैं प्रयत्न करूँगा। रेडियो में नही जाता। दूसरे की राय पर शायद वे लोग कम ध्यान देते हैं अगर वह गैरसरकारी है। अन्यत्र देखूगा।

मेरी सिफारिश की आर्थिक मसले पर कीमत नहीं, आपको मालूम है।

'अणिमा' दुर्भाग्य से अब तक दफ्तरी के यहाँ से नही निकली। छप चुकी है। सुना है कोई दुघटना उसके यहाँ हो गई है। दो चार रोज मे आ जायगी।

उपन्यास काफी रोचक है। यही प्रधान गुण है। यह जीवनचरित जैसा नही, सालहो आने उपन्यास है। इधर अरसे स लिखना बन्द है। जल्द प्रेस जानेवाला है। शली सीधी, निरलकार। घटनाओ का चमत्कार।

दाँतो म (?) योजोट नाम की दवा के प्रयोग का यह फल हुआ है कि उसके बहने से होठ और ठोढी का एक हिस्सा जल गया है।

भवानीदत्त जी स कह दें, इसीलिए गमन नही हो सकता। मुखारविन्द भस्म हो गया है।

आपके मित्र भट्टाचार्य (देवेन्द्रनाथ भट्टाचार्य) ने एक पत्र लिखा था, उनका पता खो गया है उन्हे फिर पत्र भेजने के लिए लिख दें। खुद भी पता दे सकते है।

आपके 'तीर-तरग' के प्रकाशन की और रुपया की बातचीत करके जल्द आपको लिखूगा। आशा है, वही कामयाबी हो जायगी।

आपका
"निराला"

जरूरी —

चौधरी राजेन्द्रशकर जी कहते है कि
अक्टोबर के अन्त तक १००) भेजगे।
किताब भेजें।

—नि०

६२

Yugmandir,
Unao
28 8 43

प्रिय आचार्य,

आपको लिखा, लेकिन कोई उत्तर आपका नहीं आया। समझ म नहीं आता कि आपका हाल क्या है।

आप लोगों म कौन-कौन कलकत्तावाले कविसम्मेलन मे गये, वहाँ कैसा रहा, पुरस्कार किन्ह मिला और आजकल क्या लिख रहे हैं सूचित कीजिएगा।

आपका निबन्धोवाला सग्रह निकल गया होगा पर मिला नहीं। इधर क्या लिख रहे हैं ?

मेरी 'अणिमा' निकल गई। उत्तर मिलने पर भेजूगा।

एक उपन्यास प्रेस जानेवाला है 'चोटी की पकड'। २५० ३०० सफो का है। अभी पूरा नहीं हुआ।

मैंने सम्मेलन जाना एक तरह छोड दिया है। कई अच्छे निमन्त्रण आये, नहीं गया। उपन्यास पूरा कर रहा हूँ। सीधी भाषा म है। अभी तक अच्छा चला, आगे की नहीं मालूम। उतर जायगा। बिकेगा अच्छा। घटना प्रधान है।

आपके वेदा का क्या हुआ ?[1] अन्य क्या समाचार हैं ? डा० रामविलास आगरे के किसी राजपूत कालेज के अँग्रेजी विभाग के प्रधान हैं।

अच्छी तरह होंगे आप। मेरे कई दाँत हिल गय है दद रहा, उखडवाना चाहता हूँ।

आपका
—निराला,
युगमन्दिर

१ वेदान्त ने नाक म सुतली पिरो दी थी, अब वेदा के कोल्हू मे डाल कर नाकाम जिंदगी को पेरना चाह रहा था।

६३

युग मन्दिर,
उनाव
१७ ६ ४३

प्रियवी आचार्य,

आपकी पुस्तक 'साहित्य-दर्शन' मिली। साद्यन्त पढ़ूँगा। आपकी शैली मुझे प्रिय है। पुस्तक आपकी आज ही मिली।

आपके लिए मैं प्रयत्न करूँगा। रेडियो में नहीं जाता। दूसरे की राय पर शायद वे लोग कम ध्यान देते हैं अगर वह गैरसरकारी है। अस्तु देखूँगा।

मेरी सिफ़ारिश की आर्थिक मसले पर क़ीमत नहीं, आपको मालूम है।

'अणिमा' दुर्भाग्य से अब तक दफ्तरी के यहाँ से नहीं निकली। छप चुकी है। सुना है, कोई दुर्घटना उसके यहाँ हो गई है। दो-चार रोज़ में आ जायगी।

उपन्यास काफ़ी रोचक है। यही प्रधान गुण है। यह जीवनचरित-जैसा नहीं, सोलहो आने उपन्यास है। इधर अरसे से लिखना बन्द है। जल्द प्रेस जानेवाला है। भली सीधी निरलंकार। घटनाओं का चमत्कार।

दाँतों में (?) पायरोरिया की दवा के प्रयोग का यह फल हुआ है कि उसने बहुत से होंठ और ठोढ़ी का एक हिस्सा जल गया है।

भवानीदत्त जी से कह दें, इसीलिए गमन नहीं हो सकता। मुखारविन्द भस्म हो गया है।

आपके मित्र भट्टाचार्य (देवेन्द्रनाथ भट्टाचार्य) ने एक पत्र लिखा था, उनका पता खो गया है उन्हें फिर पत्र भेजने के लिए लिख दें। खुद भी पता दे सकते हैं।

आपके 'तीर-तरंग' के प्रकाशन की ओर रुपया की बातचीत करके जल्द आपको लिखूँगा। आशा है, कहीं कामयाबी हो जायगी।

आपका
'निराला'

ज़रूरी —

चौधरी गजेन्द्रशंकर जी कहते हैं कि
अक्टोबर के अन्त तक १००) भेजेंगे।
किताब भेजें।

—नि०

६४

C/o Pdt Bhagawati Pd. Bajpeyi,
Daraganj Allahabad
23 10-43

प्रिय जानकीवल्लभ जी,

शायद १०।११ नवम्बर को प्रयाग की नुमाइश मे कवि सम्मेलन होने वाला है।

आपको ६५) भेज कर बुलायेंगे। हम रहेंगे। आइये।[1]

८।९ को मुशायरा है। हम यहीं हैं।

—निराला

---

१ और इधर मैं लिख रहा था —

हूँ खड़ा सूनी डगर मे !
आत्म विस्मृत हो रहा जैसे —
तुझे ही याद कर मै !!
एक झोंका धूलि धूसर वायु का छू देह जाता,
और, पछी एक ऊपर से दिखाता नेह गाता,
दिख रहा दयनीय कैसा
इस अबुझ धूमिल प्रहर मे !
चुप खड़ा तेरी डगर मे !!
वत्स उत्सुक धेनुओं का सुन रहा सकरुण रँभाना,
देखता हूँ, गहि जनों का तीव्र-पद गह लौट जाना,
लग रहा कितना अकेला
आज अपनी ही नजर मे ?
क्यों खड़ा सूनी डगर में ?
सोचता हूँ साँझ हो जाती पहुचते सिन्धु-तट तक,
क्या कभी भी पहुच पाऊगा न मै तेरे निकट तक,
लहर कर से कौन इंगित—
कर बुलाता है भँवर मे ?
हाय ! मै अब तक डगर मे !

—तीर-तरङ्ग। ६

६५
C/o Pdt Bhagawati Pd Bajpeyı,
Daragunj, Allahabad
2 11 43

प्रिय आचार्य,

आपका हाल और रुपये ५ से पहले भेजने की बातचीत पन्तजी से कह दी।[1]

अगर भेजें तो आयें। कह दिया कि ६५) भेजें, चाहें तो तार का खर्च काट लें।

आपका
निराला

---

१ केवल निराला की सिफारिश पर मुझ जैसे अनात-कुल शील को पैसे देकर कहाँ कौन बुलाता। रायगढ़ (राजदरबार) छोड़ने के बाद से गवर्नमेंट संस्कृत कॉलिज की नौकरी मिलने तक का, छह-आठ वर्षों का लम्बा अर्सा भयानक मुफलिसी में गुजरा। एक ओर निराला की मुसल्सल कोशिश, दूसरी ओर मेरी हरकदम नाकामयाबी। और इसी उमस में एक दिन यह 'वन-सुमन' खिला था—

विजन वन का सुमन हूँ मैं सुरभि अपनी सँजोए,
भ्रमर के गान से अनजान प्राणों को भिगोए।
रहूँ, रोता? अरे, मेरे रुदन का अर्थ ही क्या?
— विवश मुसकान मुद्रा सर्वथा है व्यर्थ ही क्या?
रहूँ गाता? समझता कौन मेरा मौन सृजन,
न मेरे भाव में बादल, न विद्युत, वज्र-गर्जन।
कि पारावार सा होता न हाहाकार मेरा,
न दुर्जय ज्वार सा उद्दाम, उन्मद प्यार मेरा।
सजल कैसी अतलता में हृदय घट हूँ डुबोए।
विजन वन का सुमन हूँ मैं सुरभि अपनी सँजोए।।
सिसकती गंध रन्ध्रों में, पवन निस्पन्द क्यों है?
मदिर मकरन्द घुलता मन्द प्रतिदल बन्द क्यों है?
समझता हूँ कि वन उपवन रहे हैं मौन क्योंकर,
—कि मुरझाए कुसुम कितने प्रथम आमोद खोकर,
—मुकुल मसले गए कैसे अबल दल डंठलों पर।
—गए झर या उड़े नभ के प्रलय भरते परों पर।
उमंगों को रहा दुलरा न कोई रंग खोए।
विजन वन का सुमन हूँ मैं सुरभि अपनी सँजोए।।

इकाई की मुझ चिंता—पटे खाइ कहीं की,
कि जीते 'हाँ', सुनिश्चित हार हो जाए 'नहीं' की।
समन्वय द्वंद्व का—संगति अपेक्षित दुःख सुख की।
न हो मन प्राण में जब तक, खुले खालो न मुख की।
विषम सम्वेदनाओं की न कोई तान तोड़े—
चढ़ाने को कहूँ सिर झट झपट गरदन मरोड़े।
—लगाने जो कहूँ उर से सुई कोई चुभोए।
विजन वन का सुमन हूँ मैं सुरभि अपनी सजोए।।

वन-सुमन अर्चतिका

६६

C/o B P Vajpeyi,
Daragunj, Allahabad
2 12 43

प्रिय आचार्य,

मैं यहाँ हूँ। चौधरी साहब (कवयित्री सुमित्राकुमारी सिन्हा के पति चौधरी राजेन्द्र शङ्कर) यहाँ आये थे। मैंने १००) तत्काल आपको भेजने के लिए कह दिया था।[1] उन्होंने भेज दिये होंगे। खबर नहीं मिली।

आपकी पुस्तक (तीर-तरङ्ग) मैंने नहीं देखी, पर उसे भी प्रेस में दे देने के लिए कह दिया था।

अभी तक हवा खाता रहा। जल्द समाचार दीजिए।

आपका
निराला

मौत का एक दिन मुअय्यन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती।
—ग़ालिब

मुरत्ये एक दिन मुताइन है,
नींद मिनसार भर नहीं आई।[2]
—निराला

---

१ नहीं, मेरे पास कभी कोई सौ रु० किसी ने नहीं भेजे थे।

२ बीस बरस पहले भी निराला ने सूरदास जी के एक प्रसिद्ध—कृष्ण माहात्म्य के पद के साथ अपना 'कृष्ण महातम।' प्रकाशित कराया था

गोरी मोहन सों सगी गोरी ब्रज-बनितान।
गले लगायो प्रेम सों श्याम कामतनु कान्ह॥
श्याम कामतनु कान्ह रूप भौंरे ने पायो।
लिख्यो कमलिनी हरषि अङ्क भरि उर घटायो॥
प अब ऐसो हाल कि काने हाथ पसारे।
धन्य भर को प्रेम सेन 'गोरन' सों हारे॥ —निराला

*

६७

C/o Pdt Bhagavati Prasad Vajpeyi
Daraganj Allahabad

प्रिय आचार्य

आपका पत्र मिला। मेरे पत्र का उल्लेख आपने नहीं किया मिला या नहीं।

गया में मैंने कहा था कि आपको मैं लिख चुका हूँ। उसमें मैंने अधिकार के न बिकने की बात स्पष्ट कर दी थी। यहाँ से चौधरी साहब को एक पत्र मैंने (वहाँ से लौट कर) फिर लिखा। रुपये १००) अग्रिम रायल्टी के तौर जल्द भेज देने और किताब प्रेस के सिपुर्द कर देने पर जोर दिया। दुख है अभी तक उनका उत्तर नहीं मिला। मैंने यह भी लिखा था कि किताब मेरे पास भेज दीजिए अगर न छापना चाहें मैं यहाँ कोई प्रबन्ध कर दूगा। समझ मे नहीं आता, उनके मौन का क्या अर्थ है। छापेंगे अवश्य नहीं तो वापस कर देते। मुमकिन मेरे यहाँ रुक जाने से स्नेह कोप हुआ हो।

आपको यहाँ के कवि सम्मेलन में बुलाने का अवश्य प्रबन्ध करूँगा। और भी देखता हूँ अगर कुछ कर सकूँ। आपकी पुस्तक जल्द मिलेगी, आशा है। हाँ डाक-व्यय न करें मैं फागुन में खर्च भेज कर एक बार आपको बुलाऊँगा, उस समय साथ लेते आयें।

इधर मेरा काम ढीला है। थोड़ा ही थोड़ा लिख पाता हूँ। फारसी बह्रों पर कुछ गीत लिखे हैं—गजलें। अभी बहुत अच्छा नहीं बन पड़ता।

संस्कृत शब्दों से, जैसे—

'अशब्द हो गई वीणा विभास बजता था,
अमिय स्वरण नव जीवन-समास बजता था।'

हिन्दी से जैसे—

"हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन,
गले के हार के होते हैं ये बहार के दिन।"

आपका साहित्यिक कार्य स्तुत्य है। थोड़े समय में आपने बहुत काम किया। प्रो॰ शिवपूजन सहाय जी ने आपकी कई पुस्तकों का उल्लेख अच्छे प्रशंसा की सूची में किया है।

हम तो थोड़ा ही करते अगस्त हो कर अधिक समय स्पर्धा प्रतिरोध में पार हो गया। अवश्य दम ! आशा नया जीवन मिलता है।

अभी यहा बडे दिनो मे डा० रामविलास आये थे। आधुनिको में बडा नाम कर रहे हैं। यू० पी० के प्रगतिशील-लेखक सङ्घ के सेक्रेटरी हैं। लखनऊ मे भी उनका व्याख्यान हुआ, हम लोगो ने यहाँ भी कराया। एक घण्टे तक खूब बोले। साथ प० गङ्गाप्रसाद मिश्र एम० ए० थे। दिल्ली मे टाक थी, डा० रामविलास गये।

मेरा एक व्याख्यान श्रीमती महादेवी जी की महिला विद्यापीठ मे हो चुका है दो घण्टे का, एक फिर होनेवाला है।—आधुनिक साहित्य पर फिर होगा। क्योकि सक्षेप निकालने मे भी मुझे कई घण्टे आवश्यक हो गये। फिर विश्वविद्यालय मे भी होगा।

प्रसन्न हूँ। गगा नहाता हूँ, भली तरह रहता हूँ, वार्धक्य आनेवाला है—तयार हो रहा हूँ। साधारण जन का असाधारणत्व कहाँ तक पहुँचेगा।[1]

कवि लोग खूब लिखते है। तुलसीदास सब के सिरमौर।

कुशल-पत्र दीजियेगा। अच्छे होंगे।

आपका

निराला

पुन—

आप 'वदाचाय' मे बैठनेवाले थे, क्या हुआ? अभी तक इसका समाचार नही मिला, अरसा हुआ।

—नि०

---

१ जहाँ तक वाल्मीकि व्यास सूरदास-तुलसीदास पहुँच सके। हमारा दश गटे और टगोर-ऐसो की भी समृद्ध प्रतिभा से पृथक प्रकाशित ऋद्धि सिद्धि से कभी अपनी परम्परा का मुँह नही उजालता।

फिर जिसने 'अपरा' लिखी है उसकी दृष्टि निश्चय ही 'परा' तक पहुँच चुकी है। परा के प्रत्यय के बिना अपरा की अनुभूति असम्भव है।

६८

दारागंज, प्रयाग
१३ २ ६४

प्रियवर आचार्य

आपका कृपापत्र मिला। प्रसन्नता हुई।

आप वहाँ प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ रहते हैं स्वयं भी मधुरभाषी व्यवहारकुशल हैं, कोई जगह मिल जानी चाहिए थी। विभिन्न हाथ साहित्य लिखा रहता।

सही लिखा है आपने, विद्या की परीक्षा से नौकरी की परीक्षा और कठिन है। देखिए, क्या गुजरती है गिरमने लिए पर।

'चौधरी' जी ने आधे ही दाम भेज।—अरध तजहिं बुध सरबस जाता।

कल उनका खत आया है तीन महीने के बाद—सुमित्रा जी के शिशु हुआ है १३ को यानी आज आ रहे हैं अब तक लिख नहीं सके 'तीरन्तरङ्ग' प्रेस चली गई आदि आदि।

यहाँ मजाक यह हुआ है जब उन्होंने खत का जवाब नहीं दिया मैंने चोटी की पकड़ दूसरे के हवाले की—आठ फार्म छप चुके हैं।

पता नहीं यह हाल मालूम करके क्या रुख लें कहीं आपके बाकी पचास पर न पानी फेर दें।[1]

मैं 'कांटा''—एक बृहत काव्य सग्रह तयार कर रहा हूँ। आधुनिक ढंग है।

चीज़ें लोगों को कम पसन्द आ रही हैं। इसको मैं उनका तयार न हुआ संस्कार समझता हूँ।

यह मसाला मैं जलावा है। देशदूत में रचनाएं निकल रही हैं। जसे—

सत्य

तबला दोनो हाथ आया हथियार,
दरबारी थोर राग गाया गया।
× × ×
कद पासपोट को नहीं तो कभी
देश आधा खाली हो गया होता।
देविका रानी थोर उदय शकर के
पीछे लगे लोग चले गये होते।

काँटा

मुहोमुह रहे
एक पेड़ पर दो डालों के काँटे जैसे
अपने दिल की कली तोलते हुए।
× × ×
गुल खिला,
आप आँख का काँटा हो गई।

—निराला

'उषा' को दो रचनाएँ भेजी हैं। चिन्ता न कीजिए। यहाँ से भी उपार्जन का प्रबन्ध हो सकता है।

तीन महीने किसी तरह खेल जाइये। मुझे अँगरेजी में उपन्यास लिखने का प्रोत्साहन मिला है। रुपये इसी तरह मिलेंगे।

तीन महीने बाद यहाँ आइये। मुझे संस्कृत पढ़ाइये। मेरे साथ रहिये।

मेरा अगला उपन्यास अँगरेजी का होगा। इति।

—निराला

---

१ यही तो हुआ। 'तीर-तरङ्ग' छपा। कवीन्द्र राजेन्द्र शङ्कर जी उन्होंने उसकी बहुत प्रतियाँ बेची। किन्तु पैसा एक भी नहीं लिया। साहित्य-साधना में दस वर्षों में कुल चार सौ रुपए मिले थे—एक साल में चालीस रुपए।

सन '३५ से '४४ तक में केवल एक निबन्ध—'मीरा और महादेवी' पर पं० शान्तिप्रिय जी द्विवेदी ने १५) रु० भेजे थे। बातन (पूरी पुस्तक) के लिए डेढ़ सौ पुस्तक भण्डार और अपर्णा के लिए सौ रु० पं० रामगहिन मिश्र और गाथा के लिए सौ रु० मुक्त जी ने दिए थे।

२ काँटा का ही परिवर्तित नाम 'नये पत्ते' है।

६९

दारागंज, इलाहाबाद
१६.२.४४

प्रिय आचार्य

आपका कार्ड मिला। पत्र का उत्तर लिख कर रख दिया था। भेजा जा रहा है। असामयिक हो गया है।

आपकी बीमारी के समाचार से वज्रपात हुआ।[1]

जैसा लिखा है चौधरी जी आये थे हमने रुपये भेज देने के लिए कहा है। आज फिर तार कर रहे हैं कि तार से भेज दें।

आपके एकाएक अस्वस्थ होने का कारण नहीं मालूम, आपने नहीं लिखा। परिश्रम—लेखन अध्ययन और चिन्ता होगा। धैर्य से रहिए।

विश्वास है जल्द अच्छे हो जाइएगा।

आपके पिताजी को नमस्कार।

—निराला

---

१ पन्त की बीमारी का हाल सुनकर निराला बड़े बेचैन हो गए थे, महादेवी और जितने ही दूसरों ने इस पर क्या कुछ नहीं लिखा, किन्तु मुझ जैसे एक अत्यन्त तुच्छ व्यक्ति के लिए भी वह करुणालय उसी भाँति कल्लोलित हुआ था यह उनके ताबड़तोड़ भेजे गये बचे-खुचे पत्रों से मालूम होगा। आधे से अधिक पत्र तो मेरे खाट में रुग्ण होने के कारण गायब हो गए।

डेढ़ वर्ष तक मैं कालाजार के चक्कर में रहा। तीन-तीन बार रिलैप्स किया था।

७०

Daraganj, Allahabad
10-3-44

प्रिय श्री आचार्य

आपका कार्ड मिला था। फिर समाचार नहीं मिले।

कल पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी से आपकी बातचीत सुनी। पूछने पर मालूम हुआ आपने मुजफ्फरपुर के कवि-सम्मेलन में कविता पढ़ी।

वे पहले बड़े प्रशंसक थे, लेकिन प्रकाशक की दी आपकी 'गाथा' ले आये हैं, उसकी निन्दा करते थे[1] इस स्कूल के तरफदार नहीं।

---

१ ऊँच नीच सुनने का साहस बटोर कर ही मैंने शान्त शीतल सरोवर में कंकड़ फेंका था। 'गाथा' में ऐसे अनेक अश्लील (?) अंश हैं जिन पर 'न एक कहूँ न दस सुनूँ' का मुहावरा नहीं लागू होता। आश्चर्य है तो यही कि राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त को 'गाथा' बहुत पसंद आई थी—मेरे गीतों, प्रगीतों और महाकाव्य से भी बढ़कर।

"भार गया पर काठ, पहुँच आँगन में जो कुछ देखा!
तू नंगी थी नहा रही, तुझ पर पड़ते ही दृष्टि—
पड़े सौ घड़े पानी के, ज्यों बची न सूखी सृष्टि,
वह तेरी तसवीर सिकुड़ कर बनी एक ही रेखा!
रूप हो कविता की, थी तेरी भरी कनक की गागर,
फुफकारें वे सलिल बिन्दु क्या, फेन उगलते फनधर!
बद नहीं, हाँ अन्ध नयन से तेरा सुषमा लेखा!
वह तेरी तसवीर सिकुड़ कर बनी एक ही रेखा!!
—दो आँखें

औंधे मुँह आकाश गिरे, यह रसा रसातल जाए!
गगनस्पर्शी शीश झुका ले तुहिन शरीर हिमालय!!
ढक ले पुन विन्ध्य रवि शशि का, हो जाए सब तममय!
दावानल नागरिक सभ्यता में सहसा लग जाए!
मानवता—यह अहंकार हुंकार जले धू धू कर!
माँ थी सिखा रही चिड़िया का कच्चा तन छू-छू कर!
—'जा, सो जा उनके संग उनका हृदय न दुराने पाए!
ला दूँगी साड़ी, तेरा तन किसी तरह ढक जाए!!
'किसी तरह ढक जाए!'—प्रतिध्वनि हुई अशब्द गगन में!'
'किसी तरह ढक जाए!'—आँखों पर थी पड़ी अँधेरी!
'किसी तरह ढक जाए!'—मसरी धूल राख की ढेरी!
'किसी तरह ढक जाए!—कह बह गई पवन निर्जन में!

उनसे लेकर किताब देखी। वास्तव में अपूर्व है। प्रो० श्री नलिनविलोचन जी ने आपके लिए (?) लिखा है। श्री प्रफुल्लचन्द्र जी ने भी सुन्दर लिखा है।

आप, सत्य होना तो सूचना देने कि ३०) चौधरी जी ने भेज दिये आपके पास। मैंने बाकी पूरे के लिए लिखा था। किताब सचमुच ही प्रेस में है। मुन्त्र कहते थे। देखा जाय, कब तक निकलती है। पुस्तक की भूमिका सार्वभौमिक हो, आपका पीड़न है।

एक जमाव मेरठ में साहित्यिकों का होने वाला है। अज्ञेय करते हैं, आप जानते हैं। कई पत्र मेरे पास आये। एक अज्ञेय का भी आया है। मजेदार है। वे इस समय आसाम में हैं, फौज के ऊँचे पद के एक बड़े कर्मचारी। दिल्ली से नगेन्द्र जी आये थे। मिले थे। चलने का अनुरोध कर गये हैं। आपके लिए कह लिख रहा हूँ कि बुलाएँ।

महादेवी जी, माखनलाल जी तथा और कई लेखक बंगाल जा रहे हैं लोगों की स्थिति का निरीक्षण करने। मेरे भी जाने की बात है। अमृत बाजार में प्रमुख स्थान है। इस समय [illegible] पड़ रहा है जी।

चोटी की पकड़ उपन्यास प्राय तैयार है। [illegible] प्रेस जाने वाला है। बड़ा सफल है। कुछ रचनाएँ इधर 'देशदूत' में निकली हैं, आपने देखा होगा। तारीफ लोग कम करते हैं। उच्चारण की गड़बड़ी होती है। गजलों की थोड़ी सी तारीफ।

जरा नलिनविलोचन जी लिखते हैं, [illegible] वगैरह भी पढ़ लीजिए। आधुनिका में निबन्ध हो जायेंगे।

मैं एप्रिल के दूसरे सप्ताह आगरे जाऊँगा। सूरदास जी की जगहें देखनी हैं। 'कुम्भीदास' जैसी चीज लिखना चाहता हूँ। विचार कई लिखने का था, है भी। आपको मालूम है 'गाथा मेरी थी।'

किसी तरह टल जाए! —आरत भारत की यह माता!
किसी तरह टल जाए! —जय हे भारत भाग्य विधाता!
किसी तरह टल जाए! —कौन कहाँ को रोते घर में?
किसी तरह टल जाए!'—कह कह गई पवन [illegible]!
—[illegible]

अच्छे हो गये, सबसे खुशी की बात है। इरादा क्या है, सूचित कीजिएगा।

आपके पिता जी हों तो मेरा प्रणाम कहिएगा। अभी लिखने पढ़ने की
अधिक मिहनत हानिकर होगी।

लिखा है या नहीं, नहीं मालूम, इसी उपन्यास के बाद मेरा अँगरेजी
उपन्यास निकलेगा। वसन्त के अन्त से लिखना शुरू करूँगा।

पाली सीख रहा हूँ। साथ अँगरेजी भी। कामचलाऊ संस्कृत कुछ तेज कर
रहा हूँ। उम्र से कमजोरी आती है।

अप्सरा और 'अलका' के बाद अपराजिता' निराला का तीसरा उपन्यास
होना, किन्तु निराला ने बताया था यह नाम अञ्चल जी ने अपने काव्य संकलन
के लिए ले लिया तो उन्होंने अपने उपन्यास का नाम बदलकर प्रभावती' कर
दिया। अपराजिता नाम रहने दिया गया होता तो निरुपमा का नाम भी अनु
पमा होता।

निराला को अपराणामनारोऽस्मि' का अद्भुत आग्रह था। अनामिका और
अपरा नाम भी उसी ओर संकेत करते हैं।

फिर उच्छृङ्खल का बहुत विज्ञापन हुआ। यह नाम श्री नरोत्तमप्रसाद
नागर को पसंद आ गया।

प्रसाद वितरण की कतार में मैं भी था। जब निराला ने गाथा' नहीं
लिखी तब मैंने यह नाम हथिया लिया। बस नाम ही गोपाल भाड रवीन्द्रनाथ
कैसे हो सकता था?

रही बात यह कि 'गाथा' नाम निराला का था इस सन्दर्भ में
श्री जगदीशचन्द्र जी माथुर के शब्द याद आ गए

'जानकीवल्लभ जी उन दो चार भाग्यवान व्यक्तियों में रहे जिन पर
निराला जी की दृष्टि गजावलोकन करते करते टिक गई।

चमत्कारपूर्ण दृष्टि थी वह क्योंकि उसने जानकीवल्लभ जी की अविकसित
प्रतिभा को ऐसा आमन्त्रण दिया कि तब से बालकवि की चेतना और अभि-
व्यञ्जना जीवन की दारुण विभीषिकाओं के बावजूद, बराबर सक्रिय और
सजग रही है।

निराला ने हिन्दी-संसार को अनेक उपहार दिए। जानकीवल्लभ जी की
प्रतिभा का प्रस्फुटन भी उनका एक अनमोल उपहार ही है"

दूर-दूर के कई बुलावे आये जैसे एक हैदराबाद से। इन्कार कर दिया। काम बहुत है। दाम भी मनमाना लेता हूँ।

कुशल है। गङ्गा-स्नान गङ्गा-जल-पान चला जा रहा है।

सस्नेह

—निराला

आपकी किताब चन्द्रमुखी जी से मिली।

'अपुन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि वन्यानि।

—नि०

७१

दारागञ्ज, इलाहाबाद
१४-३-४४

प्रिय आचार्य,

मारफत की चिट्ठी सीधी नही आती। पत्र हस्तगत हुआ।

मैं किराये के मकान मे रहता हूँ। आपको कल-परसों एक दीर्घ पत्र भेज चुका हूँ।

'गाथा' मिल गई। बहुत सुन्दर लिखा है आपने। एक मेरी नई रचना*—शीर्षक पाँचक है—

पीठ बँधी, अँधेरा उजाला हुआ।
सेंधो का ढेला शक्कर पाला हुआ॥ १॥
राह अपनी ली,[1] नेता काम आया।
हाथ मुहर है, मगर छदाम आया॥ २॥
आदमी हमारा तभी हारा है।
दूसरे के हाथ जब उतारा है॥ ३॥
राह का लगान घर ने लिया।[2]
मानो रास्ता हमारा बन्द किया॥ ४॥
माल हाट मे है, मगर भाव नहीं।
जैसे लड़ने को खड़े,[3] दाव नहीं॥ ५॥

हमने अँगरेजी उपन्यास का खाका तैयार कर लिया। अगर अड़चन न हुई तो इस साल निकल जायगा।

"किं सख्यने सुमनसा मनसापि गम्य'—याद करके अँगरेजी पढ़ना छोड़ देना चाहता हूँ।—'साधु चाचाय सम्वरो।'

आप अच्छे हो गये, प्रसन्नता है। शक्ति जल्द आ जायगी।

आपका
निराला

---

* दूसरी बार फिर निराला ने इसे अलग कागज पर लिख कर भेजा था। संशोधन इस प्रकार है —

१ राह अपनी ली कि नेता काम आया।
२ राह का लगान घर से लिया।
३ लड़ने को खड़े, मगर दाव नहीं।

७२

आचार्य,

पत्र हस्तगत हुआ।

'गाथा' साद्यन्त मुझे बहुत पसन्द आई। उसकी शैली जैसी सीधी और साधारण लगती है, दरअस्ल वैसी नहीं। बड़ी ठोस है। समधिगत जन ही ऐसा लिख सकते हैं। वर्णन बड़ी तीखी चोट करने वाले हैं। सही मानों में आधुनिक। युवतियों के चित्र बड़े गहरे रंग-वाले, ऐसे ही स्थानों के, लोगों के बयान। श्री नलिन विलोचन जी ने सुन्दर लिखा है, ढंग भी मजा। मैं अलग से लिखूंगा सम्वादपत्र में।

महादेवीजी को (तीर-तरङ्ग) अवश्य समर्पण कीजिए। आजकल बीमार हैं। उन्हीं से अधिक बातचीत होती है। बङ्गाल जानेवाली हैं। पता नहीं क्या हो।

चौधरी की किताबें कई प्रेस में है। एक मुद्दत से सुन रहा हूँ। जवाब वे किसी का नहीं देते। मतलब वही जानें। जवाब न देने के पीछे एक किताब गवां बैठे। चोटी की पकड़' उन्हीं के यहाँ लिखी गई थी, अब छप दूसरे के यहाँ रही है। इस पर सुमित्रा जी से लड़ाई हो गई। कुछ लोग कहते हैं सुमित्रा जी अधिक बुद्धिमती हैं, कुछ कहते हैं, चौधरी साहब।

मेरठ को मैंने लिख दिया है। देखा जाय क्या करते हैं। जब बुलायें खर्च भेजें मुझे लिखिए। ईस्टर में हैं। इति।

दारागंज प्रयाग
१७ ३ ४४
रात ६

आपका
सूर्यकान्त त्रिपाठी
निराला

चूँकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है दीवाना है।
—निराला

७३

दारागंज,
इलाहाबाद
१४ ६ ४४

प्रिय आचार्य,

आपकी किताब छप कर भूमिका के लिए आ गई।

मैं मानसिक बहुत खिन्न था, इसलिए कुछ देर कर दी। चौधरी का कोई उत्तर भी नहीं मिलता।

जल्द एक भूमिका लिख डालने वाला हूँ। बड़ी विद्वत्तापूर्ण लिखूंगा[1], इस विचार से और देर कर दी।

आपका
निराला

आपका पत्र अनाहूत नहीं आता।
मैं भी अब बस करता हूँ। प्रसन्न होंगे। इति।
लीची के मजे होंगे और आम के।
—नि

---

१ यह बड़ी विद्वत्तापूर्ण भूमिका कभी नहीं लिखी गई। 'तीर तरङ्ग' की छोटी मूर्खतापूर्ण भूमिका मैंने स्वयं ही लिख ली थी।

७४

Daraganj,
Allahabad
30 1 45

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। आप इतने अस्वस्थ हैं यह चिन्ताजनक है। Change की जगह आपके लिये प्रयाग भी है और सब जगहों से अच्छी।

चन्द्रमुखी जी के लड़का हुआ है। छ दिन का हो गया। हमारे यहाँ भी ठहरने की दिक्कत नही होगी।

इस समय चन्द्रमुखी जी अपनी बड़ी बहन के मकान म हैं, दारागंज म ही। कुशल है।

कोई खास अधिवेशन न हुआ तो यहीं रहेंगे। गये तो दो दिन को। यहीं रहिए। इति।

आपका
निराला

याद है चन्द्रमुखी जी से
कुछ ऐसी चर्चा सुनी थी।

७५

Daraganj Allahabad
15 5 45

प्रिय शास्त्री जी,

मैं लखनऊ उन्नाव आदि की तरफ गया था, इसलिए उत्तर नही लिखा जा सका।

इस समय आप छुट्टिया म घर होंगे। फिर भी लिख रहा हूँ।

महादेवी जी आपको जानती हैं। मैं और जिक्र कर दूगा।

लिख देना बड़ी बात नहीं गोकि उनकी आँखें आजकल बिगड़ रही हैं, डिक्टेट कर देंगी।

उनसे आप खुद भी मिल सकते हैं मेरे साथ भी चल सकते हैं। शिप्रा की पंक्तियाँ अच्छी हैं।[1]

एक अरसे बाद इलाहाबाद आया। प्रसन्न हूँ।

मेरी ५ किताबें छप चुकी हैं Out होनी ही हैं। ४ और छप रही हैं। आपकी प्रसन्नता चाहिए। इनमें ४ किताबें दूसरे संस्करण वाली हैं, एक संकलन अपनी रचनाओं का ४ नई।

आपका
निराला

---

१ मेघ, दूत बन, जाओ मेरे कालिदास के देश,
कहना हतभागी कविता का व्यथ शब्द-संदेश
"मुझे मर्त्य के लिए छोड़ कैसे तुम स्वर्ग सिधारे,
मैं मन मारे तारे गिनती, तोड़ रहे तुम तारे!
युग सहस्र वर्षों से बैठी करती रही प्रतीक्षा,
मेरी मुई अमरता की तुम लेते निठुर परीक्षा!
कहाँ स्वर्ग से सुंदर अपनी भूमि बनाने का व्रत,
और कहाँ तुम कांति यहाँ की देख हुए प्रतिभा हत!
अनासक्त कवि, भोग-कामना से भूले निर्माण,
देव शान्ति की रचना भूले रचना का निर्वाण!
पुण्यार्जित पा स्वर्ग गए तुम जन्मभूमि को भूल,
सौन्दर्योपासक, सुंदरता की अब उड़ती धूल!
आज रामगिरि के आश्रम की छोड़ी छाती चीर—
धूम्रयान चलते उसाँस-सी बहती उष्ण समीर!
पद्मशेष सर, गिरि सिकतामय कूल बबूल-हरे हैं
पाण्डुवदन षोडशियाँ पनघट श्वापद चिह्न भरे हैं!
मानव के मानस के रस का स्रोत गया है सूख
साथ 'पिपासा क्षाम-कण्ठ' है, माया जलती भूख!
गया शील, शालीनता गई, हृदय स्वार्थ से अंध,
प्रेम बना व्यवहार बना दृष्टान्त, यौन सम्बन्ध!
द्रुत गति से चल रहा उर्वशी के अपहरण का क्रम
पर पुरूरवा का न गगन घन भेदी कहीं पराक्रम!

पहुँच गया दुष्यन्त स्वर्ग जिस पावन परम प्रणय से,
मानव आज घृणा करता सुत सन्ततिमय परिणय से !
प्रेम हुआ पर्याय पाप का पुण्य साधना स्वार्थ,
मधुशाला-आलाप आज चिन्तन करना परमार्थ !
भूति राशि में सत्य अनल-कण सा है गया छिपाया,
गलहस्तित शिव विश्वविजयिनी केवल सुन्दर माया !
यन्त्र चेतना मन्त्र फूकते मानव जड़-सा सुनता,
क्या परतन्त्र तन्त्र 'मूल्यों' का ?—नर फिर फिर सिर धुनता !
सब कुछ सुलभ हुआ जड़ युग में, मूल्यों का क्या मान ?
दुर्लभ सके, तुम्हारा केवल प्राण विमोहन गान !
रक्त पिपासा ! मानव प्यासा मानव के शोणित का
बद्ध धरित्री भोग रोग, औषध जन यौवन हित का !
आज वज्र गर्जन में बजती प्रमन चन की वंशी
वह वन्यों का पथ प्रबल उड़ गए हंस औ हंसी !
बादल में बिजली क्या, पानी में है धधकी आग,
झंझा के झोंकों में जलता स्नेह विहीन विराग !
वक्र शक्र धनु तना, अवनि का थरथर जर्जर गात,
बरस रही हैं लाल लाल बूंदें, कैसी बरसात !
निरपराध सिर काट रक्त के अश्रु बहाती असि है,
लिखे विश्व इतिहास नया, प्रस्तुत वैज्ञानिक मसि है !
स्वर्णप्रसू भू कृषक रो रहे हैं दाने दाने को,
श्रमिक नारियां देह दिखाती देह छिपा पाने को !
युवती मां की सूखी छाती चूस शान्त शिशु होता
खेती फाड़ कलेजा धरती आसमान है रोता !
ढूंढ़ निकालो सुषमा, कवि औ आद्य सृष्टि के स्रष्टा
देखो अपनी मातृभूमि की दशा, क्रान्त के द्रष्टा !
उतरो भू पर ऊपर है क्या ?—हृदयहीन वह व्योम,
जननी जन्मभूमि की लज्जा दिखलाते रवि-सोम !
ठुकरा दो जो मत्त बनाती तुम्हें स्वर्ग की हाला,
पियो शव कवि लिए खड़ी मैं हालाहल का प्याला !
अक्षर-ब्रह्म, विश्व व्याकुल है ग्रहण करो अवतार,
श्यामा माँ के वक्षस्थल में नवल दुग्ध संचार !
आओ, दिङ्मण्डल प्रसन्न हो शीतल-मन्द सुगन्ध—
रह रह बहे समीरण फिर फिर सदानन्द, स्वच्छन्द !
दबी औ मानुषी आपदाएँ टल जायें अनन्त
तुम आओ उजड़े उपवन में आए अमर वसन्त !
द्वेष-दम्भ से झुलसे प्राणों को दो प्रमल गान,
दुःख दग्ध जर्जर शरीर को अक्षय यौवन दान !

'वरो शम्भु न तु रहीं कुमारी'—रघो सती भी नारी,
किन्तु मृगेन्द्र के हस्तपरीक्षक निभय पद-सचारी ।
रघु-सा वीर, राम-सा धन्वी जिनको गुरु-सेनानी,
सुर जिनकी हुंकार विनत हो असुर महा-अभिमानी !
नियति नियम से परे अरे, तुम नित्य अनागत पथ में,
स्वर भरते हो नित्य नित्य नव-नवल अनाहत 'नाद' में ।
हो विभेद क्यों ? स्वयं धरित्री गने मिले सानन्द
रचो रचो कवि, एक बार फिर मन्दाक्रान्ता छन्द ।

+ +

अपनी साहित्य—सुर दुर्लभ मानवता का इक मूल
अब हर सब के सब न सक हैं एक बार ही भूल
कल्लाओ को रहो महीनस की पीयूष करते हैं
शान्त पावन अमरभारती जबनर नहीं गरा है
आओ सभी—अभी ही से पूज अर्चित, गौरव सुगन्ध
स्वगन्ध से पूर्ण मुझे है लिया का सौगन्ध !

—नि

७६

Daraganj
Allahabad
23 5 45

प्रिय आचार्य

पत्र प्राप्त हुआ। शिप्रा मिली। अच्छा काम हुआ आपका। रसगङ्गाधर खरीदेंगे। एक पास है।

लड़की फेल हो गई। पढ़ाई अच्छी न की होगी।

हमारी किताबें भी निकल रही है, छप रही है। कागज की महँगाई के कारण पहले पहल बेचने की फिक्र म होने हैं प्रकाशक, लेखक की प्रतियां देने की फिक्र म बाद।

कुशल है। एक पत्र लिखा। उसका जिक्र नहीं किया।[1]

हाँ दिल्ली मे पागल जी मिले थे। प्रसन्न थे। पागलपन की शिकायत घर भर को है।

महादेवी जी को खुद लिखिए। वे आपको जानती ही हैं।

कुछ बाद आपकी रचनाए छापने की सोचेंगे। भारती मंदिर से क्या मिलता है? बाकी समाचार लिख। अब तो वहा सपरिवार रहते होगे?

आपकी रचनाएँ अति सुन्दर हैं जसी आपकी तारीफ।[2]

—निराला

---

१ क्या जिक्र करता? मैं तो उन दिना बायरन पढ रहा था

Son of Earth!
I know thee and the Powers which give thee power!
I know thee for a man of many thoughts
And deeds of good and ill extreme in both
Fatal and fated in thy sufferings

२ बादलों से उलझ बादलों से सुलझ,
ताड की आड से चाँद क्या झाँकता!
म न हूँगा यहाँ कह रहा नभ यही,
म न हूँगा कहाँ? भूमि कहती 'नहीं',

तुम हवा म दवानल वृथा ढाकता !
ताड की आड से चाँद क्या झाँकता ।।
जीतने का कल्क, वेदना हार की,
क्या कथा स्वप्न से भिन्न ससार की ?
वद तुम घाव म क्यो वृथा टाँकता !
ताड की आड से चाँद क्या झाकता ।।
रग आया नहीं, रश्मि छाया घुली,
रेख खुल्ती नहीं तूलिका यो घुली !
शून्य तुम, चित्र मे क्यों वृथा आँकता !
ताड की आड से चाँद क्या झाकता ।।

—अवन्तिका

× × ×

गागर भरने की वेला होले बीती जाती है !
क्यों भूल चूक हो जाती चिर परिचित व्यापारों में,
दिन दिन भर उलझी रहती सब दिन इन घर-द्वारो में,
वसे तो दुपहर ही से उत्सुकता उकसाती है !
लगता, गागर भरने की वेला बीती जाती है ।।
औरों की देखादेखी जब-तक रहती अलसाती
सौरभ भीनी स्मृतियों की धारा में बहती जाती,
सहसा रागिनी रँगीली थमती झटका खाती है !
लगता गागर भरने की वेला बीती जाती ह ।।
ज्यों ज्यों दिन ढलता जाता औ' सन्ध्या घिरती आती,
त्यों त्यों पनघट पर कसी ह बदाबदी मच जाती ।
जल्दी जल्दी में गागर गागर से टकराती ह !
रीती गागर कहती लो, वेला बीती जाती ह ।।
हो गई देर हो अपनी गागर भरनी ही होगी,
मरघट-पनघट की दूरी पूरी करनी ही होगी
उज्ज्वल जल की कलकल धुन सुन मति-गति मदमाती है !
रीती गागर भरने की वेला बीती जाती ह ।।

—'सुरसरि'

× ×

रेत पर जो लिख रहा म, धार उसको मेट देगी,
फिर किनारे पर खडी दुनिया, कहो तो, क्या कहेगी ?
झुक गया, भ्रम मे न फूला
रुक गया, पर पथ न भूला,—
—यह कहानी जो बही, मेरी निशानी क्या रहेगी ?
धार पर आँखें गडा दुनिया कहो फिर क्या कहेगी ?
सजल बादल बन न पाया
म गगन से छन न पाया
अश्रु—फुहियो के लिए क्या भूमि लू लपटें सहेगी ?
याद बादल के जली बिजली कडक कर क्या कहेगी !
—दद यह चुप लिख रहा म
गद में क्या दिख रहा म ?
यह कसक बन गान तेरे प्राण में लुक छुप रहेगी ?
म सुनूगा ही नहीं फिर दूर दुनिया क्या कहेगी ?

—शिशिरकिरण

७७

Daraganj, Allahabad
10 6 45

प्रिय आचार्य

पत्र आया। समाचार अवगत हुए।

महादेवी जी पहाड हैं रामगढ। रामगिरि की याद आती है। उल्टा हिसाब है।

आपसे चौधरी मिले थे, मुझसे कहा था।

आप खूब लिख रहे हैं। अच्छे होकर लिखिए।

हर पत्र म आपकी रचना पाने के बाद कुछ लिखते हैं आप विज्ञापन मे ला सकते हैं। पर आपकी कुछ आदत ऐसी है। विज्ञप्ति आवश्यक नही।[1]

शिप्रा मुझको बहुत पसन्द आई। यहा काफी पढी गई। अब आप प्रसिद्ध हैं।

हम प्रूफ देखने मे रहते हैं। चार किताबें निकल गइ। छ छापखाने मे हैं। चार इधर की हैं मौलिक, एक अनुवाद पाँच पुन सस्करण वाली, एक सग्रह। पानी पडने पर 'चमेली' को पूरा करूँगा।

इधर कुछ-कुछ कविता-कविता लिखते हैं। एक यह है—(फफ्लुन, फग्लुन ४)

लू के झोंको झुलसे हुए थे जो हरा दौंगरा उन्हीं पर गिरा,
उन्हीं बीजों के नये पर लगे, उन्हीं पौधों से नया रस झिरा।

× × ×

---

१ गाथा पर सम्मति प्रकाशकीय प्रेरणा से विज्ञप्ति के लिए माँगी थी। निराला ने जवाब म करारी डॉट पिलाई।

यह टहनी से हवा की छेड़छाड़ है मगर
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया।[२]

गया में प्रबन्ध करा रहे हैं। बुलाएँ तो आइएगा। इस समय यहाँ साथ एक रिसर्च स्कालर, लखनऊ यूनिवर्सिटी रहते हैं—त्रिलोकी नाथ दीक्षित।

कुशल है। उत्तर लिखिएगा। इति।

आपका
निराला

---

२ खामोश फतह पाने को रोका नहीं रुका
मुश्किल तमाम जिन्दगी का जब सहल गया।
मैंने कला की पाटी ली है शेर के लिये,
दुनिया के गोलन्दाजों को देखा, दहल गया।
—निराला

७८

Daraganj,
Allahabad
7-7 45

प्रियवर,

आपके यहाँ वाला कविसम्मेलन पड़ा है। आयोजन कराइए। फीस पूरी नहीं, तो जाने व्यय दिलाने की बातचीत कीजिए वहाँ तो अच्छे-अच्छे आदमी हैं। काव्य प्रेमी भी होंगे।

लिखने के साथ संघटन भी रहना चाहिए। साहित्य अप्रचार के कारण लोगों में विचार में उतरा रहता है।[1]

आपका 'चिमटा' अच्छा रहा। इति।

—निराला

---

१ प्रचार और विज्ञप्ति से पृथक रहकर अखण्ड साधना का सतत उपदेश निराला भूल गए थे शायद। मैं मगर सरापा अपनी खामोश आवाज में डूबा रहा

'गिन गिन पग रखे धरती पर,
अलल बछड़ा बना रहा,
अमचूर हो गया!
उजड़ बिघरों की पुरनम खामोशी में बेनिशाँ खो गया।'
—खामोश आवाज

कभी-कभी अहं का विस्फोट जो ही जानता है, अपने कानों को कैसा लगता था, पर बिहार की जातिवादी राजनीति का शिकार होकर घायल आत्मा को सहलाने के क्रम में बकता था

लोग कहते हैं, कहें पर क्या कहेंगे?
डूबने वाले कभी तिनके गहेंगे?
चाहना है चाहता, तू तो अतलता
सतह पर तिरते हुए थक कर बहेंगे!
मृत्यु की गहराइयों में से निकलना
आँधियों में दीप का क्या सरल जलना?

शुष्क इंधन को जलाती आग है जो,
है न उसका काम जल के बीच जलना !
वे दिखा सकते विहँस—काँटों भरा तू,
वे सिखा सकते हुलस—जीवित मरा तू,
भेद यह भी पर तुझे मालूम है क्या—
चिर तरुण ऋतुतर, नहीं कुंचित जरा तू !
जीर्ण पट को फाड़ कर सीता नहीं है !
तू सहज जीवन, महज जीता नहीं है !!

+ + +

लोग वे जो कुछ कहेंगे, तू सुनेगा ?
मुखर जड़ पर मौन चेतन सिर धुनेगा ?
व्यंग्य की बोछार है, झड़ियाँ लगी हैं,
तू रुकेगा ? और उड़ते कण चुनेगा ?
तप्त है तू बिंदु यह पीता नहीं है !
बिंदुओं पर तू अरे, जीता नहीं है !!

× × ×

नास्ति हैं वे, अस्ति से टकरा रहे हैं,
चमक तेजस्वी फलक, यह शाण घर्षण !
तू स्वयं है ज्ञान, कुछ गीता नहीं है !
आज मरता और कल जीता नहीं है !!
तू जिधर से जायगा, वह राह होगी,
चाहता जो तू, सही वह चाह होगी
मानदण्ड यही, विकल्प विकार औ सय
तू जहाँ थम जायगा, वह थाह होगी !
रस सिरजता है विकल पीता नहीं है !
दे रहा जीवन, महज जीता नहीं है !!

—तू'

७६

Daraganj,
Allahabad
11 8 45

आचाय,

आपका पत्र मिला। समाचार से चिन्ता बढ़ी।

हम अपनी शक्ति भर तैयार हैं। हताश न हो। तकलीफो को धय से झेलना पड़ता है। हमारे लायक सेवा लिखें।[1] अन्यथा न करें और न समझें।[2]

हम ५ ६ दिन के लिए आगरा, दिल्ली, मेरठ, मुरादाबाद जा रहे हैं। आने पर समाचार आ जाएगा, आशा है। इति।

आपका
निराला

---

१ सुरेर गुरु दाओ गो सुरेर दीक्षा—
मोरा सुरेर काङाल एइ आमादेर भिक्षा।
तोमार सुरे भरिये निये चित्त
याब येथाय वेसुर बाजे नित्य
कोलाहलेर वेगे घूर्णि उठे जेगे,
नियो तुमि आमार वीणाय स इखानेइ परीक्षा।।

२ मेरी ज्वाल लाल स्वर्णिम इस पर काली छाया न करो।
बादल, तुम मेरे नभ में घिर घिर फिर फिर आया न करो।।
धू धू कर जल रहीं चिताएँ साधों की, अरमानों की
यह उजाड़ बस्ती है कुछ मस्तानों की दीवानों की—
मिटीं न मिट चुकने पर भी जिनकी ऊँची ऊँची लपटें
और अभी तो शेष सभी हैं आहुतियाँ इन प्राणों की।
हँस हँस कर जलने वाला पर आँसू बरसाया न करो।
बादल, तुम सूने नभ में आँसू भर भर आया न करो।।
देखी तुमने ज्योति कभी ओ अंधकार लाने वालो?
माप सके नभ की असीमता टो जग-जग छाने वालो?
ज्योति जगाते जो जल-जल कर उनकी दृढ़ता जानी है—
ओ पल भर घिरकर फिर तनिक हवा में उड़ जाने वालो।
म मिटने की साध लिए मुझपर ममता माया न करो।
बादल, जड़ जीवन लेकर चेतन नभ में आया न करो।।

—मेघगीत

८०

Daraganj
Allahabad
20-8 45

प्रिय आचार्य

आपका पत्र हस्तगत हुआ कि आगरा दिल्ली मेरठ के लिए रवाना हुआ। तत्काल उत्तर नहीं लिख सका।

बड़ी चिन्ता थी। बुखार अब कमा है, इलाज फायदा पहुँचा रहा है या नहीं, लिखने लिखाने की कृपा करें।[1]

यहाँ ऐसी हालत में आना दुश्वार होगा। कुशल है। पानी अच्छा बरस रहा है।

हंस कुमार जी से मेरठ में मुलाकात हुई थी। कश्मीर जाते हुए रुके थे। ५०) मिल गये।

---

१ रुक गई नाव जिस ठौर स्वयं
मांझी उसको मझधार न कह !
कायर जो बैठे आह भरे
तूफानों की परवाह करे !
हाँ तट तक जो पहुँचा न सका
चाहे तू उसको ज्वार न कह !
कोई सम को कह भ्रम, सपना,
ढूँढे आलोक-लोक अपना
तब सिंधु पार जाने वाले को
निष्ठुर तू बेकार न कह !
—'तीरतरङ्ग' में संगृहीत

\+ \+

दुख को समुख बनाओ गाओ !
काली घटा छटेगी कैसे ?
रिमझिम रिमझिम स्वर बरसाओ !

काम शुरू करने वाला हूँ। पानी खूब बरस रहा है। कई महीनो से पड़ा है।

आपका स्वास्थ्य समाचार जल्द अपेक्षित है। मेरठ कालिज मे अच्छा रहा।

आपका
निराला

कौन सुने करुणा की वाणी ?
दीन दृगों के आँसू पानी !
पर अगीत सगीत अभी भी,—
इसका लयमय भेद बताओ !
असह सहो दृढ प्राण बनाओ,
अश्रुकणों को गान बनाओ,
जब सुख छिटके चन्द्रकिरण बन
सजल-नयन मुख, चुप हो जाओ !

— उत्पलदल' मे संकलित

८१

Daraganj,
Allahabad
27-8-45

प्रिय आचार्य,

पत्र हस्तगत हुआ। पथ्य पाने के सम्वाद से प्रसन्नता हुई।

कालाजार बुरा मर्ज है। एक अर्से के लिए काम छोड़िए। दवा, पथ्य, स्वास्थ्यकर वायु मनोविनोद लेकर रहिए। साल भर बाद शरीर के दोषों का प्रस्रवण हो जायगा। दौर्बल्य न रहेगा।

मेरी दूसरे संस्करणवाली किताबें ही निकली हैं—

(१) प्रभावती

(२) चतुरी चमार (पहले सस्ती)

(३) बिल्लेसुर बकरिहा

(४) कुकुरमुत्ता (सुधारा)।

निकलने को हैं—

(१) बेला (गीत गजलें)

(२) नये पत्ते (नई रचनाएँ आधुनिक)

(३) चोटी की पकड़ (उपन्यास)

(४) काले कारनामे (उपन्यास)

(५) विष वृक्ष (बंकिम का अनुवाद)

(६) सीताराम ('   ' चल रहा है लिखना)

(७) अपरा (संग्रह, साहित्यकार संसद से)

(८) सुरसरित (महादेवी पंत और मेरे चुने कुछ गीतों का संग्रह)

मेरी मोटी तस्वीर और क्या होगी? कहीं न आई? आप अवश्य आइए।

आपका
निराला

८२

Daraganj
Allahabad
14 9 45

प्रियवर,

आप पहुँच गये होंगे। प्रसन्नता होगी।[1]

डा० रामविलास ने एक फोटो भेजा है, हम दोनो हैं उसमे। बडा अच्छा आया है।

हमारी अलग निकाली जा सकती है। देने का विचार है कही।

आपके बाबूजी को प्रणाम। लडकी (गौलवाला) को स्नेह।

आपका
निराला

---

१ प्राय एक सप्ताह दारागज मे रहकर मुजफ्फरपुर लौट आया था। स्वय निराला के अतिरिक्त कवयित्री सुधा सपरिवार, कला मन्दिर वाले श्री उमाशङ्कर सिंह आदि कोई डेढ दजन आदमी स्टेशन तक पहुँचाने आए और मुझे गाडी म बैठाकर वापस हुए थे। मैं गुनगुना रहा था —

क्या वह भी अरमान तुम्हारा ?
जो मेरे नयनो के सपने,
जो मेरे प्राणों के अपने
दे-दे कर अभिशाप चले सब,—
क्या यह भी वरदान तुम्हारा ?
खुली हवा मे पर फलाता
मुक्त विहग नभ चढ़ कर गाता,
पर जो जकडा द्वन्द्व-बन्ध में —
क्या वह भी निर्माण तुम्हारा ?
बादल देख हृदय भर आया,
'दो दो-बूँदें', कहा, दुलराया,
पर पपीहरे ने जो पाया —
क्या वह भी पाषाण तुम्हारा ?
नीरव तम, निशीथ की वेला
मरु पथ पर म खडा अकेला
सिसक सिसक कर रोता हूँ, जो —
क्या वह भी प्रिय गान तुम्हारा ?

—'तीर-तरङ्ग'

८३

दारागंज, इलाहाबाद,
२१ ६ ४५,

प्रिय आचार्य,

पत्र आया। तस्वीर पूजा की छुट्टियों में ले जाइए। यहाँ स्वास्थ्य सुधर जायगा।

मौसम यह इलाहाबाद का अच्छा समझा जाता है।[1] *कुशल है।* इति।

आपका
निराला

---

१ बना घोंसला पिंजड़ा पंछी!
अब अनन्त से कौन मिलाए
जिससे तू खुद बिछड़ा पंछी!
सुखद स्वप्न लख किसी सुदिन का
चुन चुन पल छिन तिनका तिनका
रहा मूल से दूर दूर
पर डाल पात तो झगड़ा पंछी!
अग्नि जले तब विफल न इंधन,
मुक्ति कर्म का मर्म, न बंधन,
उड़ा हाय जो सबसे आगे,
वह अपने से पिछड़ा पंछी!

—तीर-तरंग

८४

Daraganj,
Allahabad
9 10-45

प्रिय आचार्य

पत्र मिला। बीमारी अत्यन्त चिंता जनक हुई। आशा है, अच्छा इलाज फायदा पहुँचायेगा।

समाचार किसी से लिखा कर भेजिए। जी लगा है। अधिक चिन्ता न कीजिए। ईश्वर पार लगायेंगे।[1]

यहाँ के लोगों मे बीमारी की चिन्ता है। जो अड़चन हो लिखिएगा।

सस्नेह
निराला

---

१ ईश्वर सम्बन्धी भाव तब मेरे भी मस्तिष्क मे मँडलाते ही रहते थे—

'प्यास तुम्हारी कण्ठ-कण्ठ में,
रूप तुम्हारा नयन-नयन मे।
प्राण पतंग प्रथम मद-माते
मँडलाते कामना-अनल पर,
ऊर्ध्व श्वास से स्पष्ट उठाते
घुस जाते विश्वास अटल कर
मान भरा बलिदान ध्येय है
उच्च लक्ष्य का पथ धँसा-सा,—
यही सत्य जागरित दिवा का,
यही स्वप्न निश रात्रि नयन मे।
प्यास तुम्हारी कण्ठ-कण्ठ में
रूप तुम्हारा नयन नयन मे।।
अभिव्यक्ति जीवन है जिसकी

मरण उसी सत्ता की सिकुड़न !
पावस जिसका श्याम वर्ण है,
शरद उसी का निर्मल दर्पण !!
जाने कैसे दृष्टि उलझती,
स्पष्ट सृष्टि के ताने-बाने,
चित्रपटी की रेख देख पड़ती विचित्र
चर-स्तु शयन मे !
प्यास तुम्हारी कण्ठ-कण्ठ मे
रूप तुम्हारा नयन-नयन मे !!
व्याप्त किए द्यावापृथिवी को
देव ! तुम्हारा सुन्दर मन्दिर !
जिसके वातायन से क्षण क्षण
छनतीं पवन तरंगें झिरझिर !!
सूर्य-चन्द्र दिपते अतन्द्र हैं,
ज्योतिर्मय ! अखण्ड दीपक से,
पूजा-अर्चा की चिर चर्चा
कुञ्ज कुञ्ज के कुसुम चयन मे !
प्यास तुम्हारी कण्ठ-कण्ठ मे
रूप तुम्हारा नयन नयन मे !!

—सुरसरि

८५

Daraganj,
Allahabad
23-10 45

प्रियवर,

पत्र लिखाया हुआ मिला।

प्रयाग आने की खबर से प्रसन्नता हुई। अभी तक प्रतीक्षा थी। अब लिखते हैं।[1]

बीमारी के इलाज के लिए आ सकते है। यहाँ कुछ अधिक अच्छी व्यवस्था-अवस्था रह सकती है। सुधा जी के यहाँ से भोजन पक कर आया करेगा, डाक्टर इलाज करेगा।

यहाँ की नौकरी मे छुट्टी आदि की व्यवस्था कीजिएगा आप।

—निराला

१ जीवन की यह चाह नहीं है।
रुक रुक कर जो सास निकलती,
उसमें उर की आह नहीं है!!
कसे पिक की तान सुनाऊँ ?
कसे मधुर गान म गाऊँ ?
देरी आँखों मे न अश्रु अब,
मेरे दिल मे दाह नहीं है।
सुध आती गुलाब के बन की,
यह दुबलता मेरे मन की,
यों फूलों का मोह न मुझको
शूलों को परवाह नहीं है।
हँस हँस कर सताप लिया है
सुख औ दुख को माप लिया है,
सुख सरिता मे डूब न पाया
दुख का सिंधु अथाह नहीं है।
लौट लौट कर आना पडता,
स्नेह नहीं, यह मेरी जडता
अब जाना जिससे जाता था
यह मजिल की राह नहीं है।

—शिप्रा

८६

Daraganj
Allahabad
12 11-45

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। आपकी बीमारी अदेसे की है।[1]

अब क्या कर रहे हैं, क्या इलाज हो रहा है लिखने की कृपा कीजिए।

मैं भी इधर पीड़ित था। अभी कम अच्छा हूँ। इति।

---

१ उन्हीं दिनों मैंने सबसे अधिक अवसादपूर्ण गीत लिखे

(१)

वह मेरा अन्तिम प्रकाश था।
भेज भेज संदेश सुरभि का,
दूर दूर मलयानिल द्वारा,
पाँत बाँध आते भौंरों के
गुन गुन स्वर से मुझे पुकारा

है,

वह
तिमिर नि
टिम टिम
तू दिखलाता
या अपने मह

मँडलाता मँडलाता कोई शलभ
द्वार तक तेरे आया,
काँप गया था तिमिर गेह का,
शलभ द्वार पर जब जलता था,
तुमसे मिलने को निममतम,
यह मेरा अन्तिम प्रयास था।

—तीर-तरंग

(२)

मेरी, सागर के बीच, तरी!
है दूर यहाँ से नील गगन,
है दूर यहाँ से भूमि हरी।
मैं जग के मग से छूटा हुआ,
असहाय अकिञ्चन, लूटा हुआ,
मेरा अन्तर सूना-सूना,
हैं मेरी आँखें भरी भरी।
घुमड़ी काली-काली बदली,
भर तिमिर, तुषार बयार चली,
बचता हूँ एक भँवर से जब
घिर आती लहरों पर लहरें।

\+

मत मिलें मुझे मोती दाने
मेरा श्रम कोई मत जाने
पर बीच सिंधु से लौट चलूँ
इससे लेकर सूनी गगरी।

—'तीर-तरङ्ग'

८७

Daraganj
Allahabad
26 11 45

प्रिय आचार्य,

आपका पत्र मिला। आप कुछ स्वच्छ स्वस्थ हैं पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ।

कालाजार बुरी बीमारी है। अपना बड़ा बस नहीं। सुनकर रह जाना है। ईश्वर आपको प्रसन्न करें, प्रार्थना करता हूँ।[1]

---

१ लो, आ रहा पतझार है!
तरु-पत्र थर थर कर उठे,
वन बाग मर मर कर उठे
यह तो छुरी की धार उर—
पर चल रही, न बयार है!
कैसी अँधेरी रात है,
हर चरण पर आघात है
जीवित शवों का स्वर्ग! क्या—
सचमुच यही संसार है!
× ×
संसार पारावार है,
जिसकी प्रखरतर धार है,
मैंने तरी दी खोल,
मेरे हाथ में पतवार है!
—'तीर-तरङ्ग'

मेरा लिखना पढ़ना बहुत ढीला है। आपत्तियां प्रबल हैं। एक तरह बीमारी ही है। चलता जा रहा है।

'अपरा' निकलने पर है। 'बेला' प्रेस गई।

आपका
निराला

---

२ कैसी उदासी छा रही!

मीठे जहर के तीर ले,
मीठी कसक ले, पीर ले,
पछुवा हवा है आ रही।
कैसी उदासी छा रही!!
पथ जिंदगी का घोर है,
दिखता न ओर, न छोर है,
यों साँस चलती जा रही।
कैसी उदासी छा रही!!
फूले चमन से रूठ कर,
बैठी विजन में, ठूठ पर,—
है एक बुलबुल गा रही।
कैसी उदासी छा रही!!

—गिरा

८८

दारागंज, प्रयाग
६ १२ ४५

गजल

छला गया, किरनों का प्रकाश करे करे ?
विरज नहीं रज से रजत हास करे करे ?

× ×

बुराई छोड, किसी को भलाई कर या न कर
अभी रहने दे जा रहने दे जान रहने दे।

प्रिय आचार्य,

पत्र मिला। प्रतीक्षा है, जब तबियत हो समय हो चले आइये।

संयम से रहना आवश्यक है। अकेले और जी ऊबता होगा। काम से निवृत्त होकर लिखूगा, सोचा था, इसलिये देर हुई।

सुधा जी प्रसन्न हैं। सुना है, मकान बदला है। इधर मेरा जाना नहीं हुआ।

कालाजार के लिए साधारण विनोद और सेवा जरूरी है। समाचार दीजिएगा।

सस्नेह—
निराला

८९

Daraganj
Allahabad
28 12 45

आचार्य,

एक फार्म नया छपा कर भेज चुका हूँ। एक चिट साथ है जिसमें लिखा है बाबूजी से १०००) एक हजार रुपए जल्द भेजने के लिए कहिएगा, हिसाब फिर करेंगे। अब आप पत्र पाते ही अपनी तस्वीर यहाँ से जाने के लिए

भेजिए। ८० गीत छप चुके। पूरी किताब में बाकी देखिएगा या बाकी फार्म फिर भेज देंगे तो एक किताब काम चलाने के लिए बँधा ले सकेंगे। जवाब अगर दें तो वापसी डाक से सूचित कीजिए। जरूरत आ पड़ी है।

'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' दो उपन्यास छप रहे हैं। जनवरी के आखीर तक निकल जायेंगे, अलग-अलग प्रकाशकों से। 'नये पत्ते' आधुनिक भाववाले पद्यों का संग्रह 'बेला' के बाद उसी प्रेस से छपना शुरू होगा।

कुशल है। स्वास्थ्य के लिए जाड़े भर खामोश रहिए। गर्मियों में चलिए कश्मीर हो आया जाय।

आपका
निराला

९०

Daraganj
Allahabad
4 2 46

प्रिय आचार्य,

'बेला' के पूरे फार्म ९१ गीतों के भूमिका के साथ भेज चुके हैं। किताब भी बँध गई। किसी किसी को उपहार दिया जा चुका। अभी पूरी प्रतियाँ नहीं मिलीं।

एक हफ्ते में २ प्रतियाँ प्रकाशक से भेजने के लिए कहेंगे। तस्वीर हमारे पास रखी है। आकर ले जाइएगा।

'नये पत्ते' का छपना जारी है। प्रसन्न होंगे। यहाँ कुशल है।

उपन्यास भी दो छप रहे हैं। बड़ी उलझन है। अपना अब तक निबटा तो है। जून तक निश्चिन्त हो तो हो। बड़ा जमाव है। इति।

आपका
निराला

६१

Daraganj
Allahabad
7 2 46

प्रिय आचार्य,

तुम्हारा पत्र नहीं मिला। यहाँ से २/३ जा चुके। बेला का पूरा साज गया। किताब बाजार में निकल गई। प्रकाशक से दो प्रतियाँ भेजने के लिए कहा है। तुम्हारा पता लिखा दिया है।

'शिञ्जिनी' का साज दुरुस्त कर रहे हैं। साहित्यकार संसद की तरफ से प्रेस जाने वाला है। महादेवी पन्त के मेरे २५/२५ गीत हैं, मेरे बिलकुल नये। 'नये पत्ते' के दो फर्मे छप चुके, जहाँ से 'बेला' निकली। 'काले कारनामे' और 'चोटी की पकड़' देख रहे हैं।

'कुकुरमुत्ता' संशोधित निकल रहा है। छप चुका है। भेजेंगे।

—निराला

६२

Daraganj
Allahabad
28 2 46

प्रिय आचार्य,

बड़ा दुःख हुआ यह पढ़कर कि फिर बीमार पड़े। इस समय क्या हाल है, लिखाइएगा।

पुस्तकों का पार्सल लौट आया है सुना है। मैंने समझ लिया है कि वे अस्वस्थ हैं।

क्या इलाज हो रहा है? पूर्ण विराम आवश्यक जान पड़ता है। मैं भी दुर्बल हो रहा हूँ। उस दिन अस्वस्थ था।

काम बहुत है। अप्रैल के मध्य तक आ सकूँगा। अभी यहीं उलझन है। इति।

आपका
निराला

दारागंज, इलाहाबाद
२७ ३ ४६

प्रिय आचार्य,

समय पर उत्तर नहीं आ सका। बीमारी सुन-सुनकर अनायास निराशा आती रही। पत्र लिखा पड़ा रह गया।

नये पत्ते भेजने हैं। 'पकड़' भी निकल गई। ३/४ दिन म भेजेंगे। दूसरा खण्ड प्रेस जाने को है।

अप्रैल म देखने चलने का विचार है। इति।

सस्नेह
निराला

६४

१ ४ ४६

जहाँ तक याद है, एक पत्र लिख चुके हैं। यह लिखा पड़ा था, भेज देते हैं। अपने समाचार जल्द लिखना-लिखाना। चिन्ता है। इलाज हो रहा है या नहीं लिखना।

—नि०

६५

Daraganj,
Allahabad
16 3 46

प्रिय आचार्य,

पत्र मिला। पढ़ कर बड़ा दुख है।

संयम, इलाज आवश्यक है काम कम। जहाँ तक सँभले। पूरा अवकाश भी ले सकते हैं।

होली का नमस्कार। किताबें इधर वाली होली के बाद भेजी जायगी। आधे अप्रल तक हम मिलेंगे।

—निराला

९६

Daraganj
Allahabad
19 5 46

प्रियवर

अस्वस्थता के कारण उत्तर नहा जा सका।

किताबें निकल रही हैं निकल चुकी है दो और। एक साथ चार पाच भेज देंगे ऐसी जल्दबाजी क्या है ?

आप अच्छे हैं खुशी की बात है। सयम से रहिएगा तो सँभल जाइएगा। बहुत अस्तव्यस्त होगे तो आक्रमण तीव्र होगा।

सुधा जी प्रसन्न हैं। क्वचित चर्चा करती हैं।

गरमी का प्रकोप है। काम करते पसीना निकलने लगा है। पर गङ्गा नहान का सुख शिमल म भी नही।

क्वार का दशमी विजया तक फुरसत होगी, काम को ढर्रे पर ले आऊँगा। कुशल कामी हूँ। इति।

सस्नेह
निराला

९७

C/o Pdt Ram Krishna Tripathi
Sangeet Visharad
Dalmau,
Rai Bareli
3 6 46

प्रिय आचार्य,

समय पर उत्तर नहीं जा सका। १५ दिन से हम यहाँ हैं, रामकृष्ण के मामा बीमार हैं सख्त।

किताबें तीन निकल चुकी हैं, बाकी भी निकल जायें तो भेजवायें।

पानी गिरने तक दो-तीन और निकलने वाली हैं।

आप प्रसन्न होंगे। काम इस समय बन्द है। यहाँ आम काफी हैं।

आपका
निराला

९९

Daraganj,
Allahabad
27 8 47

प्रियवर,

हमने प० गङ्गाधर शास्त्री के मुख आपके सम्बन्ध दुस्संवाद[1] सुना। ईश्वर आपको धैर्य दे।

हम २०/३० रोज के अन्दर आज ही लखनऊ जा रहे हैं। अगली दूसरी तक लौटेंगे।

कुशल है, अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दीजिए। हो तो यहाँ चले आइए। इति।

आपका
निराला

१ शल की माँ के स्वर्गवास का दुस्संवाद।

१००

C/o Poet Sudha,
109/218, Ramkrishna Nagar,
Cawnpore
9 11 47

श्री आचार्य,

प्रिय शास्त्री जी,

एक अरसा हुआ, कुछ लिखकर सूचित नहीं कर सके।

गङ्गाधर जी शास्त्री से सुना था, आपकी अर्द्धाङ्गिनी (देवी चन्द्रकला) का देहान्त हो गया है। इस फालिज का क्या इलाज ?

इस पर आपने, सुना, काम बढ़ा दिया[1], गो कि तन्दुरुस्ती के लिए मना किया कि दम का दायरा पार न कीजिएगा।

सुना है, सख्त बीमार हैं।

अफसोस ! हम भी मर कर बचे। बहुत सँभाली थी तन्दुरुस्ती, फिर बूढ़े हो गये।

वे तस्वीरें ही रह गई हैं। आगे जो कुछ हो।

हाल भी मिलना मुहाल था। ईश्वर की इच्छा और अच्छे इलाज से नीरोग हों। यहाँ मिलने आयें।

—निराला

---

१ आधुनिक हिन्दी कविता को निराला की देन नामक पुस्तक के लिखने का काम। यह अब तक अप्रकाशित है। ज्यों-ज्यों मुझे अपने जीवन से निराशा होती जाती थी, बार-बार बीमार होते रहने के कारण, त्यों-त्यों मैं श्रम बढ़ाता जाता था।

१०१

Dalmau
Rai Bareli
22 11 47

प्रियवर,

कानपुर म पत्र मिला। फिर यहा चले आये। ८/१० दिन कम से कम रहेगे। साहित्यिक अधूरा काम पूरा करना है।

आपका काम बडा है, खच लम्बा आवश्यक होगा ही।[1] सबसे अधिक यह दधो विपत्ति हमारी भावना को विचलित करती है। फिर सविस्तार लिखेंगे।

शायद यह सम्वाद हमने लिखा है पिछले पत्र म कि तुलसीदास की रामायण का खडी बोली मे छन्द भावानुकूल अनुवाद कर रहे हैं।

शुरू का विनयखण्ड जो प्राय ४ फार्म का होगा, कथारम्भ से पहले तक का, राष्ट्रभाषा विद्यालय गायघाट काशी को दिया है। जनकपुर दर्शन, वाटिकागमन खण्ड महादेवी जी को साहित्यकार ससद से छपाने के लिए। विचार पाठ्य करने का है। दोनो खण्डो को। बिक्री अच्छी होगी।

अनुवाद सफल है। गोस्वामी जी की साहित्यिक प्रतिभा का यथाशक्ति स्थापन किये रहने का प्रयत्न किया गया है।

आपका
निराला

---

१ निराला के विराट साहित्यिक स्वरूप को देखते हुए मुझे अपनी ढाई तीन सौ पृष्ठो की पुस्तक न रुची। मैंने महाकवि निराला नामक सहस्र पृष्ठो के एक विशाल समीक्षात्मक ग्रथ की रूपरेखा तयार कर ली। तीन खण्ड किए—आधुनिक हिन्दी कविता को निराला की देन नामक अपने मौलिक विवेचन को (प्रथम) प्रस्तावना खण्ड म रखा, (दूसरे) आलोचना-खण्ड म हिन्दी के प्रतिनिधि आलोचको स प्रयत्न करके लिखवाए हुए निबन्धो को और (तीसरे) उपसहार खण्ड मे स्वय निराला के लिखे पुस्तक रूप म अप्रकाशित प्राय दो दजन लेखो को प्रबन्ध प्रतीक नाम से सकलित किया। इस विशाल ग्रन्थ के प्राय ८ सौ पृष्ठ छप चुके थे। इस अध्यवसाय के दुखद अन्त की पूरी जानकारी के लिए पढ़िए स्मृति के वातायन जानकीवल्लभ शास्त्री, पृष्ठ २७/२८ लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

१०२

राष्ट्रभाषा विद्यालय,
बनारस
२२ १२ ४७

प्रियवर,

एक अरसा फिर हुआ, हमने पत्र से सम्वाद नहीं मंगाया।

आपके पारिवारिक जीवन की सदा चिन्ता रही जब से यहाँ के लोगों से आपकी पत्नी का वियोग सुना।[1]

हम सान्त्वना क्या दें ? यही कहते हैं कि जहाँ तक सम्भव है, दीर्घकाल तक विश्राम कीजिए।

पत्र जल्द दीजिएगा। हम आपसे मिलना भी चाहते हैं, मगर एक सुअवसर ही से मिलना सम्भव है।

हम तुलसीदास जी की रामायण का आधुनिक हिन्दी में रूपान्तर कर रहे हैं। दो पुस्तिकाएँ इसी की निकल रही हैं, एक यहाँ से विनय खण्ड शुरू से पार्वती विवाह हो जाने तक दूसरा साहित्यकार संसद से फुलवाड़ी-खण्ड।

तुलसी की छन्द रचना पद्धति आदि यथासाध्य रक्खी गई है। देखना हो तो कुछ दिन में आइए, नहीं तो किताबें यथा समय भेज भी जायेंगी। विनय-खण्ड छप रहा है। दो फार्म कम्पोज्ड हो चुके हैं।

—निराला

---

१ इसी चन्द्रकला से सन् '२८ में मेरा बाल विवाह हुआ था। मैं बारह वर्ष का था वह चौदह पन्द्रह की। ब्याह के बाद वह अट्ठारह उन्नीस वर्ष जीवित रही। मैं पढ़ना और जीविका के लिए जगह जगह की खाक छानता रहा। इसी दरम्यान चेचक की बीमारी में वह चल बसी।

अट्ठारह-उन्नीस वर्षों में हम अट्ठारह उन्नीस दिन भी साथ न रहे। [illegible] मेरे उसी कष्ट क्लिष्ट जीवन के पत्थर पर उगी हुई दूब हैं।

गुरु —

अगर आवें तो सूचना दे दें और अपनी छोटी बड़ी पुस्तकें भी साथ लेते आवें।

इस काम के बाद हम अपने, कई वर्षों के, संसार भ्रमण का वर्णन लिखना चाहते हैं जिसका उल्लेख अभी तक नहीं किया।

शायद आप जानते हैं हम भारत में सबसे पुराने विश्वयात्री हैं और एक अरसे से।[2]

लन्दन में व्याख्यान भी अंगरेजी में दिया है और पढ़ा था।

यही कविताएँ सुनाई हैं अनुवाद संसार के सभी प्रधान नगरों में।

आपका
सूर्यकान्त

---

२ मेरी शादी के मौके पर निराला जी आए थे तो लगभग एक सप्ताह यहाँ रहे थे। मुजफ्फरपुर के रईसे आजम बाबू उमाशङ्कर प्रसाद को अपने इस विश्वभ्रमण का वृत्तान्त कभी हिन्दी और कभी अंगरेजी में सुनाने लगे तो कोलम्बस को कोसों पीछे छोड़ दिया—सिलसिलेवार ब्योरे, सनसनी खेज घटनाएँ—बाबू साहब साँस साध कर सुनते रह गए थे।

१०३

The Rashtra Bhasha Vidyalaya
Gaya Ghat
Benares
3 1 48

प्रिय आचार्य,

नये साल का नमस्कार। शैल को स्नेह।

पत्र आया। आपको मिहनत न करने के लिए ही कहा था, आपने नहीं माना। अधिक इस पर और क्या?

हम दर किनार हैं। कारण हैं। कुम्नी का खाता भी पेश करना है। अभी तक तो किताब लिखी नहीं, कुछ लोगो ने थोड़ा बहुत लिखा है। बहुत तरह की सोच कर चुप हो रहता हूँ।

आपकी किताब छान फाड़ हो रही है।[1] रुपये सेठों से मिल सकते हैं। आपको इशारे काफी लिये गये हैं। उनका भला उनको गुणग्राम समझाने से सुझाया न होगा। वे दूरन्देश हैं। चिन्ता न कीजिए, अब धीरे धीरे आ जायगा और काफी।

मैं तो इधर पढ़ता ही रहा। इसीलिए कुछ गड़े मुर्दे उखाड़ने की सूझी। काम चल रहा है।

यहाँ अच्छा है। जाड़ा अधिक हो गया।

मिलेंगे जल्द या देर से। रामायण का अनुवाद दिखाना है।

अगले काम भी सँवारने हैं जल्द फिर। यहाँ महीने भर हूँ।

सस्नेह
निराला

---

१ 'महाकवि निराला' नामक विशाल समीक्षात्मक ग्रन्थ, जिसका एक हल्का सा आभास सन् ६३ में मेरे द्वारा सम्पादित प्रकाशित—महाकवि निराला—में प्राप्त हो सकता है।

१०४

The Rashtra Bhasha Vidyalaya
Gai Ghat
Benares
20 1 48

आचार्य,

पत्र आया। रामायण के छपे दो फार्म बुकपोस्ट से भेज दिए, मिले होंगे।

जुकाम से पखवारे भर शिकस्ती रही। अब कुछ अच्छा है। काम बन्द है। कल-परसों से शुरू होगा। ३/४था फार्म चल रहा है।

यह किताब, बहुत दस-बारह फार्म की होगी। फुर्सत हो या एक-दो दिन की छुट्टी मिले, १०/१५ दिन में, चले आइए।

अनुवाद कैसा लगा, लिखिए, छापने का विचार है साथ साथ।

और भी अधिकारी रहेंगे। नलिन विलोचन जी पटना कालिज में हैं, नजदीक हुए।

कुछ फुरसत होने पर बिहार में मित्रों से घूमकर मिलने की इच्छा है। बाकी कुशल है।

फिर आवश्यक बातचीत आ जायगी जैसे एक एक साहित्य के नक्षत्र आ जाते हैं।

शल को स्नेह, नमस्कार। इति।

शुभैषी
सूर्यकान्त त्रिपाठी
निराला

१०५

राष्ट्रभाषा विद्यालय,
गायघाट काशी
आषाढ़ वदी २५ ६ ४८

प्रिय आचार्य,

हम सकुशल काशी पहुँच गये।[1] रास्ते में साधारण कष्ट रहा।

एक संग्रह सम्मेलन को दिया है काव्य का।

यहाँ तीन दिन से जल गिर रहा है। गंगा में बाढ़ आ गई है।

आम खूब रहे, काशी के लँगड़े। जाड़ों में अमरूद थे।

तुलसी अनुवाद का कवर छपने को रहा है। कुकुरमुत्ता संशोधित अब काम रूप छपने को है। एक कहानियों का संग्रह भी साथ निकलेगा। फिर और और।

आजकल मैं बाहर चलने की कर रहे हैं। ठण्ढक हो गई है। काम करने को है, इसलिए विचार होना है यहीं से कर लें। स्वास्थ्य हो आयगा।

आपके पिताजी को नमस्कार। बाबू साहब (बाबू उमाशंकर प्रसाद) को स्नेह, आपकी पत्नी[2] को भी।

बेटी (शैल) को प्यार।

सस्नेह
निराला

---

१ देवी चन्द्रकला के स्वर्गवास के एक वर्ष बाद १४ जून' ४८ को छाया मेरी संगिनी बनी। इसी अवसर पर निराला छाया के लिए बहुमूल्य उपहार लेकर मेरे यहाँ (मुजफ्फरपुर) आए थे। उनके साथ काशी, राष्ट्रभाषा विद्यालय के मेहरोत्रा जी भी थे। कई दिनों बाद काशी लौटे थे।

२ सन् २८ में बाल विवाह और सन् '४८ में वृद्ध विवाह। मेरे अनब्याहे मन को दो-दो बेमेल ब्याहों से ताल-मेल बैठाना पड़ा।

१०६

The Leader Press,
Allahabad
13 49

प्रियवर,

चिरकाल पश्चात पत्र प्राप्त हुआ। देशदूत और साप्ताहिक भारत में गीत भी देखे होंगे।[1]

आपका तार नहीं मिला था न दिया गया होगा। कारण है।

हम अब भी पूर्ण स्वस्थ नहीं उँगलियों मे सूजन है। सर पर अब दो बड़े चिह्न हैं।[2]

एक गीत भेजते हैं—

आपका
निराला

गीत

मन मधु वन आली, आली!
ईरण तन की, ज्योति सपन की
गगन घटा काली-काली!

—नि०

---

१ 'रचना की ऋजु बीन बनी तुम
ऋतु के नयन नवीन बनीं तुम!

—उस जमाने का सर्वश्रेष्ठ गीत था। यह प्रयाग के संगम में प्रकाशित हुआ था। जाने क्यों, यह अर्चना आराधना में संकलित न हुआ! निराला ने भी अन्यत्र कहीं इसकी सविशेष चर्चा नहीं की।

२ मैं उन व्रण चिह्नों पर दो मौलिमालाएँ अर्पित करता हूँ —

(१)

जीवन ज्योति जले!
अथिर तिमिर आलोक-लोक को
पल छिन भी न छले!
शूल न हूले फूल-गात में,
सुरभि न भूले महावात में,
पड़े पड़ाव रुके टुक,

पथी आगे और चले !
जीवन ज्योति जले !!
चाव घटे मत बीच बाट में,
मात्र गिरे मत उठी हाट में,
मत कौडी के मोल बिके मणि,—
दिनमणि ढले, ढले !
जीवन ज्योति जले !!
मानदण्ड मत बने प्राण ही,
व्यापक लक्ष्य, कि आसमान ही,
आत्मा की प्रतिमा गढ़ने,
कंचन-तन तपे, गले !
जीवन-ज्योति जले !!

—'उत्पलदल'

(२)

सान्ध्यतारा क्यों निहारा जायगा !
और मुझसे मन न मारा जायगा !!
विकल पीर निकल पडी उर चीर कर,
चाहती रुकना नहीं इस तीर पर,
भेद यों, मालूम है पर पार का
धार से कटता किनारा जायगा !
चांदनी छिटके घिरे तम-तोम या,
श्वेत श्याम वितान यह कोई नया ?
लोल लहरों से ठने न बदाबदी,
पवन पर जमकर विचारा जायगा !
म न आत्मा का हनन कर हूं जिया
औ, न मने अमृत कहकर िय पिया
प्राण यान अभी चढ़ें भी तो गगन,
फिर गगन भू पर उतारा जायगा !

—'उत्पलदल'

१०७

लीडर
प्रयाग
२२ १ ४६

प्रियवर

[illegible]

[illegible]

[illegible]

—निराला

१०८

[illegible]
दारागंज प्रयाग
२७-११ ४३

प्रिय भाई [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

---

१ [illegible] लिखा गई।
पुलकित उषा उमड़ी।

× × ×

२ छाये बादल काले काले,
मदमाते आये मतवाले !

—निराला

१ कलकत्ता नगर में निराला का जयन्ती-समारोह आयोजित हुआ था। महादेवी जी की अध्यक्षता में मैंने भाषण भी दिया था, काव्यपाठ भी।

दूसरे दिन [illegible] किसी स्कूल में मेरी अध्यक्षता में निराला का सत्कार किया गया। वहाँ फिर मैंने एक लम्बा भाषण दिया था।

कलकत्ता हम सादी पोशाक से गये। अब भी वैसे ही हैं। इसलिए आपको लिख रहे हैं।

हम तो एक साधारण आदमी हैं। हमारे साथ वाले भी ऐसे ही। हम भीतरी हाल नहीं समझ सके।

रामकृष्ण ऐसे न थे, नहीं मालूम, सही क्या है। हमारी दृष्टि में आप कम नहीं।

आपका
निराला

स्कूल के मास्टरों ने निराला को एक बटुआ सौ सवा सौ रुपयों का भेंट किया जो अध्यक्ष होने के नाते मेरे हाथ में दिया गया। मैंने उसे उसी समय निराला की ओर बढ़ा दिया। निराला ने लेने से इन्कार किया

'तुम रखो। मैं क्या करूँगा?'

मैंने कहा "रामकृष्ण को दे देंगे।"

तो बोले—

'और तुम कौन हो?"

मैं क्या कहता, चुपचाप बटुआ रख लिया। योगायोग ऐसा कि उसके बाद मुझे मुजफ्फरपुर लौट आना पड़ा। छाया जी को भयानक बुखार में (डा० दुर्गा प्रसाद नन्दे के विश्वस्त आश्वासन पर) बहोश छोड़कर, निराला के उत्सव के उत्साह से ही केवल दो दिनों के लिए, कलकत्ता गया था।

फिर क्या बकौल आचार्य परमानन्द शर्मा मैं वे सौ एक रुपए नहीं, किसी प्रेत के मुंह से दाँत निकालकर चला आया था। उन्हें भी मित्रता का मूल्य चुकाना पड़ा। निराला के गण ने काफी लानत मलामत की।

एक दिन फैजाबाद से भाई रामकृष्ण त्रिपाठी का एक बड़ा ही कठोर पत्र मिला कि 'मैं जो रुपया लेकर भाग गया था, वह भले भले न लौटा दूंगा तो वह मुकद्दमा दायर करके वसूल लेंगे।'

मेरा तो होश फाख्ता हो गया। जिन्दगी भर काँटों की सेज सोया, यह 'तस्वेसर कागा ले भागा' वाला गुण होता तो हरी भरी उम्र, देखते देखते, क्यों गाव खुद हो जाती।

अब कहीं निराला के माथे का घाव फूटा। सुना था 'अपरा' पर जो उन्हें पारितोषिक मिला था उसे उन्होंने नहीं लिया था। स्व० मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव की विधवा के नाम उत्सर्ग कर दिया था। इस आत्म दान की खोज स्वजनों ने उनकी खोपड़ी से निकाली थी। निराला ने मुँह ढककर खोपड़ी खोलने वालों का किस्सा सुनाया था।

सटराग न फैलाया गया होता तो मैं कहते ही झट से रुपये निकालकर दे देता। अब बस, इस बदहु नजारे की सूचना भर निराला को दे दी थी।

१०६

दारागंज,
प्रयाग
१५ १ ५७

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। ३ पुस्तकें भी मिलीं ।[1] मैं प्रसन्न हूँ । पढ़ूँगा ।

छापखाने से अब प्राय सरोकार नही रखता ।

विश्वविद्यालय वाद विवाद प्रतियोगिता का आप लोगो के हक मे अच्छा फल होगा, आशा है ।[2]

आपका
निराला

Daraganj Allahabad
24-4 61

Acharya Janakı Vallabha Shastrı now a days ıs one of the foremost bards from Bıhar ın Hındı Lıterature He has a musical voice to render servıces ın Hındı poetıcal field and attaın success among flowers and buds castıng scents un parallel from theır composıtıon Recently the famous poet Janakı Vallabh, equally a critic novelist essayıst and short story writer has contributed to Hındı a number of books of different valour and fragrance and embellished well the variety of mother language

—Nırala

नयी, चिंताधारा और पाषाणी ।

मंगलमय हो सुंदरतर जो !
चिन्मय गिरा अथ रस बरसे—
घनानन्दमय अंतर स्वर जो !
पनघट पर घट रहे न रीता,
प्रीति न हो प्रभुता की क्रीता,
नीति आचरण की परिणीता
पावन हो मनभावन वर जो !
दीन मीन को मिले अतल जल,
नीलकण्ठ को सघन गगन तल,
मानस के निमित्त हो चंचल—
कदम मीत समुज्ज्वल पर जो !

—उत्पलदल